तपोवन श्री श्रीकृष्णदास जाजू

सर्वोदय ग्रन्थमाला—संख्या १.

सर्वोदय अर्थशास्त्र

[सर्वोदय की दृष्टि से अर्थशास्त्र की रूपरेखा]

लेखक

भगवानदास केला

भूमिका-लेखक

श्री श्रीकृष्णदास जाजू

भारतीय ग्रन्थमाला

दारागंज, इलाहाबाद

पहला संस्करण] सन् १९५२ ई० [मूल्य, चार रुपये

प्रकाशक—

व्यवस्थापक,

भारतीय ग्रन्थमाला

दारागंज, इलाहाबाद

पुस्तक मिलने के पते—

1. भातीय ग्रन्थमाला, दारागज, इलाहाबाद
2. वाणी मन्दिर, चौडा रास्ता, जयपुर
3. सहकार भारती, पिलानी (राजस्थान)
4. मैनेजर, नया हिन्द, १४५ मुट्ठीगज, इलाहाबाद

मुद्रक—

मैनेजर,

नया हिन्द प्रेस

१४५ मुट्ठीगज, इलाहाबाद

भूमिका

शास्त्र का काम आम तौर से यह समझा जाता है कि वस्तु-
स्थिति का परीक्षण कर उसकी विविध घटनाओ के सर्वसाधारण
नियम बनाये जाएँ, अर्थात् जो कुछ है, उसको नियम-बद्ध किया
जाए. क्या होना चाहिए, इस विषय का शास्त्र अलग माना
जाता है प्रश्न यह है कि क्या अर्थ के जो प्राकृत व्यवहार सामान्य
मनुष्य के द्वारा चल रहे हैं, उन्हीं का विवेचन करने वाला
अर्थशास्त्र हमारे लिए काफी है? यह बात सही है कि मनुष्य के
जिन्दा रहने के लिए कई वस्तुओ की जरूरत है, एव अर्थ से
उसका अनिवार्य सम्बन्ध है. उसकी इन्द्रियो की स्वाभाविक
प्रेरणा भी उनके विषयो की ओर है, उनको प्राप्त करने के लिए
अर्थ की आवश्यकता है तथापि क्या इन इन्द्रियों को बे-लगाम
छूट देकर, उनकी मांग के अनुसार चीजे मिलाने के प्रयास मे
ही व्यस्त रहने में मनुष्य का सच्चा कल्याण है? इन्द्रियो के
साथ मनुष्य में बुद्धि और विवेक भी है, जिनके द्वारा वह
भविष्य का विचार कर अपने शाश्वत हित की दृष्टि से उनका
सयम कर सकता है. यह विषय, मनुष्य का अर्थ से सम्बन्ध
क्या हो—इस क्षेत्र मे आता है मुख्य प्रश्न यह है कि मनुष्य
अर्थ के लिए है, या अर्थ मनुष्य के लिए

सब स्वीकार करेंगे कि अर्थ मनुष्य के लिए है पर जब
हम अर्थ का मनुष्य से क्या सम्बन्ध होना चाहिए. इस
प्रश्न को अर्थशास्त्र से अलग कर देते हैं तो फिर अर्थ
प्रधान रह जाता है, न कि मनुष्य कई अर्थशास्त्री, क्या
होना चाहिए—यह प्रश्न नीति शास्त्र का मान कर उसे अर्थशास्त्र

से अलग रखते हैं; इस कारण पाश्चात्य अर्थशास्त्र प्रायः अर्थ की महिमा में ही उलझा रहा दीखता है. अगर सामान्य प्राकृत मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति को देख कर ही अर्थ का विचार करना हो तो उसकी दिशा बहुत करके वही रहेगी, जो पाश्चात्य अर्थशास्त्र ने हमारे सामने रखी है पर मानव जाति के हित की दृष्टि से अर्थ की अपेक्षा मानवता को प्रधान स्थान मिलना चाहिए. अर्थ पर जोर देने के कारण पाश्चात्य अर्थशास्त्र मानवता की दृष्टि से एक प्रकार से अनर्थशास्त्र बन गया है.

मनुष्य सुख चाहता है. अर्थ का प्रयोजन भी सुख ही होना चाहिए. पाश्चात्य अर्थशास्त्र की किताबों में मनुष्य का सच्चा सुख किस बात में है, इसका विशेष विवेचन किया हुआ दीखता नहीं. कहीं कुछ थोडा सा हो तो उसे, नीतिशास्त्र का या आदर्श-शास्त्र का मान कर, अर्थशास्त्र का अंग नहीं बनाया गया. इसके परिणाम-स्वरूप उसमें अर्थ का प्रयोजन भोग-लालसा की तृप्ति ही रहा है. कहीं-कहीं पाश्चात्य सभ्यता की व्याख्या ही यह की गयी है—'मनुष्य की आवश्यकताओं को बढाना और उनकी पूर्ति करना.' क्या इस पद्धति से मनुष्य को सच्चा सुख मिल सकता है ? शरीर और मन स्वस्थ रखने के लिए जिन चीजो की आवश्यकता है उनके बारे में कोई विवाद नहीं पर इससे आगे बढ़ कर जब मन के रंजन के लिए या नाना प्रकार के भोगो के लिए प्रयास करने में ही हित माना जाए तो गहराई में जाकर इस प्रश्न का उत्तर देना होगा कि क्या नाना भाति के ऐश आराम की चीजें मनुष्य का सच्चा सुख बढ़ाने में समर्थ हैं. इस विषय में प्राकृत मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति के भरोसे कैसे रह सकते हैं ? विवेकशील जीवन ही हमारा मार्गदर्शक हो सकता है जगत के ऋषि-मुनियों ने नाना प्रकार के प्रयोग कर अपने अनुभव के बल पर यह सार निकाला है कि —

न जातु कामः कामानाम् उपभोगेन शामाति ।
हविषा कृष्ण वर्त्मेव भूय एवाभिवर्तते ॥

(वासना विषयों के उपभोग से शान्त नहीं होती, उलटे आहुति डाली हुई अग्नि की तरह बढ़ती जाती है)

क्या यह अनुभव गलत है ? अगर सही है, जैसे कि हर एक को कबूल करना पड़ेगा, तो मानना होगा कि पाश्चात्य अर्थ-शास्त्र गलत नींव पर खड़ा है. मनुष्य के कल्याण की दृष्टि से उसकी रचना उक्त अनुभव के आधार पर होनी चाहिए

प्रचलित अर्थशास्त्र की किताबों में जो विचार पाये जाते है, वे प्रायः पाश्चात्य राष्ट्रों की आर्थिक व्यवस्था को लेकर हैं. यत्र-युग शुरू होने पर वहां जो केन्द्रित और पूंजीगत आर्थिक व्यवस्था निर्माण हुई, उस पर वे आधारित हैं. समय के साथ कुछ परिवर्तन जरूर हुआ, पर मूल ढाचा जैसा का तैसा बना रहा. इसमे प्रधानता है बड़े-बड़े केन्द्रित उद्योगो की, जिनसे बनी हुई चीजे जगत् के एक छोर से दूसरे छोर तक पहुँचती हैं, इतना ही नहीं, वरन् जहा आवश्यकता नहीं है, वहा भी नाना युक्ति-प्रयुक्तियों से लाद दी जाती हैं, और उनके लिए कच्चा माल जगत् भर से बटोर कर और कई देशो को अपने अधीन कर प्राप्त करने की आवश्यकता खडी होती है. बड़े-बड़े वर्ग-भेद खड़े हो कर सघर्ष के कारण बनते हैं, स्पर्द्धा तो उसका प्राण ही है, जिसमें छोटे पीसे जाते हैं, और गरीबों का शोषण होता है. कुछ थोड़े व्यक्तियों के हाथ में विराट स्वरूप के कारोबार आकर, भले ही कानूनन न हो, व्यवहार मे एकाधिकार आ जाता है. वे अपनी संगठित शक्ति से जगत् में मनचाही उथल-पुथल कर सकते हैं. सब देशों में प्रजातत्र की दुहाई दी जाती है; पर जहां आर्थिक व्यवस्था जनतांत्रिक न रहते हुए केन्द्रित रहती है और उसे कानून से संरक्षण मिलता है तो प्रजातत्र वास्तव में एक

दिखावा रह जाता है आज के पेचीदे समाज मे राजनैतिक और आर्थिक व्यवस्थाओ का वहुत प्रभाव है अगर उनका ठीक मेल न हो तो समाज का सच्चा हित कैसे सध सकता है ! इस व्यवस्था में अमीरो का ही वोलवाला रहता है. गरीबो को उनकी मर्जी पर अवलम्बित रहना पड़ता है, न कि अपने मानवोचित हक के आधार पर. इस पूजीवाद की आच कुछ मद करने के लिए अव राज्य का कारोवार 'वेलफेयर स्टेट' के नाम से चलने लगा है समाजवाद भी आ खड़ा हुआ है, और विरोध में हिन्सात्मक साम्यवाद तो है ही.

समाज में सुख-शान्ति रहने के लिए अर्थशास्त्र पैसे की जगह मानवता पर आधारित होना चाहिए व्यक्ति का अपना निज मानवोचित स्वतत्र स्थान होना चाहिए, सवल हो या निर्वल, सवको स्वाभिमान-पूर्वक रहने का मोका मिलना चाहिए सव प्रकार की कृत्रिम विपमताए मिट कर व्यवहार में यथा-सम्भव समता आना चाहिए और स्पर्द्धा के वदले सहकार. मनुष्य को अपनी प्राथमिक आवश्यकताओ के वारे में स्वावलम्बी रहे बिना सच्ची स्वतत्रता सम्भव नहीं; इसलिए ऐसी चीजो का उत्पादन विकेन्द्रित होना चाहिए. राजसत्ता भी यथा-सम्भव विकेन्द्रित हो. अपनी आवश्यकताएं बढ़ाने की अपेक्षा, मन और शरीर को स्वस्थ रखते हुए, कम से कम चीजो से काम चलाना चाहिए

अगर अर्थशास्त्र के नियम वास्तविक घटनाओ के आधार पर वताना है तो प्रत्यक्ष में तो ऊपर लिखे मुताविक सर्वोदय समाज का ऐसा कोई चित्र नहीं है, जिसका परीक्षण कर निश्चित रूप से उसके नियम वताये जा सकें. तथापि सर्वोदय व्यवस्था जगत के कल्याण-रूप होने के कारण उसकी आर्थिक व्यवस्था क्या होनी चाहिए, इसका विचार करना आवश्यक हो गया है. उसमें सामान्य मनुष्यों की स्वाभाविक प्रवृत्ति के

बदले मनुष्य के श्रेष्ठ अंग अर्थात् मानवता का विचार करना होगा यहां नीति-शास्त्र का सम्बन्ध आ जाता है. यह कहना ठीक नहीं होगा कि अर्थशास्त्र मे नीतिशास्त्र लाने की ज़रूरत नहीं; क्योंकि वह अर्थ काम का ही नहीं, जिसमे नीति न हो मनुष्य के हृदय के टुकड़े नहीं हो सकते; अगर वह धनोपार्जन मे नीति को महत्व नहीं देता है तो उसका असर उसके सारे जीवन पर पड़े बिना नहीं रह सकता. कहीं-कहीं ऐसी आवाज सुनायी देती है कि अगर सार्वजनिक जीवन मे मनुष्य शुद्ध हो तो उसके व्यक्तिगत जीवन की ओर देखने की हमें क्या जरूरत, और जगह शुद्धता रखनी चाहिए पर राजनीति में यह बात चल नहीं सकती और उसकी जरूरत भी नहीं . ऐसी विचारधारा और अर्थ का नीति से सम्बन्ध टूटना दिनोदिन अनीति बढ़ने का कारण बन रहा है.

सर्वोदय की दृष्टि से जो विचार खड़े होते हैं, उनमें से अर्थ-शास्त्र सम्बन्धी कुछ विचार ऊपर लिखे गये हैं. सर्वोदय का सम्पूर्ण अर्थशास्त्र लिख डालना आसान नहीं है. कहीं वैसे समाज का व्यापक पैमाने का नमूना हो और उसका कुछ समय तक परीक्षण हो तब कहीं उस शास्त्र के नियम और वे भी अंशतः ही हाथ आ सकते हैं. सर्वोदय समाज का रूप क्या हो, इस विषय में अब तक कुछ फुटकर विचार अवश्य किया गया है. पर उसका समग्र चित्र नहीं खींचा जा सकता; आज की दशा में इतना ही विवेचन किया जा सकता है कि अर्थशास्त्र के प्रचलित विचारो में सर्वोदय की दृष्टि से क्या फर्क होना चाहिए. इस किताब मे यह किया गया है. प्रचलित अर्थशास्त्र के प्रधान अंगो को लेकर उनमें क्या फर्क होना चाहिए इसकी चर्चा की गयी है. जिस सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था को लक्ष्य में रखकर प्रचलित अर्थशास्त्र के नियम लिखे गये हैं, उससे सर्वोदयी रचना बिलकुल

भिन्न होने के कारण मामूली किताबो के विषय सारे के सारे, या कुछ अंश में या कहां तक उपयुक्त हो सकते हैं, यह वैसे समाज के प्रत्यक्ष अनुभव से ही तय किया जा सकेगा. इस प्रकार शायद इस पुस्तक के विषय-विवेचन में आमूल परिवर्तन करना पड़े, तथापि इस में कोई शंका नहीं कि यह पुस्तक सर्वोदयी अर्थ-रचना जानने की इच्छा रखने वालों के बहुत काम की होगी.

विद्यार्थियो के सामने पुराने विचारों की ही किताबें आती है; और उन्हे अपनी परीक्षाओं के लिए उन्हीं का अध्ययन करना पडता है. अब उनके कानो में 'सर्वोदय' शब्द पडने लगा है. पर उनके सामने ऐसी सामग्री नहीं के समान है, जिससे यह स्पष्ट हो कि अर्थशास्त्र की दृष्टि से उसका व्यवस्थित रूप कैसा हो. इस दशा में विद्यार्थियो के लिए यह किताब विशेष उपयोगी साबित होगी. समाज के सुन्दर नव-निर्माण का उत्तरदायित्व बहुत-कुछ अध्यापको पर है. उन्हे सर्वोदय अर्थशास्त्र की विचार-धारा से परिचित होना जरूरी है आशा है वे भी इस पुस्तक से यथेष्ट लाभ उठावेंगे.

सेवाग्राम
९-२-१९५२

श्रीकृष्णदास जाजू

कुछ अपनी, कुछ आपकी

'हमारी आदिम जातियां' पुस्तक के बाद के मेरे लगभग सोलह माह के जीवन का, मेरी बीमारी छोड़ कर मुख्य कार्य यह पुस्तक ही है यह एक प्रायश्चित सा है परमात्मा क्षमा करे मैंने अपने विद्यार्थी-जीवन में जो पूजीवादी अर्थशास्त्र पढा था, उसी की रूप-रेखा के आधार पर, अब से तीस वर्ष पहले, लिखने लग गया यद्यपि गांधीजी उस समय अपने चुभते हुए हृदय-स्पर्शी भाषणो और लेखों से अर्थशास्त्र को नयी दिशा दे रहे थे, मैं अपने पुराने सस्कारों के कारण उस ओर यथेष्ट ध्यान न दे पाया. उसके कुछ वर्ष बाद श्रद्धेय श्री श्रीकृष्णदास जाजू ने—जिनका स्नेह और आत्मीयता मुझे लगभग चालीस वर्ष से प्राप्त है—मेरी कुछ पुस्तको की पहुँच स्वीकार करते हुए मुझे वर्धा आ कर गांधी विचारधारा अध्ययन करने का लिखा; पर मैं आपके सुझाव को अमल मे न ला सका. आखिर, अक्तूबर १९५० में मैंने आपकी 'अखिल भारत चरखा सघ का इतिहास' पुस्तक पढ़ी. उसमें एक जगह गाधीजी का यह वाक्य सामने आया— जो अर्थशास्त्र व्यक्ति की या राष्ट्र की नैतिक भलाई पर आघात करता है, वह अनैतिक अत :पापमय है ' इसे पढ़ना था कि मन मे एक हलचल मच गयी; सोचने लगा, अब तक अर्थ-शास्त्र पर जो कुछ लिखा गया वह 'अनैतिक अतः पापमय' रहा. अब तो नयी रचना होनी चाहिए. इस प्रकार जो कार्य श्री जाजू जी की प्रत्यक्ष सूचना ने भी नहीं किया था, अब उनकी पुस्तक के एक वाक्य ने कर दिया.

अस्तु, प्रश्न हिन्दी में नये ढग के, नैतिक या सर्वोदय अर्थशास्त्र लिखने का था. अपने स्वास्थ्य और साधनो तथा क्षमता

की कमी का विचार करके मैं चाहता था कि यह कार्य दूसरे सज्जन करें पर 'दुर्भाग्य' से उन्हे कई-कई सौ रुपये माहवार की आमदनी थी. उसे आघात पहुँचाने वाला ऐसा 'बेवकूफी' का काम वे क्यो करने लगे ! शाही वेतन और भत्ता आदि पाने वाले व्यक्ति प्रायः जनता से दूर और लोकसेवा के अयोग्य हो जाते हैं आखिर, दूसरा उपाय न पाकर मुझे ही यह काम हाथ मे लेना पडा

जनवरी फरवरी १९५१ में मैं स्वास्थ्य-सुधार के लिए पिलानी रहा, वहा इस विषय का साहित्य देखा. बधुवर श्री नरहरि परीख की 'मानव अर्थशास्त्र' (गुजराती) पुस्तक देखते हुए बारबार मन मे यह विचार आया कि यह सन् १९४५ का प्रकाशन है, और हम हिन्दी वाले अब तक भी ऐसी रचना न कर पाये. मार्च १९५१ मे मैं 'लोकवाणी'-सम्पादक श्री जवाहिरलाल जैन की सहायता लेने के लिए जयपुर गया आप से पहले से पत्र व्यवहार था और आपके सर्वोदय विचार-धारा के लेख मुझे बहुत पसन्द आये थे. जयपुर मे स्वास्थ्य और इलाज के लिए मैं नौ महीने गाधीनगर प्राकृतिक चिकित्सालय की उस कुटि में रहा, जिसे श्री विनोबा और जाजू जी पवित्र कर चुके थे. भाई जैन जी समय-समय पर मुझे उपयोगी परामर्श देते रहे और अवकाश निकाल कर लिखते भी रहे. अप्रेल में सर्वोदय सम्मेलन के अवसर पर मैं आपके साथ हैद्राबाद भी गया. इस यात्रा मे सर्वश्री श्रीकृष्णदास जाजू किशोरलाल मश्रूवाला, हरिभाऊ उपाध्याय, श्री मन्नारायण अग्रवाल, आदि महानुभावो से इस पुस्तक के विषय के सम्बन्ध में विचार हुआ. नवम्बर में लिखने का काम बहुत-कुछ पूरा किया गया.

लिखित सामग्री को देखने पर मालूम हुआ कि हम दोनो की विचार-धारा एकसी होते हुए भी भाषा

और शैली आदि के अन्तर के कारण, पाठको की सुविधा की दृष्टि से इस सामग्री को दो जुदा-जुदा पुस्तको के रूप में ही रखना ठीक होगा इस लिए भाई जैन जी की पुस्तक 'सर्वोदय अर्थव्यवस्था' अलग उनके नाम से छपी है उससे पूंजीवादी व्यवस्था के दोष तथा साम्यवादी व्यवस्था की कमिया बताने के बाद सर्वोदय अर्थव्यवस्था की उपयोगिता, इसके आधार भूत सिद्धान्त और प्रमुख विशेषताओ का विवेचन किया गया है यह कहने की आवश्यकता नहीं कि वह इस पुस्तक के विषय पर विचार करने मे बहुत उपयोगी और सहायक है जयपुर में रहते हुए कई मित्रो से इस पुस्तक के विषय मे चर्चा और विचार-विनिमय हुआ उनका जिक्र न कर यहा यही कहना है कि श्री जाजू जी वहां गांधी जयन्ती के अवसर पर पधारे तो मैंने आप के साथ दो दिन के लिए सीकर जाकर और वहा पुस्तक दिखा कर आपके विचारो से लाभ उठाया पीछे आपने इसकी भूमिका लिखने का अनुग्रह किया, जिसके लिए आशा है पाठक भी आपका बहुत उपकार मानेगे

दिसम्बर मे मेरे प्रयाग आने पर मित्रवर श्री प्रोफेसर दयाशकर दुबे ने इस पुस्तक मे अच्छी दिलचस्पी ली आप वर्तमान शिक्षा-पद्धति के अनुसार ही प्रयाग विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र पढ़ाते हैं; हा कुछ विषयो में धार्मिक या नैतिक दृष्टिकोण रखते हैं पुस्तक देख कर आपने कई सुझाव देने की कृपा की. मान्यवर पडित सुन्दरलाल जी की कृपा से यह पुस्तक 'नया हिन्द' प्रेस में श्री सुरेश रामभाई की देख-रेख मे छपने की व्यवस्था हुई भाई सुरेश जी सर्वोदय विचार धारा वाले हैं आपने इसी दृष्टि से सारी पुस्तक देखी है. आपके विचार-पूर्ण परामर्श से मैं बहुत कृतार्थ हुआ. आपने मेरे निवेदन पर इस पुस्तक के लिए 'सर्वोदय अर्थशास्त्र की पुकार' लिखने की कृपा की. निदान, मुझे इस

पुस्तक में कई मित्रो से सहायता मिली है मैं इनके अतिरिक्त उन सज्जनो का भी कृतज्ञ हूँ जिनकी पुस्तको या लेखों या पत्र पत्रिकाओ आदि से मैंने लाभ उठाय है

एक बात और; हम चाहते हैं कि हिन्दी एशिया की सर्वश्रेष्ट भाषा हो, इसका साहित्य ससार में प्रमुख पद प्राप्त करे. पर क्या पाक-पवित्र इच्छा से ही महान कार्य हो जाया करते हैं! हमारी कृति क्या है? शासनाधिकारियो से अंग्रेजी का मोह नहीं छूट रहा है. हमारे अनेक प्रोफेसर और आचार्य टेक्स्टबुको के चक्कर में पड़े हैं विद्यार्थी पाठ्य पुस्तको के अतिरिक्त केवल सिनेमा और सरस, स्वादिष्ट और सुपाच्य साहित्य के लिए कुछ खर्च करते हैं. अध्यापक शिक्षा-संस्था के पुस्तकालय की अथवा 'नमूने' के तौर पर आयी प्रतियो से, और सम्पादक समालोचनार्थ मिली हुई पुस्तको से संतोष करते है, फिर, पुस्तको की बिक्री कैसे हो? और, यदि खरीदनेवाले काफी न हों तो उन्हे छपाने के लिए किसी का उत्साह कहां से हो! 'स्वान्तः सुखाय' नीति वाले लेखक भी कम होते हैं, प्रकाशक तो और भी कम. सवाल यह है कि सर्वोदय साहित्य जैसा घाटे का काम कैसे हो! काम कोरी बातो से नहीं होता; मरने-खपने की जरूरत है. हिन्दी ससार में फी सैंकड़े की तो बात जाने दीजिए, फी हजार या फी लाख कितने आदमी हैं, जो सच्चे दिल से साहित्य-व्रती हो कर खासकर सर्वोदय सहित्य की रचना और प्रचार मे जुट जाने को तैयार हैं। अच्छा, पाठक! निश्चय कीजिए, अगले साल आपका इस दिशा में क्या कार्य-क्रम होगा

विनीत

भगवानदास केला

सर्वोदय अर्थशास्त्र की पुकार

हर एक का अनुभव है कि बाजार में चीजों के दाम गिरते-चढ़ते रहते हैं. खासकर जो चीजें बुनियादी जरूरत की हैं जैसे अनाज, कपड़ा वगैरह उनमें यह उतार-चढ़ाव बहुत होता है, जिससे मामूली गिरस्थी आदमी को हैरत होती है कि आखिर माजरा क्या है कि एक वक्त में एक चीज के दाम तो कम हो जाते हैं पर दूसरी के वैसे ही बने रहते हैं. फिर, यह समझ में नहीं आता कि अगर किसी वक्त यह उतार-चढाव आता है, तो क्यो आता है. हम इन सवालो में नहीं पड़ेगे और न यहा इनमें पड़ने का कोई मौका ही है पर इतना जरूर कहेगे कि इस मंहगी, सस्ती का-यह मुसीबत साबित हो या बरकत—कारण है हमारा मौजूदा अर्थशास्त्र, जिसको हम पूजीवादी, साम्यवादी, साम्राजवादी या फासिस्ट आदि न कहकर स्वार्थी अर्थशास्त्र कहेगे इसकी बुनियाद में एक ऐसी अर्थव्यवस्था है जिसमें क्या सरकारी, क्या गैर-सरकारी, सभी साधन इस तरह लगे हुए हैं कि उनसे चद आदमियों को फायदा पहुँच जाये और वह मालामाल होते रहे और गरीब गरीब बनते चले जायें

इस तरफ जरा-भी ध्यान नहीं है कि वह व्यवस्था किस तरह कायम की जाये, वैसा आर्थिक सगठन कैसे खड़ा किया जाये जिससे हर किसी का, सब का भला हो, सभी उसमे फूले-फलें और सब की तरक्की हो अपनी-अपनी चिन्ता करने वाले, अपना हित सभालने वाले यह स्वार्थी अर्थशास्त्र और उसके अलमबरदार आज करीब करीब समूची दुनिया पर हावी हैं. यही वजह है कि विज्ञान में आये दिन नई खोजे होती हैं, प्रकृति पर 'विजय' पाने के निन नये साधन निकलते हैं,

पुस्तक में कई मित्रो से सहायता मिली है मैं इनके अतिरिक्त उन सज्जनो का भी कृतज्ञ हूँ जिनकी पुस्तको या लेखो या पत्र पत्रिकाओ आदि से मैंने लाभ उठाय है

एक बात और; हम चाहते हैं कि हिन्दी एशिया की सर्वश्रेष्ट भाषा हो, इसका साहित्य ससार में प्रमुख पद प्राप्त करे. पर क्या पाक-पवित्र इच्छा से ही महान कार्य हो जाया करते हैं! हमारी कृति क्या है? शासनाधिकारियो से अंग्रेजी का मोह नही छूट रहा है. हमारे अनेक प्रोफेसर और आचार्य टेक्स्टबुको के चक्कर मे पड़े हैं. विद्यार्थी पाठ्य पुस्तकों के अतिरिक्त केवल सिनेमा और सरस, स्वादिष्ट और सुपाच्य साहित्य के लिए कुछ खर्च करते हैं. अध्यापक शिक्षा-संस्था के पुस्तकालय की अथवा 'नमूने' के तौर पर आयी प्रतियो से, और सम्पादक समालोचनार्थ मिली हुई पुस्तको से सतोष करते है, फिर, पुस्तको की बिक्री कैसे हो? और, यदि खरीदनेवाले काफी न हो तो उन्हे छपाने के लिए किसी का उत्साह कहां से हो! 'स्वान्तः सुखाय' नीति वाले लेखक भी कम होते हैं, प्रकाशक तो और भी कम. सवाल यह है कि सर्वोदय साहित्य जैसा घाटे का काम कैसे हो! काम कोरी बातो से नहीं होता; मरने-खपने को जरूरत है हिन्दी संसार में फी सैंकड़े की तो बात जाने दीजिए, फी हजार या फी लाख कितने आदमी हैं, जो सच्चे दिल से साहित्य-व्रती हो कर खासकर सर्वोदय सहित्य की रचना और प्रचार मे जुट जाने को तैयार हैं। अच्छा, पाठक! निश्चय कीजिए, अगले साल आपका इस दिशा में क्या कार्य-क्रम हो

विनीत

भगवानदास केला

सर्वोदय अर्थशास्त्र की पुकार

हर एक का अनुभव है कि बाजार में चीजों के दाम गिरते-चढ़ते रहते हैं. खासकर जो चीजे बुनियादी जरूरत की हैं जैसे अनाज, कपड़ा वगैरह उनमें यह उतार-चढ़ाव बहुत होता है, जिससे मामूली गिरस्थी आदमी को हैरत होती है कि आखिर माजरा क्या है कि एक वक्त में एक चीज के दाम तो कम हो जाते हैं पर दूसरी के वैसे ही बने रहते हैं. फिर, यह समझ में नहीं आता कि अगर किसी वक्त यह उतार-चढ़ाव आता है, तो क्यो आता है. हम इन सवालो में नहीं पड़ेगे और न यहा इनमें पड़ने का कोई मौका ही है. पर इतना जरूर कहेगे कि इस मंहगी, सस्ती का-यह मुसीबत साबित हो या बरकत—कारण है हमारा मौजूदा अर्थशास्त्र, जिसको हम पूजीवादी, साम्यवादी, साम्राजवादी या फासिस्ट आदि न कहकर स्वार्थी अर्थशास्त्र कहेगे इसकी बुनियाद में एक ऐसी अर्थव्यवस्था है जिसमें क्या सरकारी, क्या गैर-सरकारी, सभी साधन इस तरह लगे हुए हैं कि उनसे चंद आदमियों को फायदा पहुँच जाये और वह मालामाल होते रहे और गरीब गरीब बनते चले जायें

इस तरफ जरा-भी ध्यान नहीं है कि वह व्यवस्था किस तरह कायम की जाये, वैसा आर्थिक सगठन कैसे खड़ा किया जाये जिससे हर किसी का, सब का भला हो, सभी उसमें फूले-फले और सब की तरक्की हो अपनी-अपनी चिन्ता करने वाले, अपना हित संभालने वाले यह स्वार्थी अर्थशास्त्र और उसके अलमबरदार आज करीब करीब समूची दुनिया पर हावी हैं. यही वजह है कि विज्ञान में आये दिन नई खोजे होती हैं, प्रकृति पर 'विजय' पाने के नित नये साधन निकलते हैं,

लेकिन एक तरफ तो दुनिया में गरीबों-मुहताजों की तादाद बढ़ती जाती है और दूसरी तरफ, सन्तोष या शान्ति नाम की चीज किसी को हासिल होती नहीं दीखती.

आज कल हम नाज़ करते है अपनी ज़रूरतें बढ़ाने में और अपनी जरूरत खुद मेहनत न करके पूरा करने मे. इन्हीं जरूरतो के बढ़ने को, हमे यह सिखाया जाता है, जीवन-तर्ज या 'स्टेन्डर्ड आफ लिविंग' का उठना कहते है और जरूरते खुद मेहनत करके न पूरी कर बल्कि मशीन के जरिये से पूरी करने को उद्योगीकरण या 'इन्डसट्रियेलाईजेशन' कहते हैं. बताया जाता है कि आज विज्ञान का युग है न कि ढकोसलो का, सब काम समझ-बूझ कर करने या 'रेशनेलाईजेशन' का, न कि बुत-परस्ती का. हम समझते हैं कि पुराने देवी-देवताओ को हमने छोड़ दिया लेकिन हमें होश नहीं कि हम पहले के मुकाबले कहीं ज्यादा पूजा करने लगे है पैसे और मशीन की, बल्कि कहना तो यह चाहिये कि हम पैसे और मशीन के इतने ज्यादा गुलाम बन गये हैं कि इन्सान की असली हस्ती की कोई कीमत हमारी निगाह मे अब रह नहीं गई है. अपने पडोसो के लिये हमारे दिल मे कोई जगह बाकी नहीं है और हमीं-हम का भूत बुरी तरह सवार होता चला जा रहा अगर इसी रविश पर दुनिया चलती रही तो कहां पहुँचेगी ? यह एक सोचने की बात है.

अपने देश हिन्दुस्तान की हालत देखें तो हमें महसूस होता है कि सरकार बड़ी तेजी के साथ स्वार्थी अर्थशास्त्र की जडे आजाद देश में जमाती चली जा रही है. अनाज के लिये हमे परदेश से भीख मांगनी पड़ती है, तरह तरह के सामान भी परदेश से ही आते हैं, पैसा बाहर से, एक्सपर्ट या माहर बाहर से—और किस लिये, ताकि देश मे बडे बड़े कारखाने खुले, हमारे शहर और गांव विदेशी पैसा-परस्त 'सभ्य' कहे जाने

वालो के मन की मौज के अनुसार ढाले जायें, लोग हरे-भरे और खुले-साफ खेत व गाव छोड़ कर हवा-बन्द, गन्दी, घिचपिची मिलो व शहरो में बसें, अपने मालिक आप न बनकर मशीनो और पैसे या पैसे वालो के मुहताज बन जाये, अपनी जरूरतें इतनी ज्यादा बढ़ा लेवें कि फिर उन्हे उन जरूरतों के पूरा करने के चक्कर से छुटकारा ही न मिले हम इस पर सन्तोष कर लेते अगर यह काम हम खुद करते, अपने देश की मिट्टी-पानी के मुताबिक करते, अपने लोगो के स्वभाव व रीति-रिवाज के मुताबिक करते. लेकिन यहा तो होड़ लगी है विदेशी व्यापारियो और माहरो की जो अपने घर की संभाल तो कर नहीं सकते हमको पाठ पढ़ाने आये हैं. पर कसूर उनका क्या है? कसूर है उस सरकार का, उन हाकिमो का, जो यह करने की इजाजत दे रहे है, जो विदेशी पैसे, सरमायेदार और एक्सपर्टों को मौका दे दे कर देश को गिरवी रख कर वेचे डाल रहे हैं. और रही-सही जो दौलत है, जो ईमान है, जो कलचर है, उसे तबाह करने पर तुले हैं. किसी ने सच कहा है, हम खुद ही अपने सब से बड़े दुशमन हैं और खुद ही अपने सबसे बड़े दोस्त आज हमारी सरकार जाने-अनजाने देश की सबसे बड़ी दुशमन बन गई है

ऐसी हालत में कहा सर्वोदय और कहा सर्वोदय अर्थशास्त्र? कौन इन्हे पूछेगा और कौन इनकी परवाह करेगा? हम अच्छी तरह जानते हैं कि आज के जमाने मे सर्वोदय अर्थशास्त्र की चर्चा करना धार के खिलाफ नाव खेना है फिर, अर्थशास्त्र तो सब लोग जानते हैं, स्कूल-कालिज यूनिवर्सिटी मे पढ़ाया ही जाता है, लेकिन सर्वोदय अर्थशास्त्र क्या वला है, इसके अनुसार धन या दौलत किसे कहते हैं, श्रम या मेहनत क्या होती है, उत्पादन या पैदावार से क्या मुराद है, वगैरह वगैरह? यह

सवाल हमारे सामने हैं. इनकी जानकारी अगर कोई हासिल करना चाहे तो कैसे करे? वैसे तो संसार के धर्म-ग्रन्थ, सन्तो और महात्माओं की वाणियां मौजूद हैं, जो धर्म के साथ साथ अर्थशास्त्र के भी सबसे अच्छे खज़ाने हैं, पर तालीम का ऐसा असर है कि जब तक अर्थशास्त्र कह कर हमारे सामने चीज नहीं आये हम उसे समझने से इन्कार करते हैं महात्मा गाधी ने इस अर्थशास्त्र को अपने जीवन में उतारा पर उसे किताबी जामा न उन्होने पहनाया न उनका वह काम था. लेकिन उनके सामने से ही देश के कुछ विद्वानों ने यह काम अपने ऊपर उठा लिया था, जिनमें सब में खास नाम डाक्टर जे. सी कुमारप्पा का है गांधीवादी या सर्वोदय अर्थ-शास्त्र का नाम अब पढ़े-लिखे लोग भी जान गये हैं, इसका श्रेय कुमारप्पाजी को ही है. पर इनका दायरा ज्यादातर अंग्रेजी पाठक तक सीमित रहा है धीरे-धीरे अपने देश की भाषाओ में भी इस तरह का साहित्य तैयार होने लगा है जैसे गुजराती में श्री नरहरि भाई परीख की 'मानव अर्थशास्त्र' नाम की किताब हिन्दी में अब तक यह कमी बनी हुई थी, सो इस तरफ श्री भगवानदास केलाजी ने पहला कदम उठाया है हिन्दी-संसार उन्हें बखूबी जानता है. राजनीति और अर्थशास्त्र सम्बन्धी उनकी किताबें करीब एक पीढी से विद्यार्थी भाई-बहन पढ़ते आ रहे हैं अब हिन्दी में सच्चे या सर्वोदय अर्थशास्त्र के साहित्य-भवन की बुनियाद को पहली ईंट भी उन्होंने ही रखी, इससे बढ़ कर खुशी की बात क्या हो सकती है मैं खुद एक विद्यार्थी हूँ. इस नाते मैं सारी किताब को एक बार अच्छी तरह पढ़ गया हूँ. और मुझे इसका पढ़ना अपने लिये बहुत तालीमदे और फायदेमन्द साबित हुआ. मुझे यकीन है कि मेरी तरह या उससे ज्यादा फायदा दूसरे पाठक उठायेगे, प्रोफेसर हो या विद्यार्थी या कोई भी.

इन पन्नो को देख जाने के बाद पाठक महसूस करेंगे कि सर्वोदय अर्थशास्त्र उतनी पढ़ने या चर्चा करने की चीज नहीं है जितनी गुनने और अमल करने की यही इसमें और दूसरे अर्थशास्त्रो में फर्क है. सर्वोदय अर्थशास्त्र समाज का हितैषी है पर व्यक्ति प्रधान है. इसमें पहला कदम मुझे उठाना है, आपको उठाना है, जो उसको माने उसे उठाना है इस अर्थशास्त्र में कर्त्तव्य या फर्ज़ पहले, अधिकार या हक बाद में. यह अर्थशास्त्र न केवल अर्थशास्त्र है बल्कि राजनीति-शास्त्र भी है, समाज शास्त्र भी है जैसे गीता की भाषा में, जो भक्ति वही ज्ञान वही कर्म. हम तीनो को अलग अलग नहीं कर सकते. इसी तरह अगर इन्सान को सचमुच जीवित रहना है तो अर्थशास्त्र, राजनीति-शास्त्र और समाजशास्त्र को अलग अलग नहीं कर सकते.

•

इस अर्थशास्त्र में चालू अर्थशास्त्र की खासियत स्वदेशी, चालू राजनीतिशास्त्र की खासियत, शोषण या ज्यादती से इन्कार या असहयोग, और चालू समाजशास्त्र की खासियत संयम, तीनो शामिल हैं स्वदेशी माने अपनी जरूरतें जहां तक हो सके उतनी रखना जितनी हम अपने जिस्म की मेहनत से खुद पूरी कर सकें और मशीन का उपयोग (अगर हो तो) उतना ही हो जिस पर हमारा काबू हो (न कि उसका हम पर), असहयोग माने किसी का शोषण या ज्यादती—चाहे राजा हो, सरकार हो, जमींदार हो, पूंजीपति हो, पाधा या मौलवी हो, बड़ा हो या छोटा हो—बर्दाश्त नहीं करेंगे और उसके साथ असहयोग करेंगे पर यह असहयोग करेगे कैसे?—संयम से, यानी, खुद तकलीफें सहेंगे, दूसरे को मारेंगे नहीं, चाहे अपनी जान से हाथ धो बैठना पड़े इस तरह सर्वोदय अर्थशास्त्र में स्वधर्म-मय स्वदेशी, असहयोग-सत्याग्रह और प्रेम है इन तीनों के निभाये

जाने पर हर किसी का भला या फायदा होना लाजमी है, आप से आप वह होगा.

हमारा यह विश्वास ही हमारा ध्रुव तारा है जो धार के खिलाफ अपनी नाव ले जाने में हमारा अकेला सहारा है. जिस तरह अपने 'हिन्द स्वराज्य' मे महात्माजी ने लिखा है कि गैरीबाल्डी का इटली आज आजाद है पर मेजिनी का इटली अब भी गुलाम बना हुआ है, उसी तरह हम देखते हैं कि जवाहरलाल का हिन्दुस्तान आज आजाद है पर गांधी का हिन्दुस्तान अब भी गुलाम बना हुआ है.

श्री केलाजी ने यह किताब लिखी है, काकाजी (श्री जाजूजी) ने इसको भूमिका लिखी है. फिर किसी तीसरे की तरफ से कोई चीज आने की जरूरत नहीं थी. पर केलाजी ने मुझसे प्रेम पूर्वक इसरार किया कि क्योकि आपने यह चीज देखी है, आपका इसका सम्बन्ध रहा है, आप ज़रूर कुछ लिखें. इसलिये उनके हुक्म की पाबन्दी मुझे करनी है आखिर मे, सिरजनहार से मेरी विनती है कि इस किताब को पढकर हमारे अन्दर ऐसी प्रेरणा पैदा हो कि हम गाधी के हिन्दुस्तान की गुलामी की बेड़ियां काट कर उसे आजाद बनाये और सच्चे या परमार्थी यानी सर्वोदय अर्थशास्त्र का नमूना दुनिया के आगे पेश करें.

इलाहाबाद
२६ ३ १९५२

सुरेश रामभाई

विषय-सूची

दूसरा खंड—उपयोग

७—वस्त्र

८—मकान

९—शिक्षा

१०—स्वास्थ्य और मनोरजन

११—रहन सहन का दर्जा और जीवन-स्तर

तीसरा खंड—उत्पत्ति

१२—उत्पत्ति का उद्देश्य

१३—उत्पत्ति के साधन

१४—भूमि

१५—श्रम और बौद्धिक कार्य

१६—श्रम विभाग बनाम श्रम-समन्वय

१७—पूंजी

१८—खेती

१९—ग्रामोद्योग

पहला खंड

विषय-प्रवेश

"अर्थशास्त्री मनुष्यों के आचरण पर विचार न कर अधिक पैसा बटोर लेने को ही अधिक उन्नति मानते है और जनता के सुख का आधार केवल धन को बताते है इसीलिए वे सिखाते है कि कला-कौशल आदि की वृद्धि से जितना अधिक धन इकट्ठा हो सके उतना ही अच्छा है इस तरह के विचारो के प्रचार के कारण इगलैड और दूसरे देशो मे कारखाने बढ गए है बहुत से आदमी शहरो मे जमा होते हैं और खेती-बारी छोड देते हैं बाहर की सुन्दर स्वच्छ वायु को छोड कर कारखानो की गन्दी हवा मे रातदिन सॉस लेने मे सुख मानते हैं इसके फलस्वरूप जनता कमजोर होती जा रही है, लोभ बढता जा रहा है और अनीति फैलती जा रही है . ."

"वास्तव मे सच्चा श्रम वही है जिससे कोई उपयोगी वस्तु उत्पन्न हो उपयोगी वह है जिससे मानवजाति का भरण-पोषण हो भरण-पोषण वह है जिससे मनुष्य को यथेष्ट भोजन वस्त्र मिल सके या जिससे वह नीति के मार्ग पर स्थित रहकर आजीवन श्रम करता रहे . "

—गाधीजी

पहला अध्याय

सर्वोदय अर्थशास्त्र क्या है ?

जो अर्थशास्त्र किसी व्यक्ति या किसी राष्ट्र विशेष के विकास अथवा कल्याण मे वाधक होता हे......तथा एक देश को दूसरे देश की लूट करने की अनुमति देता है, वह अनीतिमय है, पाप-रूप है.

—गांधीजी

अर्थशास्त्र का लक्ष्य मनुष्य जाति की प्रगति और कल्याण करना है सम्पत्ति या अर्थ इसके लिए एक साधन मात्र है

—नरहरि परीख

अर्थशास्त्र का विषय—साधारण भापा मे यह कहा जा सकता है कि अर्थशास्त्र मनुष्य के ऐसे प्रयत्नो और व्यवहारो का विचार करता है, जो अर्थ या धन सम्बन्धी हो. मनुष्य सामाजिक प्राणी है. इसलिए अर्थशास्त्र मे मनुष्य के उन्हीं व्यवहारो का विचार होता है, जो वह समाज में रहते हुए करता है आदमी को अपने जीवन-निर्वाह के लिए भोजन वस्त्र और मकान की आवश्यकता होती है उसे अपना दिल बहलाने के लिए मनोरजन के साधन चाहिए. उसमे विविध वस्तुओ तथा विपयो का ज्ञान प्राप्त करने की भावना होती है. स्वभाव से उसे नयी-नयी बातो की जानकारी हासिल करने का कौतुहल होता है. इस प्रकार उसके शरीर की तरह उसका मन भी विकास चाहता है. इसी प्रकार मनुष्य मे अपने दूसरे साथियो के प्रति

सेवा, त्याग, प्रेम और सहयोग की प्रवृत्ति होती है; यह उसकी सांस्कृतिक क्षुधा-पूर्ति के विविध रूप है. इस तरह मनुष्य की शारीरिक, मानसिक और सास्कृतिक तीन प्रकार की इच्छाएं होती हैं. इनकी पूर्ति के लिए वह जो विविध कार्य करता है, वे कई प्रकार के होते हैं, कुछ को सामाजिक कहा जाता है, कुछ को राजनैतिक, और कुछ को धार्मिक आदि मनुष्य के जीवन के अलग अलग टुकड़े नही किये जा सकते जीवन के सब अगो का परस्पर मे बहुत सम्बन्ध होता है. तथापि अध्ययन की सुविधा के लिए अर्थशास्त्र मे जीवन के उस हिस्से का विवेचन होता है, जो अर्थ या धन से सम्बन्धित हो इस शास्त्र का कार्य यह बतलाना है कि धन सम्बन्धी क्रियाओ के द्वारा मानव समाज मे सुख शान्ति कैसे और कहा तक हो सकती है इसका उद्देश्य विश्व का कल्याण है.

वर्तमान अर्थशास्त्र; भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति पर जोर—अर्थ या धन मनुष्य के सुख और विकास के साधनो मे से एक है, परन्तु वर्तमान अर्थशास्त्र इसे एकमात्र साधन मान कर चलता है इस विचार-धारा के अनुसार, मनुष्य की अधिकाश शक्ति भौतिक आवश्यकताओ की पूर्ति मे लगी रहती है मानसिक विकास को गौण स्थान दिया जाता है, अथवा यो कहा जा सकता है कि उसका मुख्य उपयोग हम यही समझते है कि उसके द्वारा हमे भौतिक आवश्यकताओ की प्राप्ति मे सुविधा हो. विज्ञान के नये नये आविष्कार हो रहे है, यत्रो और अन्य साधनो की वृद्धि हो रही है पर सब का मुख्य उद्देश्य या उपयोग यही माना जाता है कि वे हमारे भौतिक सुख की वृद्धि मे सहायक हो हमे प्रधानतया अपने सुख का ध्यान रहता है, और अपने गाव, नगर या देश के आदमियो के अभावो या कष्टो की यथेष्ट चिन्ता नहीं होती हम अपना सास्कृतिक विकास करने की ओर

समुचित ध्यान नहीं देते, जिससे दूसरो से आत्मीयता का अनुभव करें, और उनके दुखो और कष्टो को अपना दुख और कष्ट मानें तथा उनके जीवन की विविध यातनाओ को दूर करने मे दिलोजान से जुट जाय

'आर्थिक मनुष्य' की कल्पना—हमने ऊपर कहा है कि वर्तमान अर्थशास्त्र मे भौतिक आवश्यकताओ को बहुत अधिक महत्व दिया जाता है इसकी बुनियाद इंगलैंड में अठारहवीं सदी मे पड़ी, जबकि वहाॅ पूजीवाद, साम्राज्यवाद और औद्योगिक क्रान्ति का जोर था वहा के अर्थशास्त्रियो ने मानव जीवन के अन्य पहलुओ की उपेक्षा करके आर्थिक पहलू को इतना महत्व दिया कि ऐसे 'आर्थिक मनुष्य' की कल्पना कर डाली, जो अपने जीवन में प्रत्येक बात केवल अर्थ की ही दृष्टि से सोचता और करता है. उसकी विचार-धारा का केन्द्र-बिन्दु धन है और उसके जीवन का प्रमुख कार्य यही है कि जैसे भी बने अधिक से अधिक पैसा प्राप्त करे उसके लिए किसी कार्य की उपयोगिता की कसौटी या मापदड यही है कि उससे कितना द्रव्य मिलता है. इस 'आर्थिक मनुष्य' के लिए यह सोचा जाना स्वाभाविक ही था कि वह चीजो को सस्ते से सस्ते उपायो से बनाए. मज़दूरी कम चुकाने के लिए यत्रो का खूब उपयोग करे, चाहे इससे जनता में कितनी ही बेकारी बढ़े इन सस्ती चीजों को खपाने के लिए तरह-तरह के विज्ञापनो आदि से वह लोगों को अपनी आवश्यकताएँ बढ़ाने की प्रेरणा करे, और उनकी खूब माग पैदा करके वह उन्हे अपने देश मे तथा विदेशो मे महगे से महगे भाव से बेचे. अपने माल की खपत बढ़ाने के लिए वह सरकारी अधिकारियो की सहायता लेने के लिए भले-बुरे सभी उपायो को काम मे लावे. वह अपने राज्य का प्रभाव या अधिकार अधिक से अधिक बढाने का इच्छुक हो.

इस प्रकार वह अपने स्वार्थ के लिए राज्य का सहायक और समर्थक हो और दोनो की सम्मिलित शक्ति का उपयोग देश मे लोकतत्र का विकास रोकने मे और विदेशो मे उपनिवेश-स्थापन या प्रभुता-विस्तार करने मे हो यह स्पष्ट ही है कि 'आर्थिक मनुष्य' की कल्पना के साथ व्यक्तिवाद, पूजीवाद, यत्रवाद, और साम्राज्यवाद का स्वभावतः गठ-बधन है.

ऐसे 'आर्थिक मनुष्य' के आधार पर वर्तमान अर्थशास्त्र की (जो वास्तव मे पाश्चात्य अर्थशास्त्र है) रचना की गयी थी. पीछे यह अनुभव किया गया कि 'आर्थिक मनुष्य' का अध्ययन असली आदमी का अध्ययन नहीं है. आदमी अपने विविध कार्य केवल आर्थिक भावनाओ से प्रेरित होकर नहीं करता. अर्थशास्त्र मानव जीवन की परिस्थितियों के प्रति न्याय तभी कर सकता है, जब वह मनुष्य की विविध प्रेरक शक्तियो का तथा उनके आपसी सम्बन्धो का यथेष्ट ध्यान रखे इस तरह 'आर्थिक मनुष्य' की विवेचना को पीछे आने वाले अर्थशास्त्रियो ने विशेष महत्व नहीं दिया, तथापि वे उसकी छाया से मुक्त नही हो पाए अर्थशास्त्र मे अर्थ या धन को ही प्रभुता दी जाती रही. रस्किन, कार्लाइल आदि जिन लेखको ने इस दृष्टिकोण का विरोध किया और नीति पर आश्रित मानवी मूल्यो को प्रधानता दी, उनके ग्रन्थो को कुछ महत्व नहीं दिया गया, उन्हे अप्रामाणिक कहा गया अगरेजो के प्रभुत्व के कारण भारत में भी यही होता रहा.

गलत दृष्टिकोण और उसका दुष्परिणाम—जीवन में केवल आर्थिक या स्वार्थमय दृष्टिकोण रखना गलत है इससे हम दूसरो के हित की उपेक्षा करते है; हमारे कार्यों या व्यवहार का उन पर क्या प्रभाव पडता है, इसका विचार नहीं करते

अनेक वार तो हम जानबूझ कर दूसरों का कष्ट बढ़ाते और उनका शोषण करते हैं. नैतिक तथा सांस्कृतिक आधार से वंचित होने के कारण वर्तमान अर्थशास्त्र ने व्यक्ति के मन में भोग-विलास की कामना बढा दी है आदमी 'धन' कहे जाने वाले पदार्थों को ही सामाजिक प्रतिष्ठा, सभ्यता और श्रेष्ठता का साधन मान कर उसे प्राप्त करने में लगा रहता है वह जैसे भी धन आवे, अधिक-अधिक धनवान बनना चाहता है, उसकी यह तृष्णा उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है वह इस प्यास को बुझाने में अपने शरीर को खपाता रहता है, और अपने जीवन के अन्तिम अध्याय में यह स्वीकार करता है —

तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णा,
भोगा न भुक्ता, वयमेव भुक्ता

अपनी भोगेच्छा की पूर्ति मे ही लगा हुआ आदमी अपना भी यथेष्ट विकास नहीं कर पाता. वह शारीरिक सुख की ओर ही ध्यान देता है, मानसिक विकास को भौतिक सुख-सामग्री उत्पन्न करने के साधन के रूप मे काम मे लाता है, और सांस्कृतिक विकास की अवहेलना करता है इस प्रकार उसका विकास अपूर्ण और एकागी होता है, उसमे सतुलन नही रहता. ऐसे व्यक्तियो से सामाजिक कल्याण की क्या आशा की जाय ! वर्तमान आर्थिक विचार-धारा देश मे सिर्फ मुट्ठी भर आदमियो को करोडपति या अरबपति बनाती है, और कुछ थोड़े से आदमियो को साधारण मध्यम स्थिति मे छोड़ कर शेष को— कुछ दशाओ मे अस्सी-पिचासी फी सदी जनता को—दीन दरिद्र, शोषित और पीडित बनाती है

वर्तमान आर्थिक दृष्टिकोण इस बात के लिए उत्तरदायी है कि ससार आज विस्फोटक पदार्थों का भंडार बना हुआ है.

प्रत्येक समर्थ देश दूसरे देशों का अधिक-से-अधिक शोषण करना चाहता है. वह उन्हे अपने कारखानो के लिए आवश्यक कच्चे पदार्थों का उत्पादक और तैयार माल का बाजार बनाने का इच्छुक है इसका नतीजा यह है कि बड़ी-बडी शक्तियो की गिद्ध-दृष्टि कुछ खास-खास भू-भागो पर विशेष रूप से लगी हुई है. इससे उन बड़ी-बड़ी शक्तियो मे आपस में प्रतियोगिता और संघर्ष है.

इस पीढ़ी के आदमी पिछले महायुद्ध के सकटो के प्रभाव से मुक्त नहीं हो पाए हैं, कि फिर युद्ध की भाषा सुनने और बोलने लग गए है इस प्रकार इस समय शान्ति इतनी अल्पकालीन और कम प्रभाव वाली रहती है कि युद्ध ही इस युग का सत्य हो रहा है

गांधीजी के विचार—इस युग मे जिन महानुभावो ने संसार की आर्थिक स्थिति पर मानवता की दृष्टि से गहरा विचार किया है, उनमें गाधीजी प्रमुख है. उनका मत है—

"पश्चिम के अर्थशास्त्र की वुनियाद गलत दृष्टि-बिन्दुओ पर डाली गयी है, इस लिए वह अर्थशास्त्र नहीं, बल्कि अनर्थशास्त्र हो गया है वे गलत दृष्टि-बिन्दु इस प्रकार है :—

(१) उसने भोग विलास की विविधता और विशेषता को सस्कृति का प्राण माना है.

(२) वह दावा तो करता है ऐसे सिद्धान्तो का, जो सब देशो और सब कालो पर घटित होते हो, परन्तु सच बात यह है कि उनका निर्माण यूरोप के छोटे, ठडे और खेती के लिए कम अनुकूल देशो मे, घनी बस्ती वाले परन्तु मुट्ठी भर लोगो की, अथवा बहुत थोडी आबादी वाले उपजाऊ वडे खडो की परिस्थिति के अनुभव से हुआ है.

(३) पुस्तको मे भले ही निषेध किया गया हो, फिर भी योजना और व्यवहार मे यह मानने और मनवाने की पुरानी रट से मुक्त नहीं हो पाया है कि (क) व्यक्ति, वर्ग या अधिक हुआ तो अपने ही छोटे से देश के अर्थ-लाभ को प्रधानता देनेवाली और उसके हित की पुष्टि करनेवाली नीति ही अर्थशास्त्र का अचल शास्त्रीय सिद्धान्त है, और (ख) कीमती धातुओं को हद से अधिक प्रधानता दी जाय

(४) उसकी विचार-श्रेणी मे अर्थ और नीति-धर्म का कोई सम्बन्ध नहीं माना गया है इस लिए उसने अपने समाज मे अर्थ की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण जीवन के विषयों को गौण समझने की आदत डाल दी है

"इसके फलस्वरूप—

१—यह अर्थशास्त्र यन्त्रों का, शहरो का तथा (खेती की अपेक्षा) उद्योगो का अंध-पूजक बन गया है

२—इसने समाज के भिन्न-भिन्न वर्गों और देशों मे समन्वय करने के बजाय विरोध उत्पन्न किया है और सर्वोदय के बदले थोडे लोगो का थोडे समय के लिए ही लाभ सिद्ध किया है

३—यह पिछडे हुए समझे जाने वाले देशो मे आर्थिक लूट मचा कर तथा वहा के लोगों को दुर्व्यसनो मे फसा कर और उनका नैतिक अधःपतन करके समृद्धि का पथ खोजता है.

४—जिन राष्ट्रो या समाजो ने इस अर्थशास्त्र को अगीकार किया है, उनका जीवन पशुबल पर ही टिक रहा है

५—इसने जिन-जिन वहमों (अन्ध विश्वासो) को जन्म दिया या बढाया है, वे धार्मिक या भूत-प्रेतादिक के नाम से प्रचलित वहमो से कम बलवान नहीं है §

---

§श्री किशोरी लाल मशरूवाला लिखित 'गाधी विचार दोहन' से

वर्तमान अर्थशास्त्र का संकुचित क्षेत्र—ऊपर अथशास्त्र सम्बन्धी गलत दृष्टिकोण के कारण होनेवाली हानियो पर प्रकाश डाला गया है. इन सारी बुराइयो का मूल कारण यह है कि हमने अर्थशास्त्र का क्षेत्र बहुत संकुचित, सीमित या सकीर्ण रखा है. पारिवारिक अर्थशास्त्र में हम परिवार के हित की बात सोचते हैं. पर इस बात पर जोर नही देते कि प्रत्येक परिवार का हित अन्य परिवारो के हित के साथ सम्बन्धित है हम बहुधा अपने पड़ोसी परिवारो के हित की अवहेलना करते हैं. ग्राम्य अर्थशास्त्र मे गांव की, और नागरिक अर्थशास्त्र मे नगर की उन्नति का विचार करते हैं, परन्तु किसी गांव या नगर की कुल सम्पत्ति का योग बढ़ना ही उसकी वास्तविक उन्नति नहीं है, खासकर जब कि वहा अपने स्वार्थ के लिए एक वर्ग दूसरे वर्ग का, एक गांव दूसरे गाव का, या एक नगर दूसरे नगर का अहित करने मे सकोच न करता हो वर्तमान काल में नगर ग्रामो का भयंकर शोषण कर रहे है, यहा तक कि उनके जीवन का आधार ही ग्रामो का अधिक-अधिक ह्रास हो रहा है राष्ट्रीय अर्थशास्त्र में हम राष्ट्र का कुल उत्पादन या सुख-सामग्री और सम्पत्ति बढ़ाने का लक्ष्य रखते हैं, परन्तु एक तो उसके सब वर्गो की, खासकर निम्न वर्गों की, यथेष्ट चिन्ता नहीं करते; दूसरे यह भूल जाते हैं कि हमारा विचार-क्षेत्र राष्ट्र तक सीमित न रह कर मानवता का होना चाहिए समस्त मनुष्य जाति का दुख-सुख एक है; जब तक उसके कुछ भागो का या एक भी भाग का शोषण होगा, विश्व-शान्ति नही हो सकती.

दृष्टिकोण बदलने की आवश्यकता—यह स्पष्ट है कि लोक-हित के लिए, जनता के कल्याण के लिए, प्रत्येक देश में सर्वसाधारण की दीनता और कंगाली दूर करने के लिए, ससार

का समष्टि रूप से उत्थान करने के लिए, नयी समाज रचना के लिए और वर्तमान अशान्ति, सघर्ष, चिन्ता और वेदना को दूर करने के लिए वर्तमान अर्थशास्त्र के दृष्टिकोण मे आमूल परिवर्तन करने की आवश्यकता है इस अनर्थशास्त्र की जगह वास्तविक या सच्चे अर्थशास्त्र की रचना करनी है

नया अर्थशास्त्र हमें नित्य अपनी आवश्यकताए बढाने और उनकी पूर्ति मे परेशान रहने से बचने का मार्ग दिखाएगा. उसके अध्ययन और चितन से हम भोजन वस्त्रादि का उपयोग उस सीमा तक ही करेंगे, जहाँ तक कि ये वस्तुए हमारी जीवन-यात्रा के लिए आवश्यक हो हम केवल खाने के लिए जीवित रहना नहीं चाहेगे, वरन् इसलिए खाएगे कि हम अच्छी तरह जीवन व्यतीत कर सके यही बात वस्त्रो और मकान आदि के उपयोग के लिए लागू होगी हम भौतिक साधनो की अधिक से अधिक वृद्धि मे नही लगे रहेगे और धनी व्यक्ति को बडा आदमी नहीं मानेगे हम धन का ठीक अर्थ ग्रहण करेगे, और उसे मानवता से अधिक महत्व नही देगे 'धन' हमारे लिए एक साधन मात्र होगा, साध्य नहीं हम मानवता का यथेष्ट मूल्याकन करेंगे हमारी किसी आर्थिक क्रिया से हमारे गाव या नगर निवासी का अहित न होगा, वरन् हमे अपने प्रत्येक कार्य में अपने देश वालो की शारीरिक, मानसिक तथा सास्कृतिक उन्नति का विचार रहेगा यही नहीं, हम दूसरे देशो के शोषण को अपने देश की की समृद्धि मानने की भूल नहीं करेगे हम विश्वबधुत्व का आदर्श रखते हुए सभी राज्यो के नागरिको से अपनत्व की भावना रखेंगे और उनके उत्थान में भरसक सहायक होगे

सर्वोदय अर्थशास्त्र—उपर्युक्त भावनाओ और आदर्शों की पूर्ति का मार्ग बताने वाला अर्थशास्त्र ही इस युग की माग है हमे ऐसे अर्थशास्त्र की रचना करनी चाहिए, जिसका आधार किसी

छोटे क्षेत्र के मनुष्यों का स्वार्थ न हो कर, सब का कल्याण हो वास्तव में किसी एक व्यक्ति, एक समूह या एक देश के हित में किसी का हित नहीं है: सब व्यक्तियों तथा सब देशों के हित में सब का हित है और सबके साथ ही हमारा भी हित है दूसरों के हित की उपेक्षा करके हम अपना हित नहीं कर सकते इस लिए हमारे अर्थशास्त्र का लक्ष्य मानव-समाज के किसी अंग विशेष की उन्नति न हो कर सभी की उन्नति होनी चाहिए, और वह उन्नति भी एकांगी अर्थात् केवल भौतिक न होकर सर्वांगी अर्थात-शारीरिक, मानसिक और सांस्कृतिक होनी चाहिए ऐसे अर्थशास्त्र का आधार नैतिक होना अनिवार्य है इस अर्थशास्त्र के उपर्युक्त गुणों के कारण इसे 'सर्वोदय अर्थशास्त्र' नाम दिया जा सकता है

'सर्वोदय' का अर्थ है सबका हित, मनुष्य मात्र का विकास समाज में कोई व्यक्ति या वर्ग ऐसा न हो जिसके हित या विकास का विचार न हो जो व्यक्ति सामाजिक कड़ी के अन्तिम छोर पर हो, उसका भी कल्याण हो जैसे एक परिवार के सदस्यों में शारीरिक या मानसिक योग्यता में भिन्नता होते हुए भी सबके हित का ध्यान रखा जाता है, सबकी ही आवश्यकताओं की समान रूप से पूर्ति करने का प्रयत्न किया जाता है, ऐसे ही सर्वोदय अर्थशास्त्र समाज के किसी अंग विशेष के लिए ही न होगा, चाहे वह अंग बड़ा या बहुमत वाला ही क्यों न हो. यह अर्थशास्त्र बहुसंख्यकों के अधिकतम हित की बात मान्य न कर सबके ही कल्याण का विवेचन करेगा गांधीजी का निम्नलिखित कथन इसका केन्द्र बिन्दु है—

'मैं ज्यादा से ज्यादा संख्या के ज्यादा से ज्यादा भले के सिद्धान्त को नहीं मानता. उसे नंगे रूप में देखें तो उसका अर्थ यह होता है कि ५१ फी सदी के मान लिये गये हितों की खातिर

४९ फी सदी के हितो का बलिदान कर दिया जाना उचित है यह सिद्धान्त निर्दय है और इससे मानव समाज की बहुत हानि हुई है सब का ज्यादा से ज्यादा भला करना ही एक सच्चा, गौरवयुक्त और मानवता-पूर्ण सिद्धान्त है और यह सिद्धान्त अधिकतम स्वार्थत्याग से ही अमल मे लाया जा सकता है'

अस्तु, सर्वोदय अर्थशास्त्र सम्पूर्ण मानव समाज के हित की दृष्टि से विचार करेगा ; उसमे धर्मों, जातियो, वर्णों या वर्गो की विभिन्नता को मान्य नहीं किया जायगा वह किसानो, मजदूरो, कारीगरो को ; गोरे, काले, पीले सब रगो के आदमियों को ; एशिया, यूरोप, अमरीका, अफ्रीका आदि सभी भू-भागो के निवासियो को समान समझेगा

अर्थशास्त्र और नीति—सामाजिक विद्या होने के कारण अर्थशास्त्र का दूसरे सामाजिक शास्त्रो से सम्बन्ध होना अनिवार्य है. पर वर्तमान अर्थशास्त्री इसे नीतिशास्त्र से सर्वथा पृथक् रखते हैं यह कहा तक ठीक है ? नीति हमारे सामने आदर्श उपस्थित करती है, वह बतलाती है कि कौनसा काम अच्छा है और कौनसा बुरा, मनुष्य को क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए अर्थशास्त्र हमारे सामने आर्थिक प्रयत्नो द्वारा होनेवाले समाज और विश्व के कल्याण का आदर्श रखता है इस प्रकार अर्थशास्त्र और नीति का घनिष्ट सम्बन्ध स्पष्ट है अर्थशास्त्र बतलाता है कि वितरण किस प्रकार ऐसा हो कि उस मे आर्थिक विषमता कम-से-कम हो, श्रमजीवियो को वेतन कितना दिया जाना चाहिए, जिससे उन्हे जीवन-निर्वाह और विकास के साधन प्राप्त हो , वस्तुओ का मूल्य किस प्रकार ऐसा निर्धारित किया जाय कि उत्पादको को जीवन-रक्षक और निपुणता-दायक पदार्थों की उत्पत्ति के लिये प्रोत्साहन मिले

आर्थिक परिस्थितियो का मनुष्य के नैतिक जीवन पर बहुत प्रभाव पड़ता है जब देश में लोगो को खाने पहनने की आवश्यक चीजे यथेष्ट परिमाण में नहीं मिलतीं तो उन मे कलह, संघर्ष, चोरी और लूट आदि बढना स्वाभाविक ही है. कहा है, 'भूखा आदमी कौन सा पाप नहीं करता' और 'भूखे भजन न होय गोपाला.' वास्तव मे भूख और प्यास से पीड़ित व्यक्तियो से ऊचे नैतिक आदर्शो की आशा नहीं की जा सकती इस प्रकार अर्थशास्त्र और नीतिशास्त्र को एक 'दूसरे से जुदा नहीं किया जा सकता.

खेद है कि वर्तमान अर्थशास्त्र के लेखको मे से अधिकाश, अर्थशास्त्र के विवेचन में नैतिक दृष्टिकोण की उपेक्षा करते है. वे इसके विज्ञान-पक्ष पर जोर देते हुए कहते है कि क्या करना चाहिए और क्या नही करना चाहिए, अर्थात् क्या उचित है और क्या अनुचित—इसका विचार करना अर्थशास्त्र का काम नहीं है. इस प्रकार वर्तमान अर्थशास्त्र प्राय· नीति से जुदा है इससे व्यक्ति तथा समाज के विकास मे भयकर बाधा उपस्थित है सर्वोदय अर्थशास्त्र अपने आपको नीति से अलग नहीं मानता, वह ऐसे व्यवहार किये जाने का ही आदेश करता है, जिससे सब का, सम्पूर्ण जनता का, हा विश्व भर का कल्याण हो.

दूसरा अध्याय

धन किसे कहें ?

धन साधन मात्र है और उससे सुख तथा दुःख तथा दोनो हो सकते हैं यदि वह अच्छे मनुष्य के हाथ मे पड़ता है तो उसकी बदौलत खेती होती है और अन्न पैदा होता है, किसान निर्दोष मजदूरी करके संतोष पाते हैं और राष्ट्र सुखी होता है खराब मनुष्य के हाथ में धन पड़ने से उसमे (मान लीजिए कि) गोले बारूद बनते हैं और लोगो का सर्वनाश होता है गोला-बारूद बनानेवाला राष्ट्र और जिस राष्ट्र पर इनका प्रयोग होता है, वे दोनों हानि उठाते हैं और दुःख पाते हैं इस तरह हम देख सकते है कि सच्चा आदमी ही सच्चा धन है.

—गांधीजी.

सम्पत्ति की उपयोगिता इसी मे है कि वह समाज के काम आकर सामाजिक जीवन को अधिक पूर्ण बनावे

—पुरुषोत्तमदास टंडन

सर्वोदय अर्थशास्त्र की व्याख्या के सम्बन्ध मे विचार कर चुकने पर अब हम यह जानलें कि इस अर्थशास्त्र मे अर्थ या धन किसे कहते है, कारण इस विषय में वर्तमान अर्थशास्त्र और सर्वोदय अर्थशास्त्र मे तात्विक अन्तर है, और इस अन्तर से दोनो अर्थशास्त्रो की कितनी ही महत्वपूर्ण बातो में जुदा-जुदा दृष्टिकोण हो गया है

धन के लक्षण : वर्तमान अर्थशास्त्र के अनुसार— पहले हमारे लिए यह जानना आवश्यक है कि वर्तमान अर्थशास्त्र

के अनुसार अर्थ या धन से अभिप्राय: ऐसी प्रत्येक वस्तु से होता है, जिससे मनुष्य की किसी आवश्यकता की पूर्ति होती हो, और साथ ही जिसको देकर बदले मे कोई दूसरी उपयोगी वस्तु मिल सकती हो इस तरह अन्न, कोयला, लोहा, लकड़ी आदि चीजें धन गिनी जाती है सक्षेप में वर्तमान अर्थशास्त्र मे सब उपयोगी और विनिमय-साध्य वस्तुए धन मानी जाती हैं कोई वस्तु विनिमय-साध्य तब कही जाती है, जब आदमियो को उसका दूसरी उपयोगी वस्तुओ से अदल-बदल करने की जरूरत होती हो, और इसलिए अदल-बदल अथवा क्रय-विक्रय होता हो. ससार में ऐसी कितनी ही वस्तुएं है जो मनुष्य के लिए उपयोगी तो है, परन्तु विनिमय-साध्य नही हैं ऐसी वस्तुओ को वर्तमान अर्थशास्त्र में धन नहीं कहा जाता उदाहरण के तौर पर आदमी के जीवित रहने के लिए सब से अधिक आवश्यक वस्तुएं हवा, पानी और रोशनी (सूर्य का प्रकाश) है पर साधारण दशा में इन्हे प्राप्त करने के लिए मनुष्य को कोई श्रम नहीं करना पडता ; जिसे जितने परिमाण मे इनकी आवश्यकता होती है, उसे उतने परिमाण मे ये सहज ही मिल जाती है इन पर किसी को अधिकार या स्वामित्व रखने की जरूरत नहीं होती, इनका विनिमय या क्रय-विक्रय नहीं होता ऐसी प्राकृतिक या सर्व-सुलभ सम्पत्ति को वर्तमान अर्थशास्त्र मे धन नहीं कहा जाता.

यह तो भौतिक सम्पत्ति की बात हुई, अब अभौतिक सम्पति की बात ले विनिमय-साध्य वस्तुओ के अतिरिक्त, ऐसे कार्यो या सेवाओ को भी वर्तमान अर्थशास्त्र मे धन माना जाता है, जो विनिमय-साध्य हो ; उदाहरण के लिए अध्यापक, जज, सिपाही, चिकित्सक, उद्योग-सचालक, वैज्ञानिक, आविष्कारक, लेखक, कवि तथा अन्य कलाकार का कार्या , समाज के रीति-रिवाज या

राज्य के कायदे कानूनों से मिलनेवाले स्वामित्व या मिल्कियत आदि के अधिकार, जैसे पुस्तकों का मुद्रणाधिकार (कापी-राइट), औषधियों यत्रों या व्यापार-चिन्हों का 'पेटन्ट', दुकान या कोठी की ख्याति या प्रसिद्धि ('गुड विल')—ये उपयोगी भी हैं और विनिमय-साध्य भी, अर्थात् इनका क्रयविक्रय हो सकता है इस लिए ये भी वर्तमान अर्थशास्त्र में धन मानी जाती हैं

इस प्रकार वर्तमान अर्थशास्त्र में अर्थ या धन मानीजाने वाली वस्तुओं के लक्षण हैं.—(१) उपयोगिता और (२) विनिमय-साध्यता. कोई वस्तु विनिमय-साध्य होने के लिए यह आवश्यक है कि वह परिमित परिमाण मे हो, और श्रम से उत्पन्न की जाती हो साथ ही वह ऐसी हो कि उस पर व्यक्ति का अधिकार हो सके और वह एक व्यक्ति से दूसरो को हस्तान्तरित की जा सके यदि कोई उपयोगी वस्तु हिन्सक पशुओ से घिरे हुए जंगल में अथवा गहरे समुद्र मे इस प्रकार रखी हो कि दूसरा आदमी उसे अपने अधिकार मे नहीं ले सकता तो यह वस्तु विनिमय-साध्य न होगी और इस लिए धन भी नहीं मानी जायगी.

धन के, वर्तमान अर्थशास्त्र के अनुसार माने जाने वाले लक्षणो मे से एक उपयोगिता बतलाया गया है इसके सम्बन्ध में विचार करने की आवश्यकता है. कुछ लोग शौक या नशे के लिए शराब पीने लगते हैं, और इसे उपयोगी समझ कर इसे खरीदने को तैयार रहते हैं इसलिए, शराब को वर्तमान अर्थशास्त्र मे धन माना जाता है इस अर्थशास्त्र के रचयिताओ का कथन है कि 'शराब मनुष्य के लिए उपयोगी है, इससे उसकी आवश्यकता की पूर्ति होती है फिर, इसके धन माने जाने मे क्या सन्देह रहा ! मनुष्य की शराब पीने की आदत

अच्छी है या बुरी; उसका अपनी इस आवश्यकता को पूरा करना उचित है या अनुचित—यह विचार करना अर्थशास्त्र का काम नहीं'

सर्वोदय अर्थशास्त्र के अनुसार धन का विचार— पहले बताया जा चुका है कि सर्वोदय अर्थशास्त्र का उद्देश्य व्यक्ति तथा समाज का हित और विकास करना है इस प्रकार इस अर्थशास्त्र की दृष्टि से ऐसी प्रत्येक वस्तु या सेवा धन है, जो व्यक्ति तथा समाज का हित साधन करती है, और उनके विकास मे सहायक होती है इस दृष्टि से हवा, पानी या रोशनी भी धन है, क्योकि इनके बिना तो व्यक्ति तथा समाज जीवित ही नहीं रह सकता. ऐसी अत्यन्त महत्वपूर्ण वस्तुओ को धन न मानना सर्वथा अनुचित और भ्रमपूर्ण है सृष्टि मे ये चीजे अपरिमित मात्रा मे मिलती हैं, इनको प्राप्त करने के लिए आदमी को श्रम नहीं करना पडता और ये चीजे विनिमय-साध्य नहीं है, तो इस कारण इनका महत्व कुछ कम नहीं होता, और इनको धन माने जाने मे कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए

पुन सर्वोदय अर्थशास्त्र शराब आदि को केवल इस लिए अर्थ या धन नहीं कहेगा कि इन वस्तुओ से किसी व्यक्ति की आवश्यकता की पूर्ति होती है और वह इन्हे खरीदता है. इस अर्थशास्त्र के अनुसार तो यह विचार करना है कि इनसे मनुष्य का हित साधन होता है या नहीं अगर शराब के सेवन से आदमी बेसुध हो जाता है, गाली गलौच बकता है और पीछे इससे उसके शरीर की पुष्टि न होकर उसके स्वास्थ्य पर हानिकर प्रभाव पडता है तो शराब वर्तमान अर्थशास्त्र की दृष्टि से ,उपयोगी' और 'विनिमय-साध्य' होते हुए भी वास्तव मे

अर्थ नही है, अनर्थ है. हाँ, यदि शराब का उपयोग-किसी रोग को दूर करने में, औपधि के रूप में, किया जाय तो उस सीमा तक उसे सर्वोदय अर्थशास्त्र मे भी अर्थ या धन माना जायगा.

इसी प्रकार हथियारो के विषय मे विचार करे एक आदमी उनका उपयोग लुटेरे या हिंसक पशुओ से अपनी रक्षा करने के लिए करता है, दूसरा आदमी उनसे दूसरे निर्दोष व्यक्तियो की हत्या करता है. इससे स्पष्ट है कि यह एक ही वस्तु अपने उपयोग के अनुसार सुखदायक भी हो सकती है और दुःखदायी भी, अर्थ भी हो सकती है और अनर्थ भी निदान, किसी वस्तु के अर्थ या धन होने के लिए एक विचारणीय बात यह है कि आदमी उसका उपयोग किस प्रकार, किस रीति से या कहा तक करता है वह वस्तु (सर्वोदय अर्थशास्त्र के अनुसार) उसी दशा मे अर्थ मानी जायगी जबकि उसका उपयोग व्यक्ति तथा समाज के हित मे होता हो इसके विपरीत यदि उस वस्तु का 'उपयोग' इस प्रकार होता है कि व्यक्ति या समाज के लिए हानिकर और इनके विकास मे बाधक होती है तो वह वस्तु अनर्थ ही मानी जायगी. भारतीय विचारको ने इसे 'आसुरी सम्पत्ति' कहा है

अब अभौतिक सम्पत्ति की बात ले जैसा पहले कहा गया है, इस मे मनुष्य की सेवाएँ गिनी जाती है वर्तमान अर्थशास्त्र के अनुसार वे सेवाएँ धन मानी जाती हैं, जो विनिमय-साध्य हो इस प्रकार अध्यापक, डाक्टर, वकील, लेखक आदि का कार्य भी धन माना जाता है परन्तु सर्वोदय की दृष्टि से उपर्युक्त पेशा करने वाले बुद्धिजीवी है, इन्हे अपना कार्य लोकसेवा के लिए करना चाहिए, और किसी प्रतिफल की आशा न रखनी चाहिए, अपने निर्वाह के लिए इन्हे शरीर-श्रम करना चाहिए

इस विषय पर खुलासा आगे लिखा जायगा, यहां यही कहना है कि यदि इनकी योग्यता स्वार्थ साधन में काम आती है, तो सर्वोदय अर्थशास्त्र में यह धन की गणना में नहीं आती. इसी प्रकार पुस्तकों का कापीराइट (मुद्रणाधिकार), औषधियो या यत्रो आदि का पेटन्ट-अधिकार, किसी दुकान या कोठी आदि की ख्याति ('गुडविल') आदि भी ऐसी चीजें हैं, जिनका उपयोग बुद्धिजीवी अपने स्वार्थ के लिए करते हैं. इन्हे भी सर्वोदय अर्थशास्त्र में धन नहीं माना जाता

अस्तु, सर्वोदय अर्थशास्त्र के विचार से अर्थ या धन ऐसी प्रत्येक वस्तु है जो व्यक्ति या समाज के लिए हितकर तथा इनका विकास करने वाली है उसके लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह विनिमय-साध्य ही हो अथवा यो कहा जा सकता है कि सर्वोदय अर्थशास्त्र के अनुसार अर्थ या धन विनिमय-साध्य भी हो सकता है और अविनिमय-साध्य भी आगे के विषय को समझने के लिए अर्थ या धन के इस लक्षण को ध्यान मे रखना बहुत आवश्यक है.

कोई व्यक्ति वास्तव में धनवान कब माना जाना चाहिए?—इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि किसी आदमी को केवल इस लिए धनवान या सम्पत्तिशाली नहीं समझा जाना चाहिए कि उसके पास बहुत सा रुपया पैसा, नोट या सरकारी सिक्यूरिटी आदि हैं, या हिन्सक अस्त्र या विषैले पदार्थ आदि इतने बड़े परिमाण मे हैं कि उनका विनिमय-मूल्य बहुत अधिक मिल सकता है हमे यह सोचना होगा कि वह व्यक्ति इस द्रव्य का तथा इन वस्तुओ का उपयोग किस रीति से करता है. जब वह इनके सचय और उपयोग मे लोकहित की भावना का परिचय देता है, दूसरों से अपने भाई

बहिन की तरह प्रेम का व्यवहार करता है, तब ही वह धनवान कहलाने का अधिकारी है यदि इसके विपरीत, वह व्यक्ति समाज के कल्याण की उपेक्षा कर उस वस्तु-संग्रह का अपने निजी स्वार्थ-साधन में और दूसरों के शोषण और पीडन में उपयोग करता है तो ऐसे व्यक्ति के लिए अनर्थवान या विपत्तिमान उपाधि देना ठीक होगा

किसी देश के धनी होने की सच्ची कसौटी— उपर्युक्त विचारधारा के अनुसार किसी देश में बहुत सी वस्तुओ की बड़े परिमाण में उत्पत्ति होने से ही उस देश को अर्थवान नहीं माना जा सकता इस समय अनेक देश ऐसा हिसाब उपस्थित कर सकते हैं कि कुछ वर्ष पहले उनकी जितनी सम्पत्ति थी, उसकी अपेक्षा आज कई गुनी बढ़ी हुई है पर इनमे से कितने ही ऐसे हैं जिनके पास रुपया तथा कृत्रिम आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले पदार्थ खूब होते हुए भी वहां भोजन-वस्त्र आदि की कमी है इन देशो को धनवान नहीं कहा जाना चाहिए. भोजन-वस्त्र आदि की कुल राशि यथेष्ट होने पर भी कोई देश उस समय तक धनवान कहे जाने का अधिकारो नहीं है, जब तक इस धन का अधिकाश भाग कुछ थोडे से पूंजीपतियो, लखपति या करोड़पतियो, सेठ साहूकारो या जागीरदारो जमीदारों आदि के ही पास है, और सर्वसाधारण को अपनी रोजमर्रा की अनिवार्य आवश्यकताओ की पूर्ति के साधन यथेष्ट परिमाण में सुलभ नहीं होते इस प्रकार देश के प्रति व्यक्ति की औसत सम्पत्ति का विशेष महत्व नहीं यह औसत का हिसाब अनेक बार कितना धोखा देने वाला होता है, यह सहज ही समझा जा सकता है हम किसी देश को वास्तव मे धनवान तभी कहेंगे, जब वहां सब आदमियो को अपने जीवन-निर्वाह तथा शारीरिक, मानसिक और नैतिक विकास के साधन उपलब्ध हो, और उनमें

आर्थिक विषमता बहुत ही मर्यादित परिमाण से अधिक न हो. यह भी जरूरी है कि वह देश समष्टि रूप से और वहा के निवासी व्यक्तिगत रूप से अपनी जरूरते कम करते हुए नैतिक ऊंचाई की तरफ लगातार बढ़ रहे हो. नैतिक ऊंचाई का मापदंड यही है कि उस देश के आदमी आपस में एक-दूसरे को या अन्य देशो के लोगो को अपने ही जैसा मान कर उनके दुख और तकलीफो में क्रियात्मक सहानुभूति का परिचय देते है.

एक बात और. पहले कहा गया है कि सर्वोदय अर्थशास्त्र के अनुसार हवा, पानी और रोशनी जैसी प्राकृतिक और सर्व-सुलभ सम्पति भी धन है, भले ही वह विनिमय-साध्य न हो इस प्रकार यदि दो देशो मे अन्य अर्थ की दृष्टि से समानता होते हुए जिस देश मे आदमी इन चीजो का इनके प्राकृतिक शुद्ध रूप में यथेष्ट उपयोग करते हैं, अथवा जहां ये अधिक गुण-कारी हैं, वही देश अधिक धनवान माना जायगा.

विशेष वक्तव्य—यदि सूक्ष्म विचार किया जाय तो किसी देश की वास्तविक सम्पत्ति कुछ पदार्थ न हो कर वहां के नर नारी हैं. ये जितने अधिक स्वस्थ, गुणवान, नीतिवान सेवा-भावी होगे, उतना ही वह देश अधिक धनवान माना जाना चाहिए. गांधीजी ने कहा है 'सच्चा आदमी ही सच्चा धन है. जिस राष्ट्र में नीति है, वह धन-सम्पन्न है' इसी प्रकार रस्किन का कथन है—'जीवन ही सच्चा धन है; वह जीवन जिसमे प्रेम, आनन्द और सद्भावना की सम्पूर्ण शक्तियाँ वर्तमान है वही राष्ट्र सब से अधिक धनवान है, जिसकी गोद मे अधिकाधिक उदार और सुखी मानवात्माए पलती हैं. वही मानव सब से अधिक मालदार है, जो अपने जीवन के सम्पूर्ण कर्तव्यो को पूरा कर, दूसरे प्राणियो के जीवन पर व्यक्तिगत रूप से एव अपने प्राप्त ऐश्वर्य द्वारा अधिकाधिक प्रभाव डालता है'

सर्वोदय अर्थशास्त्र व्यक्ति-प्रधान है. अगर एक व्यक्ति का सच्चा हित किसी बात या चीज से सधता हो—यह निश्चय है कि इस हित से किसी दूसरे का अहित हरगिज नहीं हो सकता, और अगर होता है, तो उस हित मे ही दोष है—तो वह बात या चीज धन समझी जायगी यह है सर्वोदय अर्थशास्त्र द्वारा स्वीकृत धन सम्बन्धी विचार-धारा क्या हम इस अर्थ मे धनवान बनने का प्रयत्न करेंगे और अपने देश तथा इस विश्व के ऐसे धन को कुछ बढ़ाने की दिशा मे अग्रसर होगे ?

तीसरा अध्याय

अर्थशास्त्र के भाग

उत्पत्ति का उद्देश्य और ध्येय उपयोग है, इसी प्रकार उपयोग का उद्देश्य और ध्येय जीवन है

—रस्किन

जो आदमी जमीन मे एक बीज डालता है और बहुसख्यक बीज उपजाता है, वही धन का सच्चा निर्माता है. किसी एक माल को नया रूप देना सच्चा उत्पादन नही है

—जो का कुमारप्पा

मनुष्य की आर्थिक क्रियाएँ, और अर्थशास्त्र के भाग — मनुष्य को अपने जीवन-निर्वाह तथा विकास के लिए विविध वस्तुओ की आवश्यकता होती है, वह इनका उपयोग करता है ये चीजे प्रायः उसे बनानी, पैदा करनी अथवा सग्रह करनी होती हैं. कोई आदमी अपनी जरूरत की सब चीजे स्वय पैदा नहीं कर सकता, उसे दूसरो की बनाई चीजें लेनी, और बदले मे अपनी बनाई चीजे दूसरों को देनी होती हैं. बहुधा आदमी विविध वस्तुओ की उत्पत्ति मे दूसरो की सहायता लेता है, इस दशा मे उसे उनकी इस सहायता का प्रतिफल देना होता है. इस प्रकार मनुष्यों की आर्थिक क्रियाएँ मुख्यत. ये होती हैं—(१) खाना पहनना आदि अर्थात् उपयोग (२) उपयोग के लिए वस्तुएँ बनाना, पैदा करना या सग्रह करना, (३) पदार्थों का अदल-बदल या क्रय-विक्रय अर्थात् विनिमय, और (४) उत्पत्ति मे सहायता देने

वालो को उनका प्रतिफल देना अर्थात् वितरण. इन आर्थिक क्रियाओ के अनुसार अर्थशास्त्र के मुख्य चार भाग किये जाते है—उपयोग*, उत्पत्ति, विनिमय और वितरण. इनके अतिरिक्त इसमे यह भी विचार होता है कि प्रचलित अर्थ-व्यवस्था के साथ राज्य का क्या अथवा कहा तक सम्बन्ध है अब हम अर्थ-शास्त्र के सब भागो का अर्थ और विषय कुछ स्पष्ट करते हैं. पहले उपयोग को लीजिए

उपयोग; आर्थिक क्रियाओं का मूल हेतु—साधारणतय यदि किसी वस्तु का उपयोग न हो, तो उसका उत्पादन भी न हो, फिर उसके विनिमय और वितरण की तो बात ही क्या! मनुष्य को विविध वस्तुओ के उपयोग करने की आवश्यकता होती है, इसी लिए उसका उत्पादन आदि होता है ‡. इस प्रकार उपयोग हमारी आर्थिक क्रियाओ का मूल हेतु कहा जा सकता है. हा, यह स्मरण रहे कि अर्थशास्त्र मे वस्तुओ या सेवाओ के सभी प्रकार के खर्च को उपयोग नही कहा जाता यह विचार करना होता है उस खर्च से किसी आदमी या समाज के जीवन निर्वाह या विकास मे सहायता मिली या नहीं

---

* वर्तमान अर्थशास्त्र मे 'उपभोग' शब्द का व्यवहार किया जाता है. पर उसमे भोग-विलास की गध आती है वह सर्वोदय अर्थशास्त्र की उस भावना से मेल नही खाता, जिसकी बुनियाद ही सयम और त्याग है जिसका लक्ष्य जरूरतों को बढाना नहीं, बल्कि उन्हें यथा-सम्भव कम करना है इस लिए हमें उपभोग के स्थान पर उपयोग का व्यवहार करना उचित जचता है.

‡ आजकल बहुधा उत्पादन मे उपयोग को प्रधानता न देकर मुनाफे का लक्ष्य रखा जाता है इसके बारे मे खुलासा विचार आगे किया जायगा.

उदाहरण के लिए एक आदमी रोटी खाकर अपनी भूख मिटाता है और दूसरा उसे आग मे फेंक कर जला डालता है. दोनो दशाओ मे रोटी खर्च हो गयी उसकी उपयोगिता समाप्त हो गयी परन्तु पहली दशा में, अर्थात् खाने वाले का जीवन-निर्वाह हुआ ; इसे रोटी का उपयोग हुआ, कहा जायगा इसके विपरीत, दूसरी दशा मे, रोटी के जलने से किसी आदमी को कुछ लाभ नहीं हुआ; इसे रोटी का उपयोग नहीं कहा जायगा हमारे इस उदाहरण को कुछ पाठक कृत्रिम समझेगे परन्तु अमरीका में अनाज की पकी फसलो को जला डालने और इंगलैंड मे फलों को नदी मे बहाने की घटनाएँ असत्य नहीं. अस्तु, उपयोग का अर्थ किसी वस्तु को ऐसे काम में लाने से होता है जिससे किसी व्यक्ति या समाज का हित या विकास हो. अर्थशास्त्र के इस भाग मे यह विचार किया जाता है कि मनुष्य जो तरह तरह के पदार्थों को खर्च करता है वह कहा तक उचित है, और किस सीमा पर अनुचित हो जाता है आदमी का रहनसहन का दर्जा बढ़ाने का वास्तव में क्या अर्थ है, और वह कहा तक बढाया जाना चाहिए.

अब उत्पत्ति का विचार करें.

उत्पत्ति का अर्थ; उपयोगिता की वृद्धि—वास्तव मे मनुष्य किसी सर्वथा नयी वस्तु का निर्माण नहीं कर सकता वह उसे केवल पहले से अधिक उपयोगी बनाता है. उपयोगिता-वृद्धि को ही अर्थशास्त्र में 'धनोत्पत्ति' या उत्पत्ति कहा जाता है उपयोगिता-वृद्धि कई प्रकार से होती है कुछ दशाओ में वस्तु के रूप या आकार में परिवर्तन होने से उसकी उपयोगिता बढ़ जाती है. उदाहरण के लिए किसान द्वारा खेती की जाती है, वह अन्न के रूप मे प्रकृति की सहायता से मिट्टी, हवा, पानी और प्रकाश के द्वारा ऐसा परिवर्तन करता है कि अन्न के एक

एक दाने के कई-कई दाने पैदा हो जाते हैं. इस प्रकार वह बीज की उपयोगिता रूप-परिवर्तन द्वारा बढ़ाता है. जो अन्न पहले दो चार दिन ही परिवार का निर्वाह करता, उससे अब कई माह तक काम चल सकता है, अथवा यों कहे कि जिससे एक परिवार का पालन होता, उससे अब अनेक परिवारो का हित होता है.

रूप-परिवर्तन द्वारा ऐसी उपयोगिता-वृद्धि भी होती है कि कच्चे माल का तैयार माल बन जाय. उदाहरण के लिए अन्न की रोटी बनायी जाती है. लकडी से मेज़ कुर्सी आदि सामान बनाया जाता है, रूई से तरह-तरह के कपड़े बनाये जाते हैं. इस प्रकार विविध शिल्प और उद्योग धन्धे, रूपान्तर द्वारा होने वाली उपयोगिता-वृद्धि के उदाहरण हैं.

उपयोगिता का सही अर्थ—यहा उपयोगिता का वास्तविक अर्थ विचारणीय है. वर्तमान अर्थशास्त्र और सर्वोदय अर्थशास्त्र मे, इस विषय में मौलिक मत-भेद है वर्तमान अर्थशास्त्र ऐसी प्रत्येक क्रिया को उपयोगिता बढाने वाली कहता है, जो किसी वस्तु या सेवा को पहले से अधिक मूल्यवान या कीमती बना दे. इस प्रकार उसकी उपयोगिता की कसौटी विनिमय-मूल्य है, वह उपयोगिता का माप पैसे से करता है इसी विचार-धारा के कारण आज-कल पदार्थों के रूप-परिवर्तन की क्रियाए उत्तरोत्तर बढ़ रही हैं. वस्तुओ को अधिक आकर्षक, सुन्दर लुभावनी या स्वादिष्ट बनाने की दिशा मे नये-नये प्रयत्न किये जाते हैं. इससे अनेक दशाओ में उनकी वास्तविक उपयोगिता नहीं बढ़ती, वे स्वास्थ्य के लिए हानिकर हो जाती हैं. उदाहरण के लिए धान को मिलो में कूट कर उसका केवल छिलका ही नहीं उतारा जाता, वरन् चावल का ऊपरी हिस्सा भी घटा दिया जाता है, जिससे वह बहुत सफेद और चमकीला हो जाय इस

चावल में पोषक तत्व कम रह जाता है, और यह 'बेरीबेरी' आदि रोग पैदा करता है दालों को पालिश किया जाता है, हल्दी, सोंठ, इलायची आदि मसालों को रगा जाता है; यहां तक कि मिठाइयो में भी रग डाला जाता है ऐसे रूप-परिवर्तन से असल मे उपयोगिता-वृद्धि नहीं होती, वरन् उपयोगिता घटती ही है. आदमी यह कार्य अपने मुनाफे या स्वार्थ के लिए करते हैं इस लिए असल में यह कार्य उत्पत्ति के अन्तर्गत नहीं माना जाना चाहिए ; चाहे बाजार में ऐसे पदार्थ ऊंचे भाव से बिकते हो और शौकीन लोग इन्हे कितना ही पसन्द करते हों. तो फिर उपयोगिता किसे कहना चाहिए ? इसका उत्तर गांधीजी के शब्दो में इस प्रकार दिया जा सकता है:—'उपयोगी वह है, जिससे मानव जाति का भरण पोषण हो ; भरण पोषण वह है जिससे मनुष्य को यथेष्ट भोजन-वस्त्र मिल सके, या जिससे वह नीति के मार्ग पर स्थित होकर आजीवन श्रम करता रहे.'* इस प्रकार किसी वस्तु की उपयोगिता-वृद्धि की कसौटी यह है कि वह मनुष्य के जीवन-निर्वाह या नैतिक विकास मे पहले की अपेक्षा कितनी अधिक सहायक हुई है.

विनिमय—आधुनिक अर्थ-व्यवस्था मे उत्पत्ति और उपयोग के बीच मे विनिमय और वितरण ने अत्यधिक महत्व प्राप्त कर रखा है. यह ठीक है कि जिन दशाओं में मनुष्य स्वावलम्बी नही हो सकता, वह दूसरो की सहायता ले, और उनकी आवश्यकतानुसार उन्हे सहायता दे. पर यह कार्य उसी सीमा तक होना उचित है, जहा तक यह दोनो के पक्ष में हितकर अर्थात् दोनो के विकास और प्रगति मे सहायक हो. अस्तु, समाज में पदार्थों का अदल-बदल, एक सीमित परिमाण मे

* 'सर्वोदय' पुस्तक से

आवश्यक और उपयोगी है. आधुनिक ससार में प्रायः पदार्थों का सीधा अदल-बदल न हो कर उनका मुद्रा या नोटो द्वारा क्रय-विक्रय होता है इसे विनिमय कहते हैं

विनिमय में वस्तुओं के अधिकारियो या स्वामियों का परिवर्तन तो होता ही है, कुछ दशाओं मे उसके साथ ही स्थान-परिवर्तन भी हो सकता है जब वस्तु का क्रय-विक्रय उसी स्थान (गाव या नगर) के आदमियों के हाथ होता है तो इस विनिमय मे खासकर अधिकारी-परिवर्तन होता है इसके विपरीत जब वस्तु को दूसरे गांव या नगर मे लेजाकर वेचा जाता है तो इस में स्थान और अधिकारी दोनो का परिवर्तन होता है दोनो ही दशाओ मे लोकसेवा की भावना भी हो सकती है, और स्वार्थ-साधन या मुनाफे की भी. आजकल अधिकाश व्यापारियो का उद्देश्य लोकहित न होकर नफ़ा कमाना अर्थात् स्वार्थ-साधन करना होता है. वर्तमान अर्थात् पश्चिमी अर्थशास्त्र इसकी कोई निन्दा नहीं करता, परन्तु सर्वोदय अर्थशास्त्र इसे सर्वथा अनुचित या त्याज्य मानता है.

सर्वोदय अर्थशास्त्र मे विनिमय के अन्तर्गत यह विचार किया जाता है कि देश के जुदा-जुदा हिस्सो में वस्तुओ का उत्पादन स्थानीय आवश्यकताओं को लक्ष्य मे रख कर किया जाय, जिससे आम तौर पर किसी स्थान के आदमी को अपनी वस्तुए बिक्री के लिये दूर-दूर भेजना न पड़े; जो वस्तुएं स्थानीय आवश्यकताओ की पूर्ति होने के उपरान्त बचें, उन्हे ही बाहर भेजा जाय, और वह भी ऐसे स्थानो मे जहा उनकी उत्पत्ति कम होने से व बहुत आवश्यक हो. इस प्रकार व्यापार बहुत सीमित हो और उसमें पैसे की प्रभुता न हो तथा उस का उद्देश्य मुनाफा न हो कर लोकसेवा हो.

वितरण—आजकल बहुत से पदार्थों का उत्पादन केन्द्रित रूप में और बड़े पैमाने पर होता है. योजक या व्यवस्थापक को अपने साधनो पर निर्भर न रह कर दूसरो के साधनो का आश्रय लेना होता है. वह किसी से भूमि लेता है, किसी का श्रम और किसी की पूजी. इससे इन साधनो के मालिको को इनका प्रतिफल—लगान, मजदूरी और सूद—देकर बाकी सब को व्यवस्थापक अपने मुनाफे के रूप मे ले लेता है. इस अर्थ-व्यवस्था का मूल मुनाफा ही है. सर्वोदय अर्थशास्त्र बतलाता है कि एक परिवार या परिवार-समूह के आदमी मिल कर अपने श्रम से और अपनी पूजी से अपनी मुख्य आवश्यकताओ का सामान पैदा करे जिससे यथा-सम्भव लगान, मजदूरी और सूद का प्रश्न न हो, मुनाफे की बात न उठे, और वितरण की जटिलता का अन्त हो.

अर्थव्यवस्था और राज्य—ऊपर बताए हुए चार विषयो के अतिरिक्त अर्थशास्त्र मे यह भी विचार किया जाता है कि अर्थ-व्यवस्था का राज्य से क्या सम्बन्ध है बात यह है कि मनुष्यो को, समाज या समूहो मे रहने की दशा मे, कुछ काम ऐसे कराने होते है, जो सब के हित के होते है और सामूहिक रूप से किये जाते है. इनके लिए आदमी अपनी ओर से कुछ सत्ता उन लोगो को देत है, जो इनके करने के वास्ते नियुक्त होते है इस प्रकार राजसत्ता का निर्माण हो कर वह जनता के वास्ते आवश्यक कार्य करती है या उनमे योग देती है. इन कार्यो मे जो खर्च होता है, वह निर्धारित नियमो के अनुसार जनता से वसूल किया जाता है.

सर्वोदय अर्थशास्त्र मे स्वावलम्बन का लक्ष्य रहता है, अतः यह विचार करना होगा कि जनता किस प्रकार अपने कार्यो के

लिये सरकार पर कम-से-कम निर्भर रहे, और इस दृष्टि से शासन-व्यवस्था कैसी हो. इस प्रकार अर्थशास्त्र का एक भाग 'अर्थव्यवस्था और राज्य' होगा

अर्थशास्त्र के भागों का सही महत्व—अर्थशास्त्र के उपर्युक्त पाच भागो में से, वर्तमान अवस्था मे उत्पत्ति को प्रधानता दी जाती है; और उत्पादन प्रणाली दूषित होने से, अर्थात् उत्पादन के बड़े पैमाने पर एक-एक स्थान मे केन्द्रीकरण होने से तथा उत्पन्न पदार्थों का उपयोग बहुत दूर-दूर तक होने के कारण, इस अर्थव्यवस्था मे विनिमय और वितरण को बहुत महत्व मिला हुआ है. विनिमय सम्बन्धी क्रियाओ और साधनो ने विशाल स्वरूप धारण कर रखा है इनके लिये कितनी व्यवस्था की जाती है, यह आगे बताया जायगा. इसी प्रकार वर्तमान अर्थ-व्यवस्था मे वितरण की एक जटिल समस्या उपस्थित है और इसे हल करने के लिये विविध विचार-धाराएं सामने आती हैं विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि विनिमय और वितरण तो उपयोग के सहायक मात्र है इनके कारण सरकार के आर्थिक कार्यों का बढना अनुचित है आरम्भ मे सरकार का कार्य-क्षेत्र बहुत ही परिमित ही था, यह क्रमश बढ़ता गया. अब अनेक विचारक राज्य-हीन समाज की कल्पना ही नहीं, आशा भी करते है इस प्रकार अर्थशास्त्र मे विनिमय, वितरण और सरकारी कार्यों का महत्व वर्तमान काल की विशेष परिस्थतियो के कारण बहुत बढ़ा हुआ है साधारण स्वाभाविक अवस्था मे इनका स्थान गौण ही होना चाहिए

सर्वोदय अर्थशास्त्र मे इनका स्थान गौण ही है यह अर्थ-शास्त्र उत्पत्ति और उपयोग का सामजस्य करता अर्थात मेल बैठाता है इसके अनुसार रोजमर्रा की बुनियादी आवश्यकताओ

के लिए प्रत्येक ग्राम या ग्राम-समूह स्वावलम्बी होना चाहिए, अर्थात् उसे जिन चीजों की ज़रूरत हो, वे अधिकांश में वहां ही तथा विकेन्द्रित उत्पादन से ही पूरी की जायं केवल कुछ खास-खास चीजे ही बाहर से मंगायी जायं, वे भी यथा-सम्भव पड़ोसी क्षेत्र से ही. इस प्रकार विनिमय और वितरण का क्षेत्र सीमित किया जाय; ये बहुत ही कम रहे. विकेन्द्रित और स्वावलम्बी उत्पादन पद्धति से यही होता है इस प्रकार सर्वोदय अर्थशात्र के अनुसार सरकार के आर्थिक कार्य बहुत ही सीमित रह जाते हैं. अन्त मे अर्थशास्त्र के भागो में से केवल उपयोग और उत्पत्ति रह जाते हैं इनम से भी, सर्वोदय अर्थशास्त्र उपयोग को प्रधानता दे कर, उसी की दृष्टि से उत्पत्ति करने का आदेश करता है अगले खड मे हम उपयोग का ही विचार करेंगे.

दूसरा खंड

उपयोग

धनी के घर उसके लिए अनावश्यक चीजे भरी रहती है, मारी-मारी फिरती है, खराब होती रहती हैं, दूसरी ओर उनके अभाव मे करोडो मनुष्य भटकते फिरते है, भूखो मरते है जाडे से ठिठुरते है यदि सब लोग अपनी आवश्यकता-भर को ही सग्रह करे तो किसी को तगी न हो और सब को सन्तोष रहे आज तो दोनो ही तगी अनुभव करते है करोडपति अरबपति होने को छटपटाता है, उसे सतोप नही रहता कगाल करोडपति होना चाहता है, उसे पेट भरने-भर को ही पाकर सतोष होता दिखाई नहीं देता. परन्तु कगाल को पेट भर पाने का अधिकार है, और समाज का धर्म है कि उसे उतना प्राप्त करा दे अतः उसके और अपने सतोष के लिए शुरुआत धनी को करनी चाहिए. वह अपना अत्यत परिग्रह त्याग दे तो दरिद्र के काम-भर को सहज मे मिल जाय और दोनों पक्ष सतोष का सबक सीखे

—गांधीजी

चौथा अध्याय

उपयोग का लक्ष्य

तू करोड़ों खुशी से कमा लेकिन समझले, तेरा धन सिर्फ तेरा नहीं, सारी दुनिया का है इस लिए जितनी तेरी सच्ची जरूरते हैं, उतनी पूरी करने के बाद जो बचे, उसका उपयोग समाज के लिए कर

—गाधीजी

अर्थशास्त्र के कौन कौन से भाग होते हैं, इसका विचार पहले किया जा चुका अब एक-एक भाग के सम्बन्ध में खुलासा लिखा जायगा पहले उपयोग को लेते हैं.

उपयोग का महत्व—उपयोग का महत्व उत्पादक तथा उपयोक्ता दोनो की दृष्टि से है. पहले उत्पादक की बात लीजिए. आदमी ऐसी ही चीजे बनाता या पैदा करता है, जो या तो स्वय उसके काम आवे, या जिन्हे दूसरो को देकर उनसे वह अपनी जरूरत की चीजे ले सके इस प्रकार यह आवश्यक है कि हम जो वस्तुए उत्पन्न करे, वे ऐसी हो, जिनका उपयोग होता हो हम अनुपयोगी वस्तुओ का उत्पादन न करे. साथ ही हमे यह भी विचार रखना चाहिए कि हम अपनी सुविधा या लाभ के लिए ऐसी वस्तुओ का उत्पादन न करे, जो लोकहित की दृष्टि से हानिकर हो इस प्रकार उत्पादको के लिए उपयोग का विषय बहुत विचारणीय तथा महत्व-पूर्ण है

दूसरी ओर उपयोग करने वालो की दृष्टि से भी यह विषय कम महत्व का नहीं यदि हम आवश्यक वस्तुओ का उपयोग न करे तो हमारी जीवन-शक्ति क्षीण होने से उत्पादन-क्षमता भी

कम हो जाती है. ऐसी दशा में हमे अपने खाने-पहिनने को भी पूरा नहीं मिल सकता. इसका परिणाम यह हो सकता है कि अन्ततः हम जीवित ही न रहे. फिर, प्रायः उपयोक्ताओ की रुचि और इच्छाओ को देख कर ही उत्पादक तरह-तरह की वस्तुएं बनाते है. यदि देश मे शौकीनी, भोग विलास और ऐश्वर्य आदि का सामान बहुत बडे परिमाण मे बनाया जाता है तो इसके लिए उत्पादक तो दोषी हैं ही, पर उसका मुख्य दायित्व उन लोगो पर है जो इन चीजो का उपयोग करते है ‡ उत्पत्ति की बागडोर उनके ही हाथ मे है; वे अपनी सुरुचि और संयम का परिचय देकर देश के उत्पादको का उचित पथ-प्रदर्शन और नेतृत्व कर सकते है इन बातो से उपयोग का महत्व स्पष्ट है.

उपयोग का लक्ष्य, सुख की प्राप्ति—उपयोग सम्बन्धी विविध बातो का विचार करने से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि उपयोग का लक्ष्य क्या है अथवा क्या होना चाहिए. पहले कहा जा चुका है कि मनुष्य मे जीवित रहने की स्वाभाविक अभिलाषा है, पर वह सुख-पूर्वक जीना चाहता है, दुख या क्लेश भोगते हुए नहीं. वह विविध कार्य इसी लिए करता रहता है कि उसे किसी प्रकार का कष्ट न हो, उसका जीवन आनन्दमय हो. प्रत्येक व्यक्ति आनन्द की खोज मे है, उसकी सारी दौड-धूप का उद्देश्य इसी की प्राप्ति है. हम खाना खाते है तो सुख के लिए, कपड़ा पहनते है तो सुख के लिए, मकान बना कर रहते है तो सुख के लिए अन्य तरह-तरह के पदार्थो के उपयोग करने मे भी हमारा हेतु यही रहता है मनुष्य जाति आरम्भ मे इसी

‡ कुछ दशाओं मे सरकारी व्यवस्था के कारण भी आदमियों को किसी खास पदार्थ का उपयोग करना पडता है

गिनी वस्तुओ का उपयोग करती थी, धीरे-धीरे उपयोग के लिए नयी-नयी वस्तुओ का आविष्कार किया गया 'सभ्यता' की वृद्धि के साथ उपयोग मे आने वाली वस्तुओ की संख्या या परिमाण बढता गया आजकल के साधारण ग्रामीण व्यक्ति के भी जीवन का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि उसके द्वारा होने वाला उपयोग कितना बढ़ गया है और बढ़ता जा रहा है. यह प्रगति सुख-प्राप्ति की लालसा से की गयी है. इस प्रकार उपयोग का लक्ष्य सुख की प्राप्ति है

सुख की पहचान; हितकारी और स्थायी सुख— प्रायः सुख से हम ऐसे ही सुख का आशय लिया करते हैं, जो खाने पहिनने, सूंघने या सुनने आदि से मिलता है. यह इन्द्रिय-सुख या शरीर-सुख है, और कितने ही आदमियो के लिए यही सब कुछ नहीं, तो बहुत-कुछ होता है. परन्तु वास्तव में मनुष्य केवल उसका शरीर नही है, और उसका सुख केवल शारीरिक सुख में ही नहीं समा सकता. शरीर-सुख बहुधा क्षणिक या अस्थायी होता है. अनेक बार तो उसके बाद बहुत कष्ट भोगना पडता है. हम जीभ के स्वाद से जब खूब भोजन कर लेते है तो पहले तो सुख मालूम होता है, पर पीछे बीमार पड कर अपने किये पर पछताते हैं. जैसा कि श्री काका कालेलकर ने कहा है—

'सुख की चाह तो सबों को है, लेकिन सब लोग सुख को पहचानते नही हैं इसी लिए भगवान को अपने गीता शास्त्र मे सुख का कुल विवेचन करना पडा. उन्होंने सुख के तीन प्रकार बताए हैं और उनमे से जो सुख सबसे अधिक हितकारी, स्थायी और उन्नतिकर है, उसे सात्विक सुख कहा है और उसकी व्याख्या करते हुए कहा कि जो शुरू में जहर के जैसा कडवा और अरुचिकर मालूम होता है लेकिन अन्त में अमृत के जैसा स्वादिष्ट और कल्याणकारी है, वही सात्विक सुख है. हमारे सामाजिक जीवन मे न्यायनिष्ठा, सदाचार और विश्वबन्धुत्व शुरू मे कड़वा सा लगता

है, स्वार्थ का विनाशक सा मालूम होता है, लेकिन अन्त मे वही सुखमय और अमृतमय है उपनिषद के ऋषि कहते हैं कि जिनमे हिम्मत नही है, वे 'अल्प सुख को—प्रेय को—पसन्द करते हैं, और जो सयाने है, दीर्घदर्शी हैं, वे स्थायी सुख को, सर्वसुख को, श्रेय को पसन्द करते हैं. महात्मा जी ने हमे हमेशा इस श्रेय-सुख का ही रास्ता बताया है"*

प्रायः आदमी तात्कालिक सुख प्राप्त करने का प्रयत्न करता है, चाहे वह अल्पकालीन ही हो. इस प्रकार वह सोचता है कि आज का दिन, वर्तमान समय अच्छी तरह मौज से बीते. वह कल की, भविष्य की चिन्ता नहीं करता वह भावी सुख के लिए, चाहे वह दीर्घकालीन ही हो, आज के सुख या आराम का त्याग करना नहीं चाहता इस प्रकार आदमी भोग विलास और फैशन या शौकीनी का जीवन बिताने का इच्छुक रहता है. इसमें जो सुख प्रतीत होता है, वह अल्पकालीन ही होता है, पीछे इसकी आदत पड़ जाने पर इसकी अधिकाधिक आवश्यकता होने लगती है, जरूरते बढ़ती जाती है, और पूर्ति न होने से शरीर को ही नहीं, मन को भी कष्ट होता है इस लिए हमे चाहिए कि ऐसे पदार्थो का और उसी सीमा तक उपयोग करे, जितना अत्यन्त आवश्यक हो, अर्थात भोग विलास, शौक, नशे आदि के लिए न करे. हम उपयोग मे दूरदर्शिता से काम ले, जिससे इस समय कुछ असुविधा भी सहकर अपने तात्कालिक सुख मे कुछ कमी करके भी पीछे दीर्घ काल तक सुख पावे उदाहरण के लिए आदमी अपना द्रव्य क्षणिक सुख देने वाले मादक पदार्थ मे खर्च न कर पौष्टिक भोजन मे करे, जिससे शरीर को वास्तविक और दीर्घकालीन लाभ हो. इसी प्रकार धन खर्च करने के अन्य उदाहरण लिये जा सकते है.

* 'सर्वोदय', अगस्त १९४९.

सुख का क्षेत्र—मनुष्य एकाकी नही, सामाजिक प्राणी है. उसे समाज के सुख दुख का ध्यान रखना होता है. समाज के सुख मे उसका सुख है, और समाज के दुःख मे उसका दुःख है; भले ही वह इस बात को न समझे या न विचारे. मा अपने बच्चो को सुख देने के लिए स्वय अनेक प्रकार के कष्ट उठाती है, और इसमें सुख का अनुभव करती है; कारण बच्चो का सुख मां का अपना सुख है. स्त्री-पुरुष एक दूसरे को सुखी करने के लिए कितने उत्सुक रहते हैं, यह कौन नहीं जानता. इसी तरह हम परिवार के अन्य सदस्यो के सुख मे अपना सुख मानते हैं. हमारे विचार का क्षेत्र बढ़ता है तो हम अपने मोहल्ले, ग्राम या नगर के लिए सुख के साधन जुटाने की बात सोचते हैं और आगे बढ़ कर हम देश प्रेम या राष्ट्र-भक्ति आदि का विचार करते हैं. हमारे विकास की यही चरम सीमा नहीं है. इसके आगे की मंजिल विश्वबंधुत्व या मनुष्य मात्र का भाईचारा है. जिसे सर्वे सुखिनः भवन्तु' या सर्वोदय में प्रकट किया गया है यो तो आदर्श 'सर्व भूत हिते रतः' अर्थात् प्राणी मात्र के सुख का विचार रखना है अस्तु, मनुष्य के सुख का क्षेत्र, उसकी ज्ञान-वृद्धि के साथ-साथ बढ़ता जाता है; यहा तक कि उसे यह अनुभव होता है कि यथा-सम्भव उसे सबके सुख का ख्याल रखना चाहिए, किसी को भी कष्ट न दिया जाय, वृक्षो और वनस्पति आदि की रक्षा और वृद्धि तथा खनिज आदि प्राकृतिक पदार्थों का सरक्षण भी स्वय मनुष्य के स्वार्थ के लिए आवश्यक है. अस्तु, इस विषय के विस्तार मे न जा कर हमे यहा यही कहना है कि मनुष्य के सुख का क्षेत्र विश्वव्यापी है, उसे छोटे दायरे मे सीमित करना उसके अज्ञान का सूचक और उसके वास्तविक तथा दूर के स्वार्थ मे बाधक है आदमी को चाहिए कि अपने सामने उपयोग का लक्ष्य स्थायी, हितकर और सात्विक सुख अर्थात् श्रेय रखे.

उपयोग और आवश्यकताएं—हम अनेक बार अपनी आवश्यकताओ का विचार कर के ऐसा उपयोग करते हैं, जिससे हमे क्षणिक अर्थात् थोडी देर का ही सुख मिलता है, और अनेक बार तो पीछे बहुत कष्ट उठाना पडता है, हमारा स्वास्थ्य बिगड़ जाता है, मन मे विकार पैदा होता है, हमारा विकास रुक जाता है और समाज-हित मे वाधा होती है. इससे स्पष्ट है कि आवश्यकताओ का विपय बड़ा महत्व-पूर्ण है आज-कल मनुष्य ने अपनी भौतिक आवश्यकताए बहुत बढ़ा रखी हैं, और वह उन्हे बढ़ाता ही जाता है आवश्यकताओ के कम या ज्यादा होने के आधार पर समाज मे बहुत भेद-भाव उपस्थित है. जिन आदमियो को अधिक आवश्यकताए पूरी करने के साधन प्राप्त है, उन्हे ऊचे वर्ग का माना जाता है, और दूसरो को नीचे वर्ग का. इस प्रकार का भेद बहुत अनिष्टकारी है गाधीजी ने कहा है—

> किसी भी उच्च वर्ग और आम जनता के, राजा और रक के बीच के बडे भारी भेद को यह कहकर उचित नहीं मान लेना चाहिए कि पहिले की आवश्यकताए दूसरी से बढी हुई है आज के अमीर और गरीब के भेद से दिल को चोट पहुचती है.

प्राथमिक आवश्यकताएं; उपयोग में सामाजिक दृष्टि होनी चाहिए—मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकताएं प्रकाश, हवा, जल, भोजन-वस्त्र और मकान है प्रकाश और हवा को प्रकृति ने सर्वत्र सुलभ किया है, और इन्हे असीमित मात्रा मे दिया है, ये सब के ही उपयोग के लिए है अतः इन पर किसी व्यक्ति या संस्था का अधिकार नही माना जाना चाहिए उदाहरण के लिए किसी को यह अधिकार न होना चाहिए कि अणुबम या कीटाणु-बम द्वारा इन्हे दूषित कर सके. यही बात जल के

सम्बन्ध में है जमीन के नीचे से जल खैंच कर लाने मे परिश्रम की आवश्यकता होती है, इसलिये उस पर व्यक्ति या परिवार का अधिकार मान लिया जाता है तथापि कुए या वावड़ी आदि के जल का उपयोग सभी आदमी अपनी निजी आवश्यकता के लिए करते हैं; इस प्रकार व्यवहार मे इस जल पर भी व्यक्तिगत उपयोग के लिए समाज का अधिकार मान्य होता है फिर तालाव नाले नदी आदि प्रकृति की देन होने से समाज के हैं ही; और होने भी चाहिए. इसलिए इन के उपयोग मे सामाजिक दृष्टि रहनी चाहिए गभीर विचार करने से इसका अर्थ यह है कि इनके उपयोग मे यह ध्यान मे रखा जाय कि ये वर्तमान पीढ़ी के लिए ही नहीं, आनेवाली पीढियो के लिए भी है, इसलिए इनका अंधा धुध उपयोग न कर मितव्ययिता या किफायत करनी चाहिए.

भोजन, वस्त्र, मकान आदि के लिए आदमी को श्रम करना होता है, इसलिए इन पर एक सीमा तक व्यक्ति या परिवार का अधिकार मान्य है. पर किसी व्यक्ति और परिवार को यह नहीं भूलना चाहिए कि वह समाज का अग है, इसलिए उस पर यह दायित्व है कि वह अपनी अनिवार्य आवश्यकता से अधिक इनका ऐसा उपयोग न करे कि समाज के व्यापक हित में वाधक हो.

आवश्यकताओं का नियंत्रण—साधारणतया आदमी आवश्यकताओ की पूर्ति मे सुख का अनुभव करता है, परन्तु जब आवश्यकताए अनन्त हो, और नित्य नयी वढती जाती हो तो अनेक आवश्यकताए हर दम अतृप्त रहने वाली ठहरी ऐसी दशा मे आदमी को सुख कैसे मिल सकता है। तो क्या सभी

---

* भूमि के सम्बन्ध मे अगले खड मे विचार किया जायगा.

आवश्यकताओ का नियत्रण किया जाना चाहिए ? क्या ऐसा करना सम्भव या व्यावहारिक है ? यदि सब आवश्यकताओ का नहीं, तो कौन-कौन सी या किस प्रकार की आवश्यकताओ का नियत्रण किया जाना अभीष्ट है ?

प्राप्त सुख दीर्घकालीन अथवा अल्पकालीन होने की दृष्टि से आवश्यकताएं दो प्रकार की होती हैं—(१) जिनकी पूर्ति से व्यक्तिगत तथा सामाजिक लाभ होता है, जैसे अपनी या अपने परिवार की जीवन-रक्षक या निपुणता-वर्द्धक भोजन-वस्त्र तथा शिक्षा आदि की आवश्यकता, दूसरो की भलाई की आवश्यकता, देशोन्नति की आवश्यकता (२) जिनकी पूर्ति से क्षणिक सुख तो अवश्य मिलता है, पर अन्त मे दुख ही होता है और दीर्घकालीन दृष्टि से समाज और देश को हानि पहुँचती है, जैसे मादक या उत्तेजक पदार्थो तथा विलासिता आदि की वस्तुओ का सेवन, अपने स्वार्थ के लिए हानिकर वस्तुओ का प्रचार या दूसरो का शोषण इन दो प्रकार की आवश्यकताओ मे प्रथम प्रकार की तो उचित है, और उनकी पूर्ति की जानी चाहिए, दूसरे प्रकार की आवश्यकताए अनिष्टकारी है, इनका नियत्रण होना आवश्यक है

मनोनिग्रह या इन्द्रिय-दमन—जो व्यक्ति अधिक तथा स्थायी सतोप और सुख पाना चाहता है उसे अपने मन और इन्द्रियो को वश में रखना बहुत ज़रूरी है हमे अपनी कृत्रिम या ऐसी आवश्यकताओ को नियन्त्रित करना चाहिए जो हमारी वास्तविक—शारीरिक, मानसिक और अत्मिक—उन्नति मे बाधक हो, जिनसे लोकहित मे रुकावट होती हो अवश्य ही अपनी आवश्यकताओ के नियंत्रण मे आदमी को आरम्भ में कुछ कष्ट प्रतीत होना स्वाभाविक है, परन्तु धीरे-धीरे उसे इस का अभ्यास हो जाता है और उसे वह शक्ति प्राप्त हो जाती

है, जिसे मनोनिग्रह या इन्द्रिय-दमन कहा जाता है. इस शक्ति से वह ऐसी आवश्यकताओं का नियंत्रण करे, जिनके कारण वह शौकीनी या भोग विलास के पदार्थों का उपयोग करने को प्रेरित होता है. हमारा आदर्श यह नहीं है कि सभी आवश्यकताओं को रोको, खाना-पीना भी बन्द करदो और शरीर को सुखा डालो हमारा लक्ष्य यही होना चाहिए कि जीवन-यात्रा के लिए आवश्यक वस्तुओं का उपयोग करो; पर इसमे विवेक से काम लो, मर्यादा का ध्यान रखो, दूसरो के हित का भी विचार करो जीओ और जीने दो—यही नहीं, दूसरो को जीवित रखने के लिए, समाज के सुख और कल्याण के लिए अपना जीवन बिताओ यही जीवन है, इसी मे सच्चा और असली सुख है

आवश्यकताएँ मनुष्य के बड़प्पन की मापक नहीं— आवश्यकताओं के नियत्रण की बात कुछ पाठको को बहुत खटकेगी आज कल प्रायः आदमी के बड़प्पन का माप उसकी भौतिक आवश्यकताओ से किया जाता है जिस व्यक्ति की आवश्यकताए जितनी अधिक होती हैं, उतना ही उसे ऊचे दर्जे का तथा अधिक सभ्य माना जाता है, और समाज मे उसकी अधिक प्रतिष्ठा हो जाती है. असल मे होना यह चाहिए कि जो व्यक्ति समाज की जितनी अधिक सेवा करे और उसकी उन्नति मे जितना अधिक सहायक हो तथा अपनी निजी आवश्यकताए जितनी कम रखे, उसे उतना ही अधिक सभ्य माना जाय और अधिक आदर-मान मिले

आवश्यकताओं सम्बन्धी आदर्श—आजकल तो 'सभ्य' आदमी अपनी आवश्यकताओ को बढाता ही रहता है; साथ ही जितने पदार्थों की उसे तत्काल जरूरत होती है, उससे भी अधिक अपने पास रखना चाहता है वह समाज के दूसरे लोगो की

ज़रूरत का ध्यान नहीं रखता इससे बड़ा अनर्थ हो रहा है. आवश्यकताओ के सम्बन्ध मे हमारा आदर्श क्या होना चाहिए—इस विषय में गाधीजी की आगे दी हुई पक्तियाँ पथ-प्रदर्शक है—

'यदि मैं कोई ऐसी वस्तु रखता या लेता हूं जो मेरी तात्कालिक आवश्यकता की नहीं है तो मैं किसी दूसरे की चोरी करता हू मै यहा तक कहने का साहस करता हूँ कि यह प्रकृति का अपवाद-रहित नियम है कि वह हमारी दैनिक आवश्यकता की वस्तुए पर्याप्त मात्रा मे प्रदान करती है. यदि प्रत्येक व्यक्ति अपनी आवश्यकता से अधिक न ले तो ससार में दरिद्रता का लोप हो जाय, ससार का एक भी व्यक्ति भूखों न मरे'

गाधीजी का मत है कि हमे अपनी आवश्यकताओ मे सामजस्य लाना चाहिए और जनहित के लिए स्वेच्छा-पूर्वक भूखे भी रहना चाहिए ताकि उनका भोजन-वस्त्र द्वारा भरण-पोषण होता रहे.

उपयोग मे ऐसा सयम और त्याग-भाव रहने से ही यथेष्ट लोकहित हो सकता है.

सदुपयोग और दुरुपयोग—आवश्यकताओ के इस विवेचन से यह स्पष्ट है कि उपयोग के बारे मे हर एक आदमी को बहुत विचार करने की जरूरत है. यद्यपि, जैसा कि पहले कहा गया है, उपयोग वास्तव मे वही है, जिससे व्यक्ति एव समाज दोनो का हित हो, साधारण तौर पर उसके दो भेद किये जाते है—सदुपयोग और दुरुपयोग सदुपयोग उसे कहते हैं, जिससे उपयोक्ता के साथ समाज या देश को भी लाभ हो. उदाहरण के लिए जो व्यक्ति पदार्थों का उपयोग इस प्रकार करता है कि उससे उसके जीवन का रक्षण और पोषण होता है, अथवा उसकी सास्कृतिक आवश्यकताओ की पूर्ति होती है तो उसके द्वारा किया जाने वाला उपयोग सदुपयोग कहा जायगा.

इसी प्रकार समाजोपयोगी संस्थाओ—स्कूल, वाचनालय, पुस्तकालय, चिकित्सालय, कृपि, ग्रामोद्योग आदि मे सहायता करना सदुपयोग है.

अव दुरुपयोग की वात ले दुर्भाग्य से प्रत्येक देश में दुरुपयोग काफी होता है; भारत मे भी इसकी कमी नहीं. कुछ दुरुपयोग तो ऐसा होता है, जिसमे उपयोक्ता की नीयत या उद्देश्य वुरा नही होता वह अपने अज्ञान, अल्पज्ञता अथवा लाचारी से अपनी तथा समाज की, दोनो की हानि करता है. इसके कुछ उदाहरण मादक पदार्थों का सेवन, अविवेकता-मूलक दान-धर्म, कुरीतियो मे होने वाला अपव्यय, झूठी मुकदमेवाजी, सम्पत्ति को गाड़ कर रखना, जेवर वनवाना आदि है.

दूसरे प्रकार का दुरुपयोग वह है, जिसे उपयोक्ता अपने निजी लाभ, सुविधा या शौकीनी आदि के लिए करता है पर जिससे समाज को हानि पहुँचती है, जैसे वहुत से शौकीन आदमी विलासिता की वस्तुओ का सेवन करते हैं कितने ही आदमी सडक के वीच मे कूडा या मैली वस्तुएं फेंक देते हैं, नालियो मे टट्टी फिरते हैं, नल से पानी लेकर उसे खुला ही छोड देते हैं, नदी या तालाव मे स्नान करते हुए पानी का कुल्ला करते है, रेल के डिव्वे मे यात्रा करते हुए वहाँ ही थूकते रहते हैं ये लोग अपनी जरा सी सुविधा के लिए सड़क, नाली, नदी, तालाव या रेल के डिव्वे आदि का दुरुपयोग करते हैं, जिससे समाज की वहुत हानि है

दुरुपयोग और आदतें—ऊपर दुरुपयोग के थोडे से विपयो का उल्लेख किया गया है, दूसरी वातो का विचार पाठक स्वयं करलें. वहुत से दुरुपयोग का कारण, मनुष्यो की आदतें होती हैं. जव आदमी दूसरे की देखा-देखी, या गलती से एक वार दुरुपयोग करने लग जाता है, तो कुछ समय वाद उसकी

आदत ही पड़ जाती है; फिर, ज्यो-ज्यो समय बीतता है, वह आदत पक्की हो जाती है, और उसका छूटना कठिन हो जाता है हरेक आदमी को चाहिए कि बुरी आदतो का शिकार होने से बचे, आरम्भ से ही अच्छी संगति मे रहे, और सात्विक साहित्य का अवलोकन करे.

क्या धनवान अपना धन खर्च करने में स्वतंत्र रहें ?— धनवान लोग प्रायः कह देते है कि हम अपना रुपया अपनी इच्छानुसार खर्च करें, इसमे किसी को आपत्ति क्यो होती है। उनका यह कथन बहुत भ्रममूलक है यह ध्यान मे रखना आवश्यक है कि धनवान लोगो के पास जो धन है, वह उन्होने अकेले-अकेले नही पैदा किया उसकी उत्पत्ति समाज द्वारा दी हुई सुविधाओ और परिस्थितियो से हुई है समाज के अन्य लोगो का सहयोग न होता तो उनके पास यह सम्पत्ति कदापि न आती. इस प्रकार इस सम्पत्ति की उत्पत्ति का बहुत-कुछ श्रेय समाज को है, और इसलिए इसके उपयोग मे समाज-हित का ध्यान रखा जाना आवश्यक है. अगर धनवान मनुष्य मनमाने तौर पर आराम और विलासिता के पदार्थो को खरीदे तो इसका नतीजा यह होगा कि जीवन-रक्षक और निपुणतादायक पदार्थों की पैदायश घट जायगी इनकी कीमत बढ़ जाने से गरीब और मध्य श्रेणी के लोग इन वस्तुओ को उपयुक्त परिमाण मे सेवन न कर सकेंगे. इससे उनका स्वास्थ्य, बल और कार्यक्षमता का ह्रास होगा; उत्पत्ति कम और घटिया होती जायगी और सारे समाज को हानि पहुँचेगी इससे स्पष्ट है कि धनवानो को अपना धन विलासिता के पदार्थों मे खर्च करने की स्वतत्रता नहीं होनी चाहिए

कुछ धनी लोग कह दिया करते है कि- 'हमारी बदौलत

मजदूरो को काम मिलता है, बेकारी दूर होने मे सहायता मिलती है.' परन्तु जब देश मे जीवन-रक्षक तथा निपुणता-वर्द्धक पदार्थ ही सब लोगो को सुलभ न हो तो आवश्यकता इस बात की है कि लोगो को इनके उत्पादन मे लगाया जाय. ऐसा न करके उन्हे विलासिता के पदार्थ तैयार करने मे लगाना सरासर गलत है, घोर सामाजिक अपराध है वास्तव मे धनवानों के उक्त कथन मे कोई सार नहीं, उनका लक्ष्य परोपकार या समाज-हित न होकर अपनी भोगेच्छाओ को पूरा करना होता है, और वे बेकारी-निवारण आदि की झूठी आड लेते हैं

समय के सदुपयोग की आवश्यकता—हमने ऊपर कुछ प्रकार के दुरुपयोगो से बचने और सदुपयोग करने की बात कही है ये तो उदाहरण मात्र है इसी तरह अन्य वस्तुओ के विषय मे विचार किया जा सकता है, कुछ आदमी करते भी है पर एक बात जिसकी ओर लोगो का ध्यान विशेष रूप से जाने की आवश्यकता है, यह है कि समय का सदुपयोग किया जाय. जो लोग दूसरे विषयो मे बहुत मितव्ययी और दूरदर्शी होते हैं, वे भी कभी-कभी अपना बहुत सा समय नष्ट करने के दोषी होते है कितने ही आदमी गपशप मे घन्टो गुजार देते हैं. कितने ही युवको को अनेक बार, करने को कुछ काम ही नहीं मिलता, वे 'समय काटने' के लिए कुछ फालतू काम की खोज करते हैं, और ताश, शतरज सिनेमा आदि मनोरजनो मे भाग लेते है शिक्षा-सस्थाओ मे, खास कर कालिजो और विश्वविद्यालयो मे साल भर मे कुल मिला कर छ. छ. माह तक की छुट्टिया होती है, पर कितने विद्यार्थी अपने उस समय का ठीक उपयोग करते है और विद्यार्थियो को ही क्या कहा जाय, जब कि उनके शिक्षक, प्रोफेसर आदि भी इस विषय मे प्राय. अच्छा उदाहरण उपस्थित करने वाले नहीं होते अनेक किसानो को जब खेती का काम

नहीं रहता तो वे कोई कताई आदि उद्योग धंधा करने का विचार नहीं करते. मजदूरो को जब छुट्टी मिलती है तो वे बीड़ी पीकर अपना समय बिताते है इस तरह जिस राष्ट्र मे समय रूपी धन का ऐसा दुरुपयोग होता हो, वह किस प्रकार सुख-समृद्धि की आशा कर सकता है ! आवश्यकता है, प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन के एक-एक घन्टे का ठीक उपयोग करे इसके लिए प्रति दिन डायरी में समय का हिसाब लिखते रहने से बहुत सहायता मिल सकती है. निदान, हम अपने जीवन में प्रत्येक वस्तु का एव समय की प्रत्येक इकाई का यथेष्ट सदुपयोग करे, तभी हमारा मानव जीवन सार्थक होगा

उपयोक्ताओं का कर्तव्य—प्रत्येक उपयोक्ता को चाहिए कि वह उपयोग के लक्ष्य का ध्यान रखते हुए अपने कर्तव्य का पालन करे. वास्तव मे उस पर बहुत जिम्मेवारी है जिस तरह की वस्तुओ का वह उपयोग करता है, उसी तरह की चीजो की उत्पत्ति देश में अधिक होती है. यदि वह भोग-विलास की सामग्री अधिक काम मे लाता है तो देश की भूमि, श्रम और पूंजी इस सामग्री के उत्पादन में लग जाती है, और क्योकि इनका परिमाण सीमित ही है, इस लिए इनका जितना अधिक भाग भोग-विलास की सामग्री में लगता है, उतना ही जीवन की मूल आवश्यकताओ के लिए कम रह जाता है, और इससे अनेक आदमियो को अपने जीवन-निर्वाह की आवश्यकताओ से भी वंचित होने की स्थिति उत्पन्न हो सकती है इस लिए उपयोक्ता को इस विषय मे सतर्क रहना चाहिए कि वह किस-किस प्रकार की वस्तु का उपयोग करता है

यही नहीं, उसे यह भी सोचना चाहिए कि जिन वस्तुओ का वह उपयोग करता है, उनकी उत्पादन-विधि कैसी है वह

चुराई हुई तो नहीं है, उसके उत्पादन में भूमि और पूजी का दुरुपयोग तो नहीं हुआ है, अथवा उसमे श्रमियो का शोषण तो नहीं किया गया है, उस उपयोग से समाज मे बेकारी आदि तो नही बढ़ती है इस प्रसंग में गांधीजी का यह कथन बराबर याद रखने योग्य है—

"जो वस्तुए अत्यधिक शोषित मजदूरों ने उत्पन्न की है, उनको खरीदना और उपयोग करना पाप है यह भी पाप है कि मै अमरीका का गेहूँ खाऊ और मेरा पडोसी अनाज का व्यापारी इसलिए भूखा मरे कि उसको कोई ग्राहक नहीं मिलता. इसी तरह मेरे लिए यह भी पाप है कि मैं 'रीजेन्ट स्ट्रीट' (विदेश) में तैयार बढिया से बढिया कपडा पहनूँ जब कि मुझे यह मालूम हे कि मै अपने पडोसी कातने वालों और बुनने वालों का तैयार किया हुआ कपडा पहनता तो उसमे न केवल मेरा तन ढकता, बल्कि उनको भी भोजन-वस्त्र मिलता."

हम अपने नजदीक के ही माल की उत्पादन-विधि आसानी से जान सकते हैं. इस लिए हमे दूर-दूर के स्थानो के माल का उपयोग करना ठीक नहीं (इससे यातायात का अनावश्यक विस्तार भी होता है) जो व्यक्ति उत्पादन-विधि की बात पर यथेष्ट ध्यान देगा, और इस बात का निश्चय करना चाहेगा कि जिस माल का वह उपयोग करना चाहता है, वह नैतिक दृष्टि से शुद्ध है, उसके लिए आवश्यक है कि उन्हीं वस्तुओ से काम चलावे जो उसकी जानकारी के क्षेत्र मे बनी हैं. अगर हमारे लिए यह जानना सम्भव नहीं है कि दूर से आयी वस्तु किस प्रकार के वातावरण मे बनी है तो हमें अपना उपयोग खासकर अपने पड़ोसी या स्थानीय व्यक्तियो की बनाई वस्तुओ तक ही सीमित रखना चाहिए.

इसके अतिरिक्त, जब कि प्रत्येक उपयोक्ता कुछ वस्तुओ का उपयोग करके समाज में उनकी कमी करता है तो उसे उनकी

पूर्ति का भी भरसक प्रयत्न करना चाहिए. किसी राज्य में विरासत सम्बन्धी कानून चाहे जो हो, किसी उपयोक्ता का यह सोचना ठीक नहीं कि मैं तो अपने बाप-दादा की कमाई खाता हूँ, मुझ पर उत्पादन सम्बन्धी कोई जिम्मेवारी नहीं है उपयोक्ताओ को उत्पत्ति में यथेष्ट भाग लेना ही चाहिए

सादगी से व्यय की बचत—उपयोग सम्बन्धी जो नीति वर्ती जाने के लिए ऊपर कहा गया है, उसका व्यवहार होने के लिए हमारे जीवन मे सादगी होना आवश्यक है सादगी होने से उत्पादन और विनिमय सम्बन्धी व्यर्थ का व्यय बहुत हद तक घटाया जा सकता है.

'आधुनिक ढङ्ग के जीवन की भी कितनी ही चीजें ऐसी है, जो सरलता से बनायी जा सकती हैं परन्तु आज वैसा नहीं होता उदाहरण के लिए दत-मजन हर गाव मे तैयार हो सकता है, मामूली कागज और स्याही हर तालुके के कस्वे मे तैयार हो सकती है, चर्खे और कर्घे के खास तरह के यान्त्रिक भाग, उसी प्रकार का दूसरा घरेलू सरंजाम, असवाव आदि जिले के शहर मे उतने क्षेत्र के लिए वन सकते है, साधारण परिस्थिति मे किसी गॉव को अपनी खुराक, कपडे, घर वॉधने के साधारण सामान आदि के बारे मे दूसरे पर अवलवित रहने की कोई जरूरत न होनी चाहिए लेकिन आज की जीवन - रचना मे स्वदेशी का व्रत पालने वाले वम्बई के लोग भी कलकत्ते का दन्त-मजन, केरल का साबुन, आन्ध्र की स्याही, राजस्थान का हाथ-कागज या टीटाघर का मिल-कागज, मद्रास या वगाल का चमडे का सामान, पजाव की तॉत आदि खरीदते हैं, और उन्हीं वस्तुओ को उस प्रान्त के लोग दूसरे प्रान्त से लेते है, यानी वम्बई का दन्त-मजन कलकत्ते मे और वगाल का साबुन केरल मे बिकता है. इस तरह माल का निष्कारण यातायात और खराबी होती है'*.

---

* श्री किशोरलाल मश्रूवाला द्वारा लिखी 'गाधी और साम्यवाद' पुस्तक से.

इस विषय पर विशेप अगले खंडो मे लिखा जायगा यह स्पष्ट है कि उपयोक्ता इधर ध्यान देकर, अपनी जीवन-व्यवस्था सरल करके, इस अनावश्यक व्यय और विनाश को बचा सकते हैं, और उन्हे बचाना चाहिए

सादगी और सुख—हमने ऊपर आवश्यकताओं के नियन्त्रण की बात कही है यह ठीक है कि जब आदमी को भोग-विलास की आदत पड़ जाती है तो आवश्यकताओ का नियन्त्रण करने से पहले-पहल कुछ कष्ट प्रतीत होता है. पर पीछे जब वह इनके नियन्त्रण द्वारा बचाए हुए अपने धन और शक्ति को लोक-सेवा या परोपकार मे लगाता है तो उसे ऐसे उच्च कोटि के तथा स्थायी आनन्द की प्राप्ति होती है, जो अन्य प्रकार से सम्भव ही नहीं इस लिए हमे हमेशा दूसरो के हित का ध्यान रखते हुए त्याग-भाव से ही वस्तुओ का उपयोग करना चाहिए.

सादा जीवन और उच्च विचार—आदमी सादा जीवन बिता कर लोकसेवा सम्बन्धी उच्च विचार रखता हुआ स्थायी सुख प्राप्त कर सकता है. सादे जीवन का अर्थ यह नहीं है कि मनुष्य आधे-पेट भोजन करे, या अर्द्ध-नग्न रहे, अथवा जगलो पहाडो मे ही समय व्यतीत करे, मकान आदि ही न बनावे ऊपर कहा जा चुका है कि मनुष्य को अपने जीवन-रक्षक तथा निपुणता वर्द्धक पदार्थों की आवश्यकताए पूरी करते रहना चाहिए. हा, शौकीनी या विलासिता के पदार्थो के सेवन पर कडा प्रतिबन्ध लगा देना चाहिए स्मरण रहे कि यह कार्य अपनी इच्छा से जान बूझ कर होना चाहिए यदि कोई व्यक्ति साधन-हीनता, दरिद्रता या लाचारी के कारण विलास-सामग्री का सेवन नहीं कर सकता तो उसे सादा जीवन व्यतीत करने वाला नहीं समझना चाहिए. जो आदमी अपने मन से इन वस्तुओ के उपयोग की

इच्छा को निकाल देगा; साधन होने पर भी इनका सेवन नहीं करेगा, वही असल में सादे जीवन वाला है.

जो आदमी ऐसा जीवन नहीं बिताता, अपनी ज़रूरतें बढ़ाता रहता है और दिन-रात उन्हे पूरा करने मे लगा रहता है, उसे लोकसेवा के लिए सुविधा या समय नहीं मिल सकता, उसका मन भी इस ओर विशेप नहीं जा सकता. लोकसेवा के विचार रखने और उन्हे अमल में लाने के लिए सादा जीवन बिताना, और आवश्यकताएं कम रखना अनिवार्य है अस्तु, सादा जीवन और उच्च विचार—यही मनुष्य के जीवन का लक्ष्य है, और उपयोग में इसका यथेष्ट ध्यान रखा जाना चाहिए.

पांचवां अध्याय

हवा, प्रकाश, पानी और मिट्टी

जिन तत्त्वों से यह मनुष्य-रूपी पुतला बना है, वही नैसर्गिक उपचारों के साधन हैं. पृथ्वी (मिट्टी), पानी, आकाश (अवकाश), तेज (सूर्य) और वायु से यह शरीर बना है.

—गांधीजी

जिस घर मे सूर्य का प्रकाश नही आता, उसमे डाक्टर को आना ही पडेगा

—अंगरेज़ी कहावत

प्रकृति हमारी माता है उसी मे से हमारा शरीर आता है और अपनी अवधि के बाद फिर उसी में घुल-मिल कर समाप्त हो जाता है. अपनी माता का सान्निध्य जीवन के पूर्व और पश्चात् ही नही, जीवन-काल मे भी हमें सदा ही आनन्ददायक होगा

—जवाहरलाल जैन

वर्तमान अर्थशास्त्री हवा, प्रकाश, पानी और मिट्टी के बने पदार्थों के तो उपयोग का विचार करते है, परन्तु स्वय इनके उपयोग का विचार नहीं करते उनकी धन की परिभाषा के अनुसार ये पदार्थ धन की श्रेणी मे नहीं आते, क्योंकि ये विनियम-साध्य नहीं है, ये प्रकृति ने अनन्त परिमाण मे दिये हैं. पर जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, सर्वोदय अर्थशास्त्र की विचार-धारा इससे जुदा है उसके अनुसार इनके विवेचन को प्राथमिकता दी जानी चाहिए, कारण, ये मनुष्य के जीवन के लिए अन्य सब पदार्थों से अधिक आवश्यक है.

हवा

हवा का महत्व; इसके शुद्ध रहने की आवश्यकता— मनुष्य को जीवित रहने के लिए सांस लेते रहना ज़रूरी है और सांस हवा के बिना नहीं लिया जा सकता. इस प्रकार मानव जीवन के लिए हवा की अनिवार्यता स्पष्ट है परन्तु हवा शुद्ध होनी चाहिए यदि वह अशुद्ध होगी तो वह शरीर मे अनेक विकार पैदा करेगी इसलिए मनुष्यो को चाहिए कि यथा-सम्भव शुद्ध हवा का सेवन करें, अधिक से अधिक समय खुली हवा मे रहे, जहा तक हो सके रात को खुले स्थान मे ही सोवे, जिससे उन्हे शुद्ध स्वास्थ्यप्रद हवा मिलती रहे.

हवा शुद्ध रखने के उपाय—खेद है कि आज-कल लोगो को शुद्ध वायु बहुत कम मिलती है अधिकांश आदमियो का बहुत सा समय गन्दी हवा मे सास लेते बीतता है. हवा गन्दी होने के विविध कारण है; उन्हे दूर करने का भर सक प्रयत्न किया जाना चाहिए. निजी क्षेत्र मे व्यक्तियो तथा परिवारो को, और सार्वजनिक क्षेत्र मे स्थानीय सस्थाओ द्वारा हवा को शुद्ध रखने के विविध उपाय काम मे लाये जाने चाहिएँ. इसके वास्ते नागरिको मे वायु सम्बन्धी यथेष्ट ज्ञान का प्रचार किया जाना चाहिए, जनता की दरिद्रता दूर की जानी चाहिए, शहरी सभ्यता का बढता हुआ प्रवाह और कल-कारखानो द्वारा होनेवाली बड़े पैमाने की केन्द्रीकृत उत्पत्ति को रोका जाना चाहिए. इस विषय की ब्योरेवार बातो मे न जाकर हम यहा कुछ अन्य बातो का उल्लेख करते है—जब घर के भीतर सोना पड़े तो ऐसी जगह सोना चाहिए, जहां बहुत सामान भरा हुआ न हो और जिसमे हवा बराबर या लगातार आती जाती हो जिन लोगो का सोने का स्थान ऐसा हो कि हवा मुश्किल से आती हो, उन्हे चाहिए कि

हवा साफ करने के लिए सप्ताह मे कम से कम एक दिन आधा घटे के लिए बिना धुए की काफी आग जलावे.

हवा शुद्ध करने के कुदरती साधन आधी, प्रकाश और वृक्ष हैं प्रकाश की बात दूसरी जगह कही गयी है. ज्यो-ज्यो बस्तियाॅ बढ़ती जा रही है, जगल बहुत काटे जा रहे हैं. वृक्ष हमारे सास से निकले हुए विप अर्थात् कार्बोनिक एसिड गेस को ग्रहण करते हैं (इससे उनका पोपण और वृद्धि होती है) और हमे आक्सीजन देते है, जो हमारे जीवन के लिए अनिवार्य है. वृक्षो के कट जाने से इस प्राकृतिक व्यवस्था में विकार होता पैदा है इसलिए जरूरत है कि वनो की रक्षा की जाय, और नये-नये पेड, न केवल बस्तियो के पास, वरन् जगह-जगह बस्तियो के भीतर भी लगाये जाते रहे, जिससे हवा शुद्ध होने मे यथेष्ट सहायता मिले

हवा के उपयोग की विधि—हवा को शुद्ध रखने के साथ उसका उपयोग भी ठीक रीति से होना चाहिए, यथा—

१—आदमी को झुककर बैठना या चलना न चाहिए, हमेशा छाती आगे को निकली रहे, जिससे फेफडो मे हवा काफी जाय

२—सास हमेशा नाक से ही ली जाय, मुह से नहीं.

३—यथा-शक्ति शरीर-श्रम या व्यायाम आदि किया जाय, जिससे फेफडे ठीक रहे.

४—प्राणायाम या लम्बा सास लेने का अभ्यास किया जाय

५—यथा-सम्भव प्रति दिन कुछ समय सारे शरीर को शुद्ध ताजी हवा लगाई जाय, अर्थात् वायु-स्नान किया जाय.

६—कपडा उतना ही पहना और ओढ़ा जाय, जितना सर्दी से बचने के लिए आवश्यक हो, फैशन या दिखावे के लिए उसकी भरमार न हो

प्रकाश

सृष्टि की सब बनस्पति पेड़-पौदो, पशु-पक्षियो तथा मनुष्य के जीवन का मूल आधार सूर्य है उससे हमें तेज (गरमी) तथा प्रकाश मिलता है. हम इन चीजो का यथेष्ट उपयोग नहीं करते और प्रायः हम इनके उपयोग से होने वाले लाभो को जानते भी नहीं

प्रकाश से लाभ—अंधकार मे शाक-सब्जी बहुत कम पैदा होती है, और जो होती भी है, वह प्रकाश मे पैदा होने वाली की अपेक्षा बहुत कम गुण वाली होती है. पेड़ो की हरी पत्तियां सूर्य की किरणो से जो शक्ति ग्रहण करती है वही अन्न आदि मे संचित होती है मनुष्य आदि सभी जीव अन्न और फल आदि से ही शक्ति ग्रहण करते हैं. यहां तक कि मांस-भक्षी प्राणी भी शाकाहारी प्राणियो के मांस से ही यह शक्ति प्राप्त करते हैं इसी कारण कहा जाता है कि 'खाद्य पदार्थ शीतल आधार में सुरक्षित सूर्य रश्मियां ही है.' धूप और मैदान मे घास चरने वाली गायो के दूध में विटामिन डी काफी मात्रा मे होता है; इतना विटामिन उन गायो के दूध मे नही मिलता, जो सारे दिन घर मे ही रहती है इस प्रकार सूर्य की किरणो के समान बलकारक और आरोग्यप्रद वस्तुएँ ससार मे बहुत कम है

सूर्य की किरणों का उपयोग—इस लिए स्वास्थ्य लाभ के वास्ते सूर्य-किरणों का यथेष्ट उपयोग किया जाना चाहिए. इनमे सब से महत्व की किरणे उत्तर-बैंगनी (अल्ट्रा-वायलेट) रंग की होती हैं. ये सब से अधिक प्रातः काल के समय रहती हैं. सूर्योदय के समय खुले बदन इनके सेवन से शरीर बलवान होता है, उसकी रोग भगाने की शक्ति बढ़ती है और नवजीवन का आविर्भाव होता है इसलिए इन्हे यथा-सम्भव नियमानुसार

प्रतिदिन ग्रहण किया जाना चाहिए 'दोपहर के सूर्य की किरणें उतनी लाभकारी नहीं होतीं. खासकर गरमी में या गरम प्रदेशों में इनसे वचने का प्रयत्न होना चाहिए. घर भी इस प्रकार वनाना चाहिए कि प्रातः काल के सूर्य की किरणें उसमें अच्छी तरह आ सकने में वाधा न हो, अर्थात् पूर्व की ओर कोई पेड़ आदि न हो; हाँ, पश्चिम की ओर पेड़ लगाकर दोपहर के वाद की किरणों में वाधा पैदा करना ठीक ही है

भारत में सूर्य नमस्कार करनेवालों को धूप-स्नान का लाभ सहज ही मिल जाता है. गायत्री मंत्र की महिमा प्रसिद्ध है—वह सूर्य की ही पूजा है निर्धारित पद्धति से हर रोज धूप-स्नान या सूर्य-स्नान करना वहुत उपयोगी है. इससे विविध रोग दूर हो जाते हैं. इस विषय की व्योरेवार वातें जानने के लिए स्वतंत्र साहित्य अवलोकन किया जाना चाहिए.

शहरी सभ्यता से वाधा—खेद है कि शहरी सभ्यता में हम हवा की तरह प्रकाश जैसी अमूल्य वस्तु से भी यथेष्ट लाभ नहीं उठा पाते. खुले वदन रहना आजकल असभ्यता की वात समझी जाती है, हम हर समय वदन को कपड़ों में ढक कर रखते हैं और उसे किरणों से स्पर्श नहीं होने देते. धूप-स्नान आदि की वात लोगों को उपहासास्पद प्रतीत होती है फिर, आज कल वड़े-वड़े शहरों के मकानों के अधिकांश भाग ऐसे होते हैं जिनमें धूप के कभी दर्शन नहीं होते, और प्रकाश भी इतना कम होता है कि दिन में भी विजली आदि की कृत्रिम रोशनी से काम चलाया जाता है

शहरी सभ्यता की वृद्धि का एक मुख्य कारण यंत्रोद्योग और केन्द्रित उत्पादन है इन पर रोक लगाने और ग्रामोद्योगों की

रक्षा और उन्नति से वे परिस्थितिया प्राप्त हो सकती है. जिनमे प्रकाश से यथेष्ट लाभ उठाया जा सकता है

पानी

मनुष्य के शरीर का सत्तर प्रतिशत भाग पानी है, यह पानी वाला हिस्सा नियमित रूप से मल, मूत्र और पसीने के साथ बाहर निकलता रहता है शरीर मे इस रस की समता को ठीक बनाए रखने के लिए पानी विशेष रूप से आवश्यक है यदि हम पानी यथेष्ट परिमाण मे न ले तो प्रकृति खून, मांस-पेशियों और शरीर के तंतुओ से पानी का हिस्सा खींचने के लिए बाध्य होगी इससे शरीर दुबला-पतला होने और फिर सूखने लगता है. जल की कमी के कारण शरीर मे पहले कब्जी (बदहज्मी) होती है. इसके बाद खून की कमी और फिर क्रमशः कई प्रकार के रोगो के लक्षण दिखायी देने लगते है.

हमारा शरीर प्रतिदिन कुछ क्षय होता रहता है. जो जीव-कोष नष्ट हो जाते है, खून उनको धोकर बाहर कर देता है किन्तु यदि खून मे पानी का अंश कम हो तो इन नष्ट हुए जीव-कोषो मे से कुछ अंश शरीर मे रह जाते है इससे शरीर मे विजातीय पदार्थ जमा होने और बढने लगते है और विविध रोग पैदा हो जाते है इन हानिकारक पदार्थो को शरीर से निकाल बाहर करने के लिए भी यथेष्ट पानी पीना आवश्यक है फिर, पसीने से शरीर पर जमने वाले मैल को हटाने के लिए स्नान करने के लिए भी पानी बहुत जरूरी है पानी के विधि पूर्वक सेवन से किस प्रकार कौनसा रोग दूर होता है, इसका विवेचन करने का यहा स्थान नहीं है इस विषय की ब्योरेवार बातें चिकित्सा सम्बन्धी साहित्य मे देखी जा सकती है

पानी स्वच्छ और अच्छा होने की आवश्यकता— यह तो स्पष्ट ही है कि पानी, जो नहाने-धोने के काम आये,

या जिससे शरीर की बाहरी या भीतरी सफाई करना अभीष्ट हो, बहुत साफ और अच्छा होना चाहिए मैला पानी हमारे कपडो या शरीर को साफ नहीं कर सकता. फिर, पीने के लिए पानी का उपयोग करने मे तो और भी अधिक सावधान रहना चाहिए; कारण, केवल देख कर या चख कर ही निश्चय-पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि यह पानी पीने के लायक है अनेक बार जो पानी इस कसौटी से अच्छा मालूम होता है, वह वास्तव मे शरीर के लिए हानिकारक हो सकता है पानी का सेवन करने पर ही आदमी को यह अनुभव होगा कि यहा का पानी कैसा है उससे खाना ठीक तरह हज्म हो जाता है या नहीं, हज्म होने में बहुत देर तो नहीं लगती, इत्यादि

पानी शुद्ध करने के उपाय—ऊपर पानी के गन्दे होने के जो कारण बताये गये हैं, उन्हे दूर करके पानी शुद्ध करने का प्रयत्न करना चाहिए, कुछ कारण तो आदमी निजी तौर पर दूर कर सकते है, दूसरे कारणो को दूर करने के लिए सामूहिक या पचायती उद्योग होना चाहिए कुछ दशाओ मे आदमी गन्दा पानी इसलिए काम मे लाने को मजबूर है, कि वहा अच्छे पानी की व्यवस्था नहीं है, और व्यवस्था करना बहुत श्रम तथा व्यय साध्य है कुछ स्थानो मे पानी इतनी अधिक गहरायी पर मिलता है कि वहा एक कुआ बनवाना कोई मामूली काम नहीं है. ऐसे स्थानो मे सरकार और जनता को मिलकर पानी की व्यवस्था करनी आवश्यक है. जहा पानी की शुद्धता के विषय मे शका हो, वहां पानी उबाल कर या 'फिल्टर' करके (विशेष विधि से छान कर या निथार कर) पीया जाना चाहिए इस प्रसग मे गाधीजी ने कहा है—

'अजनबी घर या अजनबी कुँए का पानी न पीने की प्रथा का पालन करना अच्छा है. बंगाल मे तालाब होते हैं, उनका पानी अक्सर पीने के

लायक नही होता. बडी नदियों का पानी भी पीने के लायक नही होता, खास करके जहा नदी बस्ती के पास से गुजरती है, और जहा उसमे स्टीमर और दूसरे वाहन आया जाया करते हैं. ऐसा होते हुए भी यह सच्ची बात है कि करोडो मनुष्य इसी प्रकार का पानी पीकर गुजारा करते हैं. मगर यह अनुकरण करने जैसी चीज नही है .. जहा पानी की शुद्धता के विषय मे शका हो, वहा पानी को उबाल कर पीना चाहिए, इसका अर्थ यह हुआ कि मनुष्य को अपने पीने का पानी साथ लेकर घूमना चाहिए असख्य लोग धर्म के नाम से मुसाफिरी मे पानी नही पीते. अज्ञानी लोग जो धर्म के नाम से करते हैं, आरोग्य के नियमो को मानने वाले वही चीज आरोग्य के खातिर क्यों न करें!'*

पानी के उपयोग सम्बन्धी विचार—पीने का पानी स्वच्छ होना चाहिए, यह ऊपर बताया जा चुका है पर इसके साथ यह भी ध्यान में रखना ज़रूरी है कि पानी उचित रीति से और आवश्यक परिमाण मे पीया चाहिए. अधिकाश आदमी इस विषय में गलती करते हैं. हमे उनका ध्यान एक खास बात की ओर दिलाना है. अनेक स्थानो मे शौकीन या धनी लोग तथा उनकी देखा देखी अन्य व्यक्ति भी प्यास लगने पर या भोजन के साथ तथा उसके बाद शराब, लेमनेड, सोडावाटर, शर्बत आदि पेय या ठडाई आदि ही पीया करते है, केवल जल नहीं पीते. अनेक आदमी कुदरती जल न पीकर बर्फ आदि का पानी लेते है, ये सब बातें प्राय. अनावश्यक ही नहीं, हानिकारक भी है. सब से अधिक उपयोगी पेय तो अच्छा पानी ही है. इसी का यथेष्ट सेवन किया जाना चाहिए

जिन प्रदेशो मे, जिन दिनो मे बहुत अधिक सर्दी न हो, वहा प्रति-दिन प्रात: काल ठडे पानी से स्नान करना बहुत उपयोगी है स्वस्थ व्यक्ति का तालाब या नदी मे डुबकी लगा कर स्नान

---

* 'आरोग्य की कुजी'

करना सबसे उत्तम है; यों अधिकतर आदमियो को कुए पर या नल पर स्नान करने की सुविधा होती है, बहुत से तो घर मे ही बाल्टी आदि मे पानी लेकर लोटे से स्नान करते हैं. रोगियो के लिए विविध प्रकार के स्नान प्रचलित हैं, यथा पूर्ण स्नान, स्पज स्नान, चद्दर स्नान, कटि स्नान, घर्षण स्नान, गरम और ठडा स्नान आदि इनके सम्बन्ध मे यहां विस्तार से लिखने का स्थान नहीं. ये स्नान किसी अनुभवी व्यक्ति की देख-रेख मे सावधानी से किये जाने चहिए.

मिट्टी

मनुष्य मिट्टी का पुतला है कबीर ने कहा है, 'माटी ओढन, माटी पहरन, माटी का सरहाना; आखिर माटी में मिल जाना' आधुनिक सभ्यता में इस उक्ति के पहले भाग की बात अधिकाधिक दूर होती जा रही है. आदमी प्रकृति से इतना दूर होता जा रहा है कि मिट्टी का स्पर्श अब असभ्य वा ग्रामीण जीवन का लक्षण माना जाता है शहरी या धनवान माता पिता अपने शरीर या वस्त्रो को जरा भी मिट्टी लगने देना नहीं चाहते, वे अपने बालको को 'धूल-धूसरित' देखना पसन्द नहीं करते. बहुत छोटी उम्र से ही वे उनके लिए यथेष्ट वस्त्रो का प्रबन्ध कर देते है, फिर आधुनिक मकानो में फर्श भी सीमेंट, चूने या पत्थर का होता है. जिससे मिट्टी का कण भी देखने को न मिले. हम भूल गये हैं, और भूलते जा रहे हैं कि मनुष्य के शरीर के लिए मिट्टी कितनी गुणकारी है

मिट्टी के स्वास्थ्य-वर्द्धक गुण—मिट्टी स्वास्थ्य बढ़ाने वाली तथा रोग मिटाने वाली अमूल्य वस्तु है. बीमारी की हालत में शरीर में जो विशेष ताप हो जाता है, उसे खींच लेने तथा रोग के विष को सोखने की जितनी क्षमता मिट्टी मे है, उतनी

अन्य किसी वस्तु में नहीं. जिन लोगो को रात को अच्छी गहरी नींद नहीं आती, या सपनो से भरी तन्द्रा मात्र आती है, उन्हे नियम से नंगे पाव मिट्टी पर टहलने से बहुत लाभ होता है. बच्चे साफ सुथरी और सूखी मिट्टी पर (खुली हवा मे) खेलें तो उन्हे बहुत-सी बीमारियो से छुट्टी मिल जाय और उनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा रहे. उनका रोना-धोना कम हो जाय और वे शान्त प्रकृति के बन जाय. युवको तथा प्रौढ़ो को भी नगे पाव मिट्टी पर खेलने या टहलने से बहुत लाभ होता है मिट्टी शरीर को साबुन की तरह साफ कर देती है, विशेषता यह कि मिट्टी मल कर स्नान करने के बाद तेल लगाने की ज़रूरत नहीं पड़ती. मिट्टी से गन्दगी दूर हो जाती है, यह तो इसी से स्पष्ट है कि भारत मे आदमी शौच जाने के बाद मिट्टी मल कर हाथ धोते है.

मिट्टी का उपयोग—शरीर को मिट्टी के ससर्ग से लाने का सब से सुगम उपाय नगे पाव टहलना या खेलना है भारत मे पहले आदमी जूता बहुत कम पहनते थे, अधिकतर नंगे पॉव डोलते थे, या खडाऊ आदि का उपयोग करते थे, जिससे मिट्टी का यथेष्ट स्पर्श होता था अब तो अनेक बालक छोटी उम्र से ही तरह-तरह के जूते पहनते हैं, यही नही, उनके साथ जराव और मौजे भी पहनते है, जिससे उनके शरीर को मिट्टी (और हवा तथा धूप) यथा-सम्भव बिल्कुल न लगने पावे पहले यहॉ गेन्द-बल्ला, गुली-डडा, कुश्ती या कबड्डी आदि खेलो का चलन था, जिनमे नगे पाव रहा जाता था, और शरीर को मिट्टी के उपयोग का आनन्द मिलता था अब ये खेल गावो मे भी कम होते जा रहे है शहरो से तो प्राय उठ ही चले हैं अगरेजो की देखा-देखी यहां क्रिकेट, फुटबाल और हाकी, टेनिस, वाली बाल आदि खेलो का चलन बढ़ गया है, जिनमे पावो

मे जूते और मौजे होने के कारण मिट्टी का स्पर्श विलकुल नहीं हो पाता

सिर धोने या स्नान करने के लिए अव तरह-तरह के सावुन काम मे लाये जाते हैं, दांत साफ करने के लिए कीमती मजन या 'टूथ-पेस्ट' आदि का व्यवहार होता है. यहां तक कि शौच जाने के वाद हाथ धोने के लिए तथा कपड़े धोने के लिए सावुन का उपयोग वढ़ रहा है. इन सव कामो में मिट्टी का व्यवहार अधिक लाभदायक तथा कम खर्चीला है

वहुत सी वीमारियो मे मिट्टी की पुल्टिस से वहुत जल्द और मुफ्त मे आराम हो सकता है, पर आधुनिक काल मे अनेक आदमी तरह-तरह की कीमती दवाइयो का इस्तेमाल करते हैं, जिनसे वहुधा रोग का निवारण न होकर उसका रूपान्तर मात्र हो जाता है, या वह केवल कुछ अस्थायी रूप से दव जाता है अगर आदमी जरा विचार करे तो वे मिट्टी के जादू से खूव लाभ उठा सकते है स्मरण रहे कि मिट्टी अच्छी होनी चाहिए और भिन्न भिन्न प्रकार की मिट्टियो के गुणो का विचार कर के उनका उपयोग किया जाना चाहिए

मिट्टी के वर्तन—आज कल अपने आप को सभ्य कहने वाला और समाज मे अपनी हैसियत कुछ ऊची दिखाने वाला आदमी मिट्टी के वर्तनो का वहुत ही कम उपयोग करता है; शहरो और कस्वो मे तो मानो इनका रिवाज उठ ही गया है, गांवो में भी भोजन पकाने या खाने मे कुछ गरीव आदमी ही इनका उपयोग करते हैं. धातुओ के वर्तनो का चलन वढ़ता जा रहा है. और उनमे खाने की चीजे न विगड़े, इसलिए उन पर कलई करादी जाती है, परन्तु प्राय वह अच्छी नहीं की जाती और अधिक समय के वाद की जाती है इसलिए कलई किये हुए वर्तन भी ठीक नहीं रहते. निदान, धातु के वर्तन इस्तेमाल

करना हानिकारक है, उनसे शरीर में जहर पहुँचता है. आवश्यकता है कि जहा तक बन आवे मिट्टी के बर्तनो का उपयोग किया जाय, इसमें खर्च तो कम होता ही है, यह स्वास्थ्य की दृष्टि से भी हितकर है.

'धातु के बर्तन मे आच सीधी अन्न को लगकर वह जल्दी पक जाता है इसलिए वह अन्न जरूरत से अधिक पककर उसमे का पौष्टिक भाग कुछ हद तक नष्ट हो जाने का हमेशा अंदेशा रहता है. पर मिट्टी के बर्तन मे अन्न धीरे-धीरे पकता है और इसलिए उसका बहुत-सा पौष्टिक भाग नष्ट नही हो पाता, क्योंकि अन्न को उष्णता बहुत आहिस्ता आहिस्ता लगती है और वह भी बर्तन के छेदो मे रहने वाली भाप से मिलती रहती है. मिट्टी के बर्तन एक 'कुकर' का भी काम करते हैं, क्योंकि उनके छिद्रों मे पानी भरा रहता है और उसकी उष्णता से अन्न पकता है.×

विशेष वक्तव्य—इधर कुछ समय से स्वास्थ्य और चिकित्सा के सम्बन्ध मे नये-नये अनुसंधान और आविष्कार हो रहे हैं. तरह-तरह के पौष्टिक पदार्थ और औषधियाँ बनायी जाती हैं. पर ये अधिकतर स्वास्थ्य-नाशक ही हैं प्रकृति की अमूल्य देन हवा, प्रकाश, जल और मिट्टी के सम्बन्ध मे यथेष्ट अध्ययन और मनन नहीं हुआ है. लोकसेवी सज्जनो को इस ओर ध्यान देना चाहिए सर्वसाधारण जनता के लिए ये ही सुलभ हैं; कृत्रिम खाद्य पदार्थ और कीमती औषधिया उन तक नहीं पहुच सकती और जो उनका सेवन करते हैं, वे अधिकतर दशाओं में पीछे जा कर प्रत्यक्ष या परोक्ष हानि ही उठाते हैं इसलिए उनका प्रचार रोक कर उपर्युक्त प्राकृतिक पदार्थों के उपयोग को प्रोत्साहन मिलना चाहिए

× 'ग्रामोद्योग पत्रिका' के लेख से.

छठा अध्याय

भोजन

जीवित रहने के लिए भोजन करो, न कि भोजन करने के लिए जीवित रहो

—नीति वाक्य

चाय, कहवा और कोको के त्याग मे मैंने कुछ भी खोया नहीं है, उलटा पाया ही है. जो स्वाद मैं चाय इत्यादि से लेता था, उससे कहीं अधिक अब मैं सामान्य भाजियो को उबाल कर उनके पानी से लेता हू

—गाधीजी

हम जो खाते हैं, उसका एक-तिहाई हमे जिन्दा रखता है, और दो-तिहाई डाक्टरों को.

—डाक्टर लिंडलहर

भोजन का उद्देश्य और महत्व—भोजन करने के मुख्य उद्देश्य ये हैं:—शारीरिक परिश्रम से टूटे हुए शरीर-तंतुओं की मरम्मत करना तथा शरीर को पोषक तत्व प्रदान करना, (२) शरीर की खर्च होनेवाली शक्ति की पूर्ति करना, और (३) शरीर को आवश्यकतानुसार गर्म बनाए रखना. यह ध्यान में रखते हुए आदमी को ऐसा भोजन करना चाहिए कि शरीर स्वस्थ और हृष्ट-पुष्ट रहे. हमारा स्वास्थ्य हवा और पानी के अतिरिक्त बहुत कुछ हमारे भोजन पर निर्भर है जर्मनी के प्राकृतिक-चिकित्सा विशेषज्ञ डाक्टर अडोल्फ जस्ट का यह कथन

खास तौर पर ध्यान में रखने योग्य है कि 'बीमारी मनुष्य के शरीर मे अप्राकृतिक भोजन के प्रवेश से पैदा होती है—जो भोजन प्रकृति ने मनुष्य के लिए नहीं बनाया है, और जिस के लिए शरीर के पचाने वाले अवयव अनुकूल नहीं हैं. ऐसा भोजन या तो बिल्कुल हज्म नहीं होता या आधा-पधा हज्म होता है. भोजन के जिस अश का पाचन नहीं होता, वह विजातीय द्रव्य बनकर शरीर में पडा रहता है, अग-प्रत्यंग से घुस जाता है, सडने लगता है और मनुष्य के लिए विविध प्रकार के रोग, दु.ख तथा कष्टो का कारण बनता है.'

भोजन का हमारे शरीर के अतिरिक्त, हमारे विचारो पर भी बहुत प्रभाव पडता है इस प्रकार उचित भोजन हमारे मानसिक स्वास्थ्य को बनाये रखने का प्रबल साधन है इसलिए उसके उद्देश्य का निरतर ध्यान रखा जाना चाहिए, तभी वह व्यक्ति तथा समाज का वास्तविक हित साधन कर सकता है

भोजन का परिमाण—बहुत से आदमी स्वाद के कारण आवश्यकता से अधिक भोजन खा जाते है, यह हानिकारक है. अन्नाहार हो, फलाहार हो या मासाहार हो, उसका उपयोग भोग, स्वाद या वासना की दृष्टि से न किया जाना चाहिए, और उसके परिमाण का यथेष्ट ध्यान रखा जाना चाहिए श्री विनोबा ने कहा है—

'वासना पूर्वक फल खानेवाले की बनिस्वत केवल क्षुधा-हरण के लिए मछली खानेवाला ज्यादा भक्त है... क्या खाना चाहिए, इसके बजाय कितना खाना चाहिए—यह वस्तु आध्यात्मिक दृष्टि से अधिक महत्व की है एक आदमी मामूली दाल-रोटी खाता है—जो कि शायद राजस अन्न समझा जायगा—लेकिन ठीक मात्रा मे खाता है, जीभ पर काबू रखता है, स्वाद की वृत्ति नही रखता तो आध्यात्मिक दृष्टि से उसकी योग्यता

अधिक है बनिस्बत उसके जो कि सात्विक आहार करता है, लेकिन परिमाण में अधिक खा लेता है, और स्वाद चखने की वृत्ति रखता है.'

खाद्य पदार्थ; उनके शुद्ध रहने की आवश्यकता— शरीर के लिए कौन-कौन से तत्व आवश्यक हैं, और उनकी प्राप्ति किस-किस खाद्य पदार्थ से होती है, अर्थात् हमे कौन-कौन से पदार्थ किस परिमाण मे खाने चाहिएँ, यह आहार-विज्ञान सम्बन्धी अच्छी पुस्तको से तथा अपने अनुभव से ज्ञात हो सकता है इस विषय का एक मोटा अनुमान 'खेती' के अध्याय मे दिया गया है हमे चाहिए कि भोजन के पदार्थों का चुनाव तथा उनके परिमाण का निश्चय करने मे इस बात का ध्यान रखें कि वास्तव मे वे हमारे लिए कहा तक आवश्यक और उपयोगी हैं.

आजकल आदमी बहुधा ऐसी चीजे खाते है जो ताजी या शुद्ध नहीं होतीं, बाजार से लायी जाने वाली मिठाइयाँ आदि अनेक बार कई-कई दिन की होती हैं; उनकी शोभा बढाने के लिए उनमे रग पडा होता है; यह निश्चय नहीं रहता कि उनमें जो घी लगा है, वह कहा तक शुद्ध या ताजा है. अब तो अनेक स्थानो में-वनस्पति तेल का उपयोग या उसकी मिलावट होती है एक अन्न के आटे मे दूसरे घटिया अन्न का आटा मिला होता है, कई बार तो उसके साथ दूसरे पदार्थ, यहा तक कि अखाद्य पदार्थ भी, पिसे हुए होते हैं. इन बातो का परिणाम यह होता है कि भोजन के पदार्थों से मनुष्य को जितना लाभ या सुख मिलना चाहिए, वह नहीं मिल पाता; यही नहीं, अनेक बार उनके उपयोग से आदमी भयकर रोगो का शिकार बनता है. इसलिए यह बहुत ही आवश्यक है कि खाने के पदार्थ ताजे, और शुद्ध या बेमिलावट के होने चाहिएँ.

भोजन में स्वावलम्बन—इसका सबसे अच्छा उपाय यह है कि आदमी यथा-सम्भव अपने घर पर बनी हुई चीजो का उपयोग करें वर्तमान अवस्था मे हम बाजार की तथा दूसरे नगरो ही नहीं, विदेशो से आयी हुई खाद्य सामग्री का बहुत अधिक उपयोग करते है ज्यो-ज्यो हमारा रहनसहन शहरी ढग का होता जाता है, हमारी यह प्रवृत्ति बढ़ती जाती है इसका कड़ा नियन्त्रण होना ज़रूरी है आवश्यकतानुसार हम कच्चा माल दूसरो से लेले, पर उससे भोजन स्वय अपने घर पर ही बनावें. आराम-तलब आदमी को ऐसी बात सुहाती नहीं, पर जिन्हे अपने तथा अपने बाल-बच्चो के जीवन और स्वास्थ्य की चिन्ता हो, उन्हे यह, कुछ कठिन प्रतीत होने पर भी, करना चाहिए.

स्थानीय वस्तुओं का उपयोग—हमने आवश्यकता होने पर भोजन सम्बन्धी कच्चे पदार्थ दूसरो से लेने की बात कही है इसमे भी यह ध्यान रहना चाहिए कि हम स्थानीय पदार्थों का ही उपयोग करे. जहा जो अन्न, शाक या फलादि पैदा होते हैं, वहा के आदमियो को उनका ही सेवन करना चाहिए बहुत से आदमी अपने यहा के ज्वार, बाजरा आदि का उपयोग न कर बाहर से गेहूं और चावल मगाते है. शाक-भाजी भी हम कई-कई मील दूर के स्थानो से आये हुए काम मे लाते है फल और मेवा तो दूसरे प्रान्तो या देशो तक के मगाये जाते हैं. भारत मे सभी स्थानो के आदमी काबुली या कधारी अनार, कश्मीरी सेव, नागपुरी सतरे, बम्बइया केले आदि का उपयोग करने के इच्छुक रहते है. इस प्रकार पदार्थों का आयात निर्यात तो अनावश्यक रूप से बढ़ता ही है, ये चीजे मनुष्य को परावलम्बी बनाती है, और बहुधा उसकी प्रकृति के अनुकूल भी नहीं होतीं साधारण सिद्धान्त यह है कि जो व्यक्ति जहां का निवासी होता

है, उसे वहां के ही पदार्थ अनुकूल होते हैं. अतः हमें यथा-सम्भव स्थानीय पदार्थों का ही उपयोग करना चाहिए

उपयोग-विधि; विटामिन—वैज्ञानिको का मत है कि विविध खाद्य पदार्थों में खास-खास 'विटामिन' (पोषक-तत्व या जीवन-तत्व) होते हैं ये शरीर के लिए ऐसे उपयोगी हैं, जैसे एंजिन के लिए तेल इनके कई भेद हैं ए, वी, सी, डी, ई, एफ, आदि. ये विभिन्न प्रकार से शरीर की पुष्टि तथा रोग-निवारण के लिए जरूरी हैं भोजन मे खास-खास विटामिन की कमी से कुछ खास-खास रोग हो जाते हैं, इसलिए ऐसा प्रयत्न होना चाहिए कि प्रत्येक प्रकार का विटामिन काफी मात्रा में रहे. किन्तु हम प्रायः भोजन इस तरह वनाते हैं कि उसका वहुत-सा विटामिन नष्ट हो जाता है उदाहरण के लिए पकाने से तथा उस पर विविध प्रक्रिया होने से उसमें इनकी कमी हो जाती है. पदार्थों को उसी सीमा तक पकाना चाहिए जहां तक वे विना पकाए न खाये जा सके मिल (मशीन की चक्की) में पीसे हुए मैदे या वेसन के जीवन-तत्व कम हो जाते हैं, यह पचने में भारी होता है. अत आटा हाथ की चक्की का पिसा हुआ ही इस्तेमाल करना चाहिए तथा उसमे से छानस या चोकर नहीं निकालना चाहिए, जिससे वह जल्दी हज्म हो सके तथा शरीर को उसके सव पोषक तत्वो का लाभ मिल सके

चावल भी 'पूरा' खाया जाना चाहिए, जो धान का केवल छिलका हटा देने के वाद शेष रहता है आज कल मिलो में चावल का ऊपर का हिस्सा हटा कर इसे सफेद और चमकीला किया जाता है इस 'घटाए हुए' चावल का वहुत सा पोषक तत्व निकल जाता है और यह स्वास्थ्य के लिए अच्छा नहीं होता. इसी प्रकार चावल को पकाने से पहले कई वार धोना भी उसकी

शक्ति या गुण को कम कर देना है फिर, भात बना कर मांड फेंक देना भी बहुत खराब है इससे न केवल बहुत सा विटामिन अलग हो जाता है, वरन् मांड के साथ बहुत उपयोगी खनिज लवण भी निकल जाता है ऐसे चावल खानेवाला बहुत घाटे मे रहता है उसे चावल से यथेष्ट पोषण प्राप्त नहीं होता, और जो तत्व मिलते हैं, उनमे उचित अनुपात न रहने से वह रोग वर्द्धक हो जाता है

स्वास्थ्य की दृष्टि से दाल धोयी हुई नही खायी जानी चाहिए; छिलके वाली 'काली' दाल उससे कहीं अधिक गुणकारी और पौष्टिक है

पकवान, मिठाइयों, तथा कारखानो मे बने बिस्कुट आदि मे पोषक तत्व बहुत कम रहता है, अतः इनका उपयोग न कर घरो मे तैयार किये जाने वाले साधारण (बिना तले या बिना छौंके हुए) भोजन का ही उपयोग किया जाना चाहिए

दूध का उपयोग—दूध की उपयोगिता सब जानते है, पर हम बहुत से दूध से तरह-तरह की मिठाइयां बनाकर उसके गुण कम कर देते हैं रबडी, मलाई और खुर्चन बनाना भी दूध का दुरुपयोग ही है खोवा इतना बनने लग गया है कि घी की उत्पत्ति बहुत घट गयी है और उसकी पूर्ति वेजिटेबल (वनस्पति) तेलो से की जा रही है जिन्हे घी का झूठा नाम दे दिया जाता है. दूध की अपेक्षा खोवा बहुत ही कम उपयोगी है फिर खोवे की बनी मिठाइया तो और भी कम गुणकारी हैं; वरन् कहना चाहिए कि बहुत हानिकारक है. खोवा बनने से घी की कमी तो होती ही है, आदमी छाछ से भी वंचित हो जाते हैं, जो एक बहुत ही गुणकारी पदार्थ है इस लिए खोवा बनाना बन्द करने या बहुत कम करने का प्रयत्न होना चाहिए

भोजन पकाने की क्रिया; इंधन और धुँएँ का सवाल— पहले कहा जा चुका है कि खाने की चीजो को पकाने की इतनी आवश्यकता नहीं है, जितनी वे आज कल पकायी जाती हैं बहुत पकाने से उनका पोषक तत्व नष्ट हो जाता है इस के अतिरिक्त इंधन का भी बेहद खर्च होता है इंधन के उपयोग मे बहुत किफायत करने की जरूरत है बहुधा चूल्हे या भट्टी आदि ऐसी बनी होती हैं कि उनमे आग का यथेष्ट उपयोग नहीं होता, और धुआ बहुत अधिक होता है आवश्यकता है कि चूल्हे या भट्टी ऐसी बनायी जाय कि उनमे इंधन का खर्च बहुत कम हो, उनकी आग का अधिक से अधिक उपयोग हो मगनवाड़ी (वर्धा) आदि कई स्थानो में चूल्हे इसी उद्देश्य से नये ढग के बनाये गये हैं, उनका प्रचार होना चाहिए. इंधन भी ऐसा काम में लाया जाना चाहिए, जिससे धुआ न हो या बहुत ही कम हो इस दृष्टि से 'कुकर' का उपयोग अच्छा है; हां, इस मे भी बहुत सुधार की आवश्यकता है जहा-जहा स्वावलम्बी व्यवस्था हो सके, बिजली के चूल्हो से काम लिया जाना चाहिए.

मसाले—सम्भव है कि आरम्भ मे मनुष्य ने एक-एक मसाले (मिर्च, हल्दी, सोठ, हींग, जीरा, धनिया आदि) को किसी विशेष अवसर पर खाया हो, और उससे उसे किसी रोग के निवारण मे सहायता मिलने का अनुभव हुआ हो इस प्रकार औषधि के रूप मे काम मे लाया हुआ मसाला पीछे स्वाद लगने के कारण रोजमर्रा के उपयोग का पदार्थ बन गया और विविध मसाले भोजन के आवश्यक अग माने जाने लगे

मसालो के बारे मे यह बात तो है ही कि ये बिना जरूरत खाये जाते है इसके अलावा, इनके सयोग से तरह-तरह की चटनियाँ और अचार आदि बनाये जाते हैं, जिनकी सहायता से आदमी बहुधा भोजन आवश्यकता से अधिक परिमाण मे

करता है. इस तरह मसालो के रूप मे तथा इनके द्वारा होने वाला अपव्यय स्पष्ट ही है इस से अधिक चिन्तनीय बात यह है कि आदमी अपना स्वास्थ्य बिगाड़ता है गांधीजी ने अपनी 'आरोग्य की कुंजी' मे यहा तक लिखा है कि 'एक आदमी जिसे मिर्च खाने का बहुत शौक था, उसकी तो भरी जवानी मे ये मिर्चें मृत्यु का कारण बनी' निदान, मसाले खाकर अपने स्वास्थ्य को बिगाडने वाला व्यक्ति राष्ट्र और समाज के सामने अपराधी है लोगो को इनके सेवन से बचना चाहिए; खासकर माता पिता इस ओर ध्यान दे

उत्तेजक और मादक पदार्थों का सेवन—मसालो के अतिरिक्त आदमी और भी कई ऐसे पदार्थों का सेवन करता है, जो उसे शरीर की रक्षा या पोषण के लिए आवश्यक नहीं होते, अथवा कुछ विशेष परिस्थितियो मे और परिमित मात्रा मे ही उपयोगी होते है आदमी क्षणिक स्वाद, शौक या उत्तेजना आदि के लिए उनका बहुत अधिक उपयोग करता है, यहां तक उनका आदी हो जाता है चाय, तमाखू, शराब तथा अन्य मादक पदार्थ इसी श्रेणी के हैं ये अधिकाश मे अनावश्यक तथा हानिकर है.

चाय, कहवा आदि—पहले चाय की बात ले इसका चलन सब से पहले चीन मे हुआ वहा जल का विकार दूर करने के लिए इसका उपयोग होता था इसे उबलते पानी मे डालकर पानी शुद्ध किया जाता था पीछे, धीरे-धीरे आदमी इस की सुगन्धि और रग से आकर्षित होकर आदतन इसका सेवन करने लगे. क्रमशः अन्य देशो में इसका प्रचार हो चला भारत मे तो हमारे देखते-देखते ही इसका प्रचार बेहद बढ़ गया है 'आदमी इसका सेवन शौकिया करते

है. इससे शरीर को कोई लाभ नहीं; इसके विपरीत, इससे आदमी की भूख मारी जाती है और बदहज्मी होती है. इससे स्वभावतः शरीर की पुष्टि में बाधा होती है, और वह क्षीण होकर विविध रोगों का शिकार हो जाता है.

कुछ वर्ष पहले चाय का शौक ऊंचे दर्जे के रहन-सहन वाले ही करते थे धीरे-धीरे युवकों और विद्यार्थियों ने इसे अपना लिया. अब तो साधारण मजदूरों तक में इस अनावश्यक और हानिकर वस्तु का प्रचार खूब जोर से हो गया है. अनेक आदमियों को इसकी आदत पड़ गयी है उन्हें यह समय पर न मिले तो उन्हें चैन नहीं पड़ती इतने अधिक प्रचार का मुख्य कारण चाय-कम्पनियों की चालाकी और विज्ञापनबाजी है कई डाक्टरों की सम्मति है कि चाय एक हल्का उत्तेजक पदार्थ है, जो मनुष्य की शक्ति को उसी प्रकार बढ़ाता है, जैसे दुर्बल घोड़े की शक्ति को चाबुक या हंटर बढ़ाता है. लोगों को चाहिए कि वे मिथ्या या अत्युक्ति-पूर्ण विज्ञापनों के धोखे में न आवें यदि उन्हें अपनी शक्ति वास्तव में बढ़ानी है तो दूध-घी, फल, मेवा आदि पौष्टिक पदार्थों का सेवन करें, न कि चाय जैसे उत्तेजक पदार्थों का

जो बातें चाय के बारे में कही गयी है, वे ही कहवे और कोको के बारे में भी सत्य हैं. इस विषय में गांधीजी का अनुभव बहुत शिक्षाप्रद है उसका उल्लेख इस अध्याय के आरम्भ में किया गया है.

तमाखू—तमाखू ने अपना जाल संसार भर में फैला रखा है प्रत्येक देश में इसका विविध रूपों में प्रचार है बहुत से आदमियों के लिए यह भोजन की तरह आवश्यक है. भारत में पहले आदमी हुक्का पिया करते थे अब शौकीनों को हुक्का अच्छा नहीं लगता; वे सिगरेट या बीड़ी पीते हैं, यद्यपि उसका धुआं

हुक्के के धुए से अधिक हानिकारक है. बहुतेरे आदमी तमाखू पीते नहीं, तो सूघते या खाते ही हैं निदान, बहुत कम आदमी ऐसे मिलेंगे, जो इसका बिलकुल ही व्यवहार नहीं करते संभव है, कुछ आदमी तमाखू का सेवन किन्ही विशेष अवस्थाओ मे, कोई खास बीमारी दूर करने के लिए, औषधि-रूप मे करते हो, परन्तु इनकी संख्या मुश्किल से एक फी-सदी होगी. अधिकाश आदमी देखा-देखी, शौक के लिए, इसका खुद इस्तेमाल, और यार-दोस्तो मे प्रचार करते हैं. बड़े-बड़े वैद्यो और डाक्टरो का मत है कि तमाखू खाने, पीने या सूंघने से इन विकारो के होने का भय रहता है—मद-दृष्टि, मूर्च्छा, कलेजे में जलन, छाती मे कफ बढना, दांतो की कमजोरी, पित्त की वृद्धि, और शरीर की कमजोरी आदि.

तमाखू के सेवन की आदत बहुत ही गन्दी है. इसे (जरदे के रूप मे) खाने वाले बहुधा घर के कोनो तथा दीवारो पर थूकते रहते हैं पीने वाले आदमियो का घर बदबूदार धुए से भरा रहता है, और सूघने वाले बारबार नाक पोछ कर अपने कपड़े खराब किया करते है पैसा और स्वास्थ्य नष्ट करने वाला तथा गदगी फैलाने वाला तमाखू का यह व्यवहार बहुत ही निन्दनीय है. लोकसेवी सज्जनो को चाहिए कि इसके विरुद्ध यथेष्ट लोकमत तैय्यार करें

अफीम—अफीम सेवन करने वाला आदमी आलस्य और नद्रा का अनुभव करता है बहुधा माताएं अपने बच्चो की सार-सभार से निश्चिंत होने के लिए उन्हे अफीम खिला देती हैं. अधिक मात्रा मे तो यह घातक होती ही है, साधारण मात्रा मे, अथवा औषधि के रूप मे भी यह कहा तक उपयोगी है, यह संदिग्ध ही है. जो हो, इसके सेवन की आदत डालना बहुत हानिकारक और स्वास्थ्य-नाशक है.

अन्य मादक पदार्थ; शराब आदि—चाय, तमाखू और अफीम के अतिरिक्त और भी कई पदार्थ उत्तेजक या मादक हैं भारत में बहुत से आदमी भाग, गांजा और चरस आदि का सेवन करते हैं इधर कुछ समय से यहा शराब का प्रचार बढ़ता ही जा रहा है. ऊची श्रेणी के वे मनुष्य, जो विलायती ढग से रहने लगे हैं, मद्य-पान से परहेज नही करते. मजदूर, विशेषतया कल कारखानो में काम करने वाले, एक-दूसरे की देखा-देखी अपनी बहुत-सी गाढ़ी कमाई इसमें खर्च कर डालते हैं.

यहाँ ताडी का भी कुछ उल्लेख आवश्यक है. यह खजूर के रस से बनती है, उसके ताज़े रस में नशा नहीं होता, उसे नीरा कहते हैं पर यह जल्दी ही नशीली हो जाती है जहा नीरा को ताजा ही न पिया जा सके, वहा इसका गुड बनाया जा सकता है, जो बहुत गुणकारी होता है पर अनेक आदमी इसे मादक पदार्थ बना कर ही काम में लाते हैं.

सभी मादक पदार्थ आदमी को कम-ज्यादा बेहोश करते है शराब पीने वाले तो बेहोशी में अपशब्दो का व्यवहार करते हैं, और बहुधा गदे मजाक करते हैं वे अकसर नालियो मे लोटते हैं, उन्हें अपने शरीर या लज्जा-निवारण आदि का कुछ ध्यान नहीं रहता कुछ लोगो का मत है कि बहुत ठडे प्रदेशो में रहने वालो, या सर्दी मे काम करने वालो के लिए इसका परिमित परिमाण में उपयोग किया जाना लाभकारी है तथा कुछ बीमारियो मे भी यह गुणकारी है. इसकी आलोचना मे न जाकर यहां यही कहना है कि ससार के सभी देशो मे शराब आदि का अधिकतर उपयोग अनावश्यक और हानिकारक है इससे लोगो के द्रव्य, स्वास्थ्य और चरित्र सभी को क्षति पहुँचती है. अतः इसके सेवन को, कुछ विशेष दशाओ को छोड कर, बन्द किया जाना चाहिए

भोजन-सुधार से जीवन-सुधार—यदि हम अपना खान-पान भोजन के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए करें तो हमें मितव्ययिता और स्वास्थ्य का लाभ तो मिलेगा ही; इसके अतिरिक्त हमारे व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन मे कितना सुधार हो जाय। वर्तमान दशा मे भोजन सम्बन्धी विविध क्रियाओ मे हमारा कितना समय और शक्ति अनावश्यक रूप से खर्च हो रही है। हमें उनसे कुछ लाभ नहीं होता, उलटा हम बहुत हानि उठा रहे हैं. हमे इस विषय का बहुत सोच विचार करना पडता है कि किस प्रकार खाने के नये-नये जायकेदार पदार्थ तैयार किये जाय, और उन्हें अधिक से अधिक परिमाण मे खाया जाय. हम दिन में चार-चार पाच-पांच समय कुछ न कुछ खाते-पीते रहते है. सवेरे का नाश्ता, दोपहर का भोजन, तीसरे पहर का फलाहार, शाम का खाना, फिर सोते समय दूध आदि; इसके अतिरिक्त समय-समय पर सोडा, लेमनेड, शर्बत, ठंडाई, लस्सी, चाय, कहवा, कोको आदि अन्य पेय भी चलते रहते हैं हमारे घर कोई मेहमान आता है तो एक खास काम यह हो जाता है कि उसे किस समय क्या क्या पदार्थ खाने पीने को दिये जाय. भारत मे घरो में औरतो का मुख्य काम तरह-तरह के बढ़िया कहे जाने वाले भोजनो की व्यवस्था करने का ही रहता है बाजार मे हलवाई की दुकान, होटल या विश्रान्ति गृह आदि का काम करते हुए अनेक आदमियो का जीवन बहुत सवेरे से लेकर, बड़ी रात गये तक तरह-तरह के मिष्टान्न या नमकीन पदार्थ तथा पेय बनाने या सजा कर रखने का ही रहता है विवाह शादी या तीज त्योहार के समय हम अपने अतिथियो का सत्कार खूब 'बढ़िया' भोजन से करते है और साथ मे चूर्ण चटनी या पाचक पेय की भी व्यवस्था करते है.

हमारा अतिथि-सत्कार या खातिरदारी ऐसी सीमा तक

होती है कि अतिथियो को अपने घर लौटने पर कई-कई दिन तक बदहज्मी आदि की शिकायत रहती है, और उन्हे याद रहता है कि अमुक व्यक्ति के यहा हमारा ऐसा स्वागत हुआ था, जिसके फल-स्वरूप हम इतने बीमार पड़े हैं.

यदि आदमी भोजन में सादगी का व्यवहार करे तो उपर्युक्त बातो मे कितना परिवर्तन हो जाय—अतिथियो को बीमार पडने का अवसर न आये, घर वालो की बहुत सी परेशानी बच जाय, स्त्रियो को भोजन बनाने का ही काम मुख्य न रहे, और वे अपने समय का अधिक सदुपयोग कर सके, हलवाइयो को तथा होटल आदि वालो को बहुत विश्राम मिल सके और उनका समय-विभाग बहुत सतुलित हो सके. इस प्रकार सर्व-साधारण के लिए भोजन-सुधार का प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण है, इससे जनता के स्वास्थ्य और रोजमर्रा के जीवन में यथेष्ट सुधार होगा.

सातवाँ अध्याय

वस्त्र

कपड़ा पहनने के उद्देश्य—आज कल प्रायः सभी आदमी थोड़ा या बहुत किसी न किसी तरह का कपड़ा पहनते है मनुष्य के नग्न अवस्था को छोड़ कर, कपड़ा पहनना शुरू करने के प्रायः तीन कारण बताये जाते हैं १—शरीर की सर्दी-गर्मी से रक्षा, २—लज्जा-निवारण, ३—शरीर की सजावट

आम तौर से इनमे से पहली दो बाते मुख्य मानी जाती है परन्तु इतिहास से पता चलता है कि लज्जा का भाव शुरू मे था ही नहीं, और यह भाव कपडा पहनने का कारण नहीं, बल्कि उस का परिणाम है अर्थात् धीरे-धीरे जब आदमी कपड़ा पहनने लग गया तो न पहनने की दशा मे उसे लज्जा या शर्म का अनुभव होने लगा इसी तरह सर्दी-गर्मी से शरीर की रक्षा की बात है, जब आदमी जगली हालत मे रहता था, तो उसे सर्दी-गर्मी विशेष नही लगती थी उसमे पशुओ की तरह सहन करने की शक्ति काफी थी, जो पीछे धीरे-धीरे कम हो गयी इस प्रकार शुरू मे आदमी को कपडे पहनने की ज़रूरत सर्दी-गर्मी से बचने के लिए भी नहीं थी

खोज से पता लगा है कि आदमी को पहले-पहल कपडा पहनने को ज़रूरत अपने शरीर को सजाने की इच्छा से हुई, पीछे तो उसे इसकी आदत ही पड गयी धीरे-धीरे वह यह अनुभव करने लगा कि ठड के समय बिना कपडा पहने उसे सर्दी लगती है और तेज धूप के समय शरीर पर कुछ कपडा

होने से गर्मी कम सताती है. इसलिए सर्दी-गर्मी से बचने के लिए कपडा पहनना उपयोगी है. क्रमशः आदमी में यह भावना पैदा हो गयी कि कपडा पहनना इसलिए जरूरी है कि इससे लज्जा निवारण होती है. कपडा हमारी सभ्यता और शिष्टाचार का सूचक हो गया

सभ्यता की वृद्धि के साथ कपड़े के उपयोग में वृद्धि— ज्यो-ज्यो सभ्यता बढ़ती गयी, आदमी ग्रामीण जीवन छोड कर शहरी जीवन बिताने लगे, कपड़े का उपयोग अधिक होने लगा. अब बहुत से आदमी बहुत ही अधिक कपडा पहनते है, या पहनना चाहते हैं लज्जा-निवारण के लिए पुरुष या स्त्री को बहुत थोड़े कपड़े की जरूरत होती है. इसी प्रकार सर्दी गर्मी से बचने के लिए भी आदमी को मामूली कपडा ही चाहिए; सर्दी गर्मी का अनुभव बहुत कुछ आदमी की आदत पर निर्भर है. कुछ लोग बहुत अधिक सर्दी के समय भी थोडे से कपडे से काम चला लेते हैं; इसके विपरीत, दूसरे आदमी जो बहुत अधिक कपडे पहनने के आदी हो जाते हैं, उन्हे उन कपडो में जरा कमी करने से ही बहुत ठड लगने लगती है भारत का साधारण किसान या मजदूर एक धोती और चद्दर मे सतोष कर लेता है, जब कि योरप-अमरीका के 'सभ्य' पुरुष तथा उनका अनुकरण करने वाले भारतीयो की पोशक में देखिए कितने कपड़े चाहिए—बनयान, कमीज, वास्कट, कोट, कालर, नेकटाई, टोप, जांघिया (अडरवेयर), पतलून और उसके साथ पेटी या गेलिस, मोजे, गेटिस और जूते फिर ये लोग दिन मे कई बार कपड़ा बदलते हैं और अलग-अलग अवसर के लिए जुदा-जुदा पोशाक रखते हैं इससे शरीर को यथेष्ट धूप और हवा नहीं मिलती, रोग बढ रहे है, क्षय आदि बीमारिया फैलती जा रही हैं, और लोगो का स्वास्थ्य बिगडता ही जाता है

नये-नये फैशन और कीमती वस्त्र—आज कल पोशाक के नित्य नये फैशन निकलते रहते है. धनवान या शौकीन लोग अपनी पोशाक के पुराने ढग को बदल कर नये ढग की पोशाक ग्रहण करते रहते है अथवा बहुत बढ़िया कपडा काम मे लाते हैं कुछ आदमी सूती या ऊनी कपड़े में ही अपनी अमीरी दिखाते हैं, कुछ बढिया रेशमी (या अन्य) वस्त्र पहनते है, जिनके लिए असख्य कीड़े मारे जाते है कुछ लोग ऐसे कपड़े का उपयोग करते है, जो सोने-चांदी के तारो के कारण बहुत कीमती होता है खासकर यूरोप-अमरीका की शौकीन स्त्रिया अपनी पोशाक मे ऐसे पक्षियो के पर लगवाती है जो बहुत दुर्लभ होते है. उनके इस फैशन या शौक के वास्ते बे-ज़बान पक्षियों को अपनी जान खोनी पडती है. यही नहीं, कुछ रमणियो के गले मे फर्द कोट आदि पहनावे के लिए 'टो' नामक चमडा काम आता है, यह भेड़ के गर्भस्थ बच्चे की नर्म रोंएदार खाल से बनता है इसके लिए भेड़ तथा उसके बच्चे की एक-साथ हत्या की जाती है. अकेले भारतवर्ष मे विदेशी महिलाओ के लिए प्रति वर्ष १५ लाख गर्भवती भेड़ो तथा उनके १५ लाख बच्चो का बध होता है. सभ्यता के इस युग मे जब रूई, सन, पटसन, ऊन आदि के तरह-तरह के कपड़े बनने लग गये हैं, सिर्फ शौक पूरा करने के लिए जीवों की यह हिन्सा खेदजनक है.

अनेक आदमियों के लिए कपड़े की भयंकर कमी—वर्तमान संसार मे कितनी विषमता है! कुछ आदमी तो कपड़े का उपयोग ज़रूरत से ज्यादा करते है, और नित्य नये फैशन के तथा कीमती कपड़े पहनते हैं तथा पर्दे, चांदनी, खोली या गिलाफ आदि मे खर्च करते है इसके विपरीत, हमारे अनेक भाइयो को अपनी शरीर-रक्षा के लिए भी यथेष्ट वस्त्र नहीं मिलता, इससे उनके स्वास्थ्य को हानि पहुंचती है, और वे

समाज मे नीची श्रेणी के माने जाते हैं. इससे बचने का उपाय यह है कि प्रत्येक परिवार अपनी जरूरत के कपडे लायक सूत स्वयं कात कर उसका कपडा बुनवाने का प्रयत्न करे

कपड़ा और स्वास्थ्य--जरूरत से कम कपडा पहनना स्वास्थ्य के लिए हानिकर है, यह तो सब जानते ही हैं उल्लेखनीय बात यह है कि आदमी के लिए अधिक कपडा पहनना भी ठीक नहीं वह जितना अधिक कपडा पहनता है, उतना ही वह हवा, प्रकाश और मिट्टी के उपयोग से वंचित होता जाता है और फल-स्वरूप अपने स्वास्थ्य को हानि पहुँचाता है इस विषय पर पहले लिखा जा चुका है पर आदत और सभ्यता का विचार आदमी को कपडे का इस्तेमाल घटाने से रोकता रहता है. तथापि कहीं-कहीं कुछ प्रतिक्रिया नजर आ रही है. भारत मे तो साधु सन्तो ने सदा ही बहुत कम कपडा पहना है, यहा तक कि वे प्रायः लगोटी लगाए या अर्द्ध नग्न अवस्था में रहते आये हैं अब योरप अमरीका मे कितने ही नगर-निवासी धूप का लाभ उठाने के लिए पहाडो पर, समुद्र के किनारे या दूसरी सुरक्षित जगहो मे जाते है और काफी समय नगे पड़े रहते अथवा घूमते है इससे उनका स्वास्थ्य बहुत सुधर जाता है यह विचार ठीक नहीं है कि कम कपडा पहनने या नगा रहने से आदमी की विषय-वासना बढ़ती है अकसर जो पुरुष और स्त्रिया बहुत अधिक कपड़ा पहनती है, और जो स्त्रियाँ पर्दे मे रहती है, उनमे विषय-वासना अपेक्षाकृत अधिक होती है. इस प्रकार कपड़े का अधिक उपयोग हमारे शारीरिक स्वास्थ्य के लिए ही नहीं, मानसिक स्वास्थ्य के लिए भी हानिकारक है

'सभ्य' मनुष्य को अपनी नगा रहने की हालत छोडे इतना समय बीत गया है और कपड़ा पहनने का वह इतना आदी हो गया है कि अब फिर शुरू की हालत मे जाने की सहसा आशा

नहीं की जा सकती. तो भी यह विषय विचार करने का है. जहां ऋतु अनुकूल हो, आदमी को दिन मे थोड़ा समय उघाड़े बदन अवश्य रहना चाहिए, जिससे उसका आकाश, धूप और हवा का संसर्ग हो. जहां विशेप वाधा न हो, आदमी को कुछ समय नंगे पांव चलना चाहिए, जिससे शरीर से मिट्टी का स्पर्श हो, और उसका लाभ मिले. इसके अलावा हमें अपने बदन को बहुत अधिक या तग कपड़ों से ढके रखना नहीं चाहिए इस प्रकार खासकर गर्मी में आधी बाहों की कमीज या बंडी और हाफ-पेन्ट या मामूली धोती का पहनावा अच्छा है कपड़ो का रग भी बहुत चमकीला या भड़कीला न होना चाहिए, जो आखो के लिए हानिकारक होता है

विशेष वक्तव्य—आवश्यकता है कि आदमी जो कपड़ा पहने वह जलवायु के विचार से अनुकूल हो, स्वास्थ्य के लिए हितकारी हो हम याद रखे कि कपडा शरीर के लिए है (अर्थात् उसका उद्देश्य शरीर की रक्षा करना है), न कि शरीर कपड़े के लिए प्राय हम शरीर से कपडो की एक छोटी-सी प्रदर्शनी का काम लेते है; हम कपड़ा खासकर इसलिए पहनते है कि दूसरे आदमी हमारी अमीरी या वैभव का परिचय प्राप्त करें, इस भावना के होते हुए हम नित्य नये और बहुमूल्य कपड़ों का उपयोग करके भी संतोप या सुख नहीं पा सकते इसके अतिरिक्त हम अपने गरीब भाइयो से दूर होते जाते है हमारा लक्ष्य मानव समाज मे एकता और समानता बढ़ाना है, पोशाक का यह कृत्रिम भेद-भाव तो बीच की खाइयो को और अधिक बढ़ाता है. हम जरा सोचे और कृत्रिम वेश-भूपा से बचे; इसी मे सबका कल्याण है.

आठवां अध्याय

मकान

यदि घर-बार के विना या कपडों के विना हम इस अनन्त (आकाश) के साथ सम्बन्ध जोड सकें तो हमारा शरीर, बुद्धि और आत्मा पूरी तरह आरोग्य का अनुभव करें इस आदर्श को भले हम न पहुँच सकें या करोडों मे से एक ही पहुँचता हो तो भी इस आदर्श को जानना समझना और उसके प्रति आदर-भाव रखना आवश्यक है और यदि वह आदर्श है तो जिस हद तक हम उसे पहुँच सकेंगे, उस हद तक हम सुख, शान्ति और सन्तोष का अनुभव करेंगे.

—गाधीजी

देहात के अधेरे और उजाड घर उनमे रहने वाले लोगों के जीवन की एक तसवीर है उनमें न हवा है, न प्रकाश है, न किसी तरह की सुन्दरता का खयाल है.

—शान्ता वेरूलकर

मकान की आवश्यकता—आदमी को घूमने फिरने का चाहे जितना काम हो, उसे विश्राम करने या भोजन बनाने और सोने आदि के लिए एक ऐसे स्थान की आवश्यकता होती है, जहा धूप, सर्दी, वर्षा और ओलो आदि से उस की रक्षा हो सके गुफाओ और पेडो के खोखर आदि का उपयोग करके मनुष्य ने क्रमशः झोपड़िया आदि बनायीं, फिर तरह-तरह के घरो का निर्माण किया. घरो ने गांवो और शहरों की सृष्टि की, जिनके समूह को देश तथा राज्य कहते हैं अस्तु, भोजन और वस्त्र की तरह घर या निवास भी मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकताओ में से है.

गांवों के घर—गॉवों मे अधिकाश मकान कच्चे होते है कुछ तो निरी झोपड़िया ही होती है—घास-फूस और लकडियो की बनी हुई इनमे धूप, वर्षा आदि से यथेष्ट रक्षा नहीं होती, आधी-तूफान मे इनके जल्दी ही उखड़ जाने की आशका रहती है, तथा भोजन बनाते समय बहुत सावधान रहना पडता है कि कहीं आग न लग जाय वैसे झोपड़ियां सादे रहन सहन की प्रतीक है, हवा और रोशनी इन में कुदरती तौर पर आते रहने से इनमे प्राकृतिक जीवन की छटा रहती है इनमे रहने वाले आदमी को इनकी समय-समय पर मरम्मत तथा देख भाल करनी होती है, इस प्रकार वह परिश्रमी और कष्ट सहने वाला होता है, इससे उसका स्वास्थ्य अपेक्षाकृत अच्छा रहता है

गावो मे झोपडियो से कुछ ऊचे दर्जे के निवास-स्थान कच्चे घर होते है. इनकी दीवारे वास और बल्ली आदि की अथवा मिट्टी या गारे की होती है, अथवा कच्ची इटो या पत्थर आदि की होती है. इन पर फूस का छप्पर डाला जाता है, अथवा लकडी की कड़ियो पर तख्ते डाल कर उन पर मिट्टी की छत बनाली जाती है इनकी समय समय पर और खासकर बरसात से पहले मरम्मत करने की ज़रूरत होती है, अन्यथा ये टपकते है, और दो-तीन साल मे गिरने ही लगते हैं. यद्यपि इधर इन घरो की बनावट में रोशनी और हवा का विचार किया जाने लगा है, प्राय: इन मे खिड़किया या रोशनदान आदि नहीं होते, रसोई के लिए अलग कोठरी नहीं होती ; गाय-भैस आदि पशु भी आदमियो के साथ उसी कोठरी में रहते है इससे होने वाली स्वास्थ्य-हानि स्पष्ट ही है

शहरों के मकान—सभ्यता के विकास मे गांवो की जगह शहर बने शहरो के अधिकाश मकान पक्की इंटो या पत्थरो की

दीवार वाले होते हैं. इनके फर्श ईंट, पत्थर, चूने या सीमेंट के होते हैं और छतें भी इन्हीं चीजो की बनायी जाती है; हां, उसमें लकड़ी या लोहे आदि की सहायता ली जाती है इस प्रकार ये मकान पक्के और मजबूत होते हैं परन्तु इनमे भी बहुत से दोष होते हैं. शहरो की बढी हुई आबादी की तुलना मे मकानो की सख्या बहुत कम होती है, और अधिकांश आदमी गरीब होने के कारण एक बहुत ही छोटा मकान या बडे मकान का बहुत ही छोटा हिस्सा रख सकते है या किराये पर ले सकते हैं इसका नतीजा यह होता है कि बहुत से आदमी तग तथा अधकार वाले मकानो में रहते हैं. एक-एक कमरे मे कई आदमियो को तथा कुछ दशाओ मे कई-कई परिवारो को जैसे-तैसे निर्वाह करना पड़ता है. इन मकानो मे शुद्ध हवा मिलना बहुत कठिन होता है. फिर, शहरो मे मिलो और कारखानो ने मजदूरो के लिए मकानो की अलग ही समस्या उपस्थित कर रखी है. इसका असर वहां की अन्य जनता को भी भोगना पड़ता है. इससे लोगो का स्वास्थ्य बिगडता रहता है.

बहुत से आदमियों के लिए मकानों की कमी—प्रत्येक देश के एक-एक नगर या गांव में प्रति मकान कितने व्यक्ति रहते हैं, इस के अको मे विभिन्नता होगी भारत में औसतन प्रति पाच मनुष्यो पीछे एक घर है. कस्बो में तथा देहातो मे यह औसत लगभग समान है. विशेष विचार करने की बात यह है कि संसार के किसी भी देश के सम्बन्ध में यह नहीं कहा जा सकता कि वहां के प्रत्येक नगर और ग्राम मे सब आदमियो के पास अपने मकान हैं, अथवा जो मकान हैं, वे काफी हैं आस्ट्रेलिया आदि जिन देशो में जनसख्या के अनुपात से भूमि काफी है, या अधिक भी कही जा सकती है, वहां गोरांग लोगो ने अपने मकान आदि के लिए बहुत अधिक भूमि घेर

रखी है, और अन्य लोगो के लिए खासकर वहां के मूल निवासियो के लिए मकान आदि की तगी है अन्य देशो में प्रथम तो मकानो के काम में आने वाली भूमि ही कम है; दूसरे, पूजोपतियो और सत्ताधारियो ने अपने लिए बड़े विशाल भवन बना रखे है तथा अपने टहलने आदि के लिए निजी पार्क आदि बना कर सर्वसाधारण के लिए मकानो के वास्ते जगह कम कर दी है यह बात केवल नगरो तक ही सीमित नहीं है, प्रायः गावो मे भी ऐसे दृश्य साधारण हैं कि कुछ थोड़े से आदमियो के पास बहुत लम्बे चौड़े मकान है, और बहुत से आदमियो को मकान का अभाव है निदान, शहरो में तथा गावो मे अनेक आदमी ऐसे है, जिनका अपना या किराये पर लिया हुआ भी कोई घर वा झोपड़ी नहीं; ये लोग दिन मे जहां तहां घूमते रहते हैं, और रात को बस्ती से वाहर या सडक के किनारे लेट कर अपना समय काटते है

मकानों की समस्या; सर्वोदय भावना की आवश्यकता—किसी आदमी के पास राज्य मे अपने रहने और गुजर करने लायक ठौर न होना बहुत करुणाजनक है ऊपर कहा गया है, कुछ लोगो के पास उनकी वास्तविक आवश्यकता से कहीं अधिक भूमि या मकान है. इन्हे चाहिए कि सर्वोदय की भावना का परिचय दे, अपरिग्रह का विचार करे, अपनी जमीन और मकान के अधिक से अधिक भाग का उपयोग अपने दूसरे जरूरतमन्द भाइयो को करने दें. वे यह कार्य स्वेच्छा से करे, और उस समय की प्रतीक्षा न करे, जब क्रान्ति की प्रवल लहर उन्हे यह कार्य करने के लिए वाध्य करेगी. खेती के लिए भूमि-दान-यज्ञ की बात 'भूमि'-शीर्षक अध्याय मे कही गयी है; मकान के लिए भूमि की व्यवस्था होना तो उसकी अपेक्षा बहुत छोटा काम है. अस्तु, प्रत्येक देश के गांव-गांव और नगर-नगर मे यह कार्य योजना-

पूर्वक होना चाहिए जनता और सरकार के सम्मिलित प्रयत्न से इसमे शीघ्र ही सफलता मिल सकती है.

मकान बनाने की सामग्री स्थानीय होनी चाहिए—मकान बनाने की योजना ऐसी होनी चाहिए, जो सर्वसाधारण के लिए सुलभ और व्यावहारिक हो इस लिए उनके बनाने मे जो सामान काम मे लाया जाय, वह यथा-सम्भव स्थानीय ही होना चाहिए जहाँ जिस प्रकार की लकड़ी, बांस, बल्ली, फूस और मिट्टी आसानी से मिलती हो, वहां उसी को काम मे लाया जाय. कोई चीज दूर-दूर से न मगायी जाय आज कल सीमेंट और चूने का उपयोग बहुत बढ़ता जा रहा है, और ये चीजें दूर-दूर से मगायी जाती है; यहीं नहीं, कितने ही आदमी तो मकानो के लिए तरह-तरह के पत्थर, चीनी-मिट्टी के चौके या 'टाइल' भाति-भाति की लकड़ी और अन्य सामान भी बाहर से मगाते हैं यह अनुचित है. बेघर वालो के लिए मकानो की समस्या हल करने के लिए तो बाहरी सामान मगाने का विचार ही न रखना चाहिए. देश मे श्रमियों की कमी नहीं है; लोगो को मिल जुल कर मकान बनाने का काम हाथ मे लेना चाहिए और कच्चा माल स्थानीय तौर पर प्राप्त करके मकानो की कमी दूर की जानी चाहिए

मकानों का बहुत अधिक उपयोग.—मनुष्य ने मकान अपनी खास-खास जरूरतो को पूरा करने के लिए बनाया, पर अब बहुत से आदमी इस बात को व्यवहार में भूल गये हैं वे बिना जरूरत भी मकानो मे ही रहते हैं उदाहरण के लिए जब बहुत सर्दी या बरसात नहीं होती तब भी वे घर मे ही सोते हैं. कितने ही आदमी दिन-चढ़े तक चारपाई या बिस्तर पर पड़े रहते हैं. मनोरंजन या खेल आदि के साधन ऐसे बना लिये गये हैं, जो

घर मे भी काम मे आ सकते है इस प्रकार आदमियों को प्रकृति के सेवन का या हवा. प्रकाश, मिट्टी आदि के उपयोग का अवसर बहुत कम मिलता है, जो उनके स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है; और मकान बनाने का जो मुख्य उद्देश्य शरीर को सुख सुविधा पहुँचाना है, वह वर्तमान अवस्था मे यथेष्ट रूप से पूरा नहीं हो रहा है

मकानों की रचना और स्वास्थ्य—आधुनिक सभ्यता में मकानो की रचना मे भी मनुष्य के स्वास्थ्य का पूरा ध्यान नहीं रखा जाता यह ठीक है कि आज कल नये ढग के मकानो मे रोशनी और हवा की व्यवस्था करने का प्रयत्न किया जाता है, पर खासकर शहरी जीवन और केन्द्रित उत्पादन की दशा में यथेष्ट व्यवस्था हो नहीं पा रही है इस के अतिरिक्त अब मकान ऐसे बनाने की ओर विशेप ध्यान दिया जाता है, जो मजबूत, पक्के और आलीशान हो फर्श, दीवारो तथा छत मे पत्थर, चूना, पक्की ईटे और सीमेंट का व्यवहार अधिक होता है, जिससे बारबार उसकी मरम्मत करने का प्रसंग न आवे, तथा सफाई आसानी से हो सके, उसके लिए विशेष परिश्रम न करना पड़े. प्राचीन काल मे, खासकर भारत में अधिकतर मकान कच्ची ईटो के होते थे, और फर्श मिट्टी का होता था, जो प्राय. प्रति सप्ताह तथा अन्य विविध अवसरो पर गोबर से लीपा जाता था. ऐसे मकान की सार-सभार मे मनुष्य को श्रम अवश्य ही अधिक करना होता था, पर इससे उसे लाभ भी बहुत होता था मिट्टी का स्पर्श मनुष्य के लिए कितना गुणकारी है, यह पहले बताया जा चुका है, और गोबर मे दीमक तथा विविध रोगो के कीटाणुओ को नष्ट करने की अद्भुत शक्ति है, यह अब भली भांति सिद्ध हो चुका है 'सभ्य' मनुष्य को गोबर और मिट्टी वाले मकान पसन्द नही, इनका

उपयोग करना वह अपनी शान के खिलाफ समझता है, और जब उसे रोग के कीटाणु सताते हैं तो उन्हे नष्ट करने के लिए तरह-तरह की औषधियो का सेवन करता है, या उन्हे मकान में छिड़कता है. ये औषधियाँ जहां एक शिकायत को दूर करती है, प्रकारान्तर से दूसरी व्याधि खडी करती है, जिसे दूर करने के लिए दूसरी औषधियो की जरूरत पडती है वह दुश्चक्र चलता रहता है हमारी ज़रूरते बढती रहती है, और वे पूरी नहीं होतीं तो हमें असन्तोष और वेदना होती है यह जानते हुए भी हम उसका सरल उपाय नही करते—सादगी और परिश्रम का जीवन नहीं बिताते मकानो की रचना में यह दृष्टिकोण ध्यान मे रखा जाना आवश्यक है.

———

नवां अध्याय

शिक्षा

दर-असल कालिज की अपेक्षा बुनियादी वर्गों के लिए अधिक काबलियत के आदमी की जरूरत होती है. बच्चो के दिमाग शून्य से होते हैं. शून्य से ब्रह्म निर्माण करने के लिए अधिक-से-अधिक योग्य पुरुष चाहिए

—विनोबा

बुनियादी शिक्षण-पद्धति मे गरीबो की सर्वांगीण उन्नति के लिए आतुरता भरी हुई है. इसके अन्दर जीवन-विकास की दृष्टि है. इसमे हाथ पाव और मस्तिष्क — तीनों के विकास की सामग्री और उपाय है

—काका कालेलकर

पिछले अध्यायो मे मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकतओ— भोजन वस्त्र और मकानो के विषय मे लिखा गया है. इनके अतिरिक्त हमारी अन्य प्रमुख आवश्यकताए शिक्षा, स्वास्थ्य और मनोरजन है. यहां शिक्षा के बारे मे विचार किया जाता है.

प्राथमिक शिक्षा को यथेष्ट महत्व दिया जाना चाहिए— मानव-जीवन में शिक्षा की उपयोगिता या महत्व सब जानते हैं; फिर भी शिक्षा-प्रणाली कैसी हो, यह विषय बहुत मत-भेद का ही पुस्तकें लिखी गयी हैं, पर समस्या अच्छी तरह हल नहीं हुई यह साफ जाहिर है कि शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य को केवल अधिक-से अधिक धन पैदा करने

वाला यंत्र वनाना नहीं है. शिक्षा-पद्धति ऐसी होनी चाहिए कि व्यक्ति स्वस्थ, स्वावलम्बी, सुसंस्कृत और समाज के प्रति अपनी जिम्मेवरी पूरा करने वाला वने यह बात तभी अच्छी तरह हो सकती है, जब बालक बालिकाओ को प्रारम्भ से ही उचित शिक्षा मिले. परन्तु आजकल भारत मे तथा और भी कई देशों में प्राथमिक शिक्षा को कुछ महत्व नहीं दिया जाता. बड़ी उम्र के तथा ऊची कक्षाओ के विद्यार्थियो को पढाने के लिए योग्य से योग्य व्यक्तियो की खोज की जाती है, उनके लिए खूब खर्च किया जाता है और विविध प्रकार के सामान जुटाये जाते हैं. परन्तु प्राथमिक शिक्षा पाने वाले बालको के लिए मामूली व्यक्तियो को शिक्षक नियुक्त कर दिया जाता है, जिन्हे कुछ विषयो का ज्ञान भले ही हो, बालको सम्बन्धी ज्ञान नहीं होता; जो बालको के स्वभाव, विचार, उनके मन पर होने वाली क्रियाओ-प्रतिक्रियाओ आदि से विल्कुल परिचित नहीं होते. ये अध्यापक बालको के दिमाग में कुछ बाते जैसे तैसे ठूसने का प्रयत्न करते हैं; इनमे बालकों को भावी जीवन के लिए तैयार करने की योग्यता नहीं होती. अस्तु, आवश्यकता है कि प्राथमिक शिक्षा को उसकी उपयोगिता के अनुसार यथेष्ट महत्व दिया जाय

बुनियादी शिक्षा; खेती या स्थानीय धंधे का आधार— लोकहित की दृष्टि से बुनियादी शिक्षा-पद्धति सब से उत्तम है. इसकी मुख्य बातें ये है—छः सात साल के सब बालकों के लिए, उनकी मातृभाषा में सात साल तक मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का प्रबन्ध हो. शिक्षा का आधार या केन्द्र किसी प्रकार की दस्तकारी हो, या खेती हो, और सब विषय (भाषा, गणित, भूगोल, इतिहास और आलेख्य आदि) उस दस्तकारी के सहारे सिखाये जायं. दस्तकारी का चुनाव स्थानीय परिस्थिति को ध्यान में रख कर किया जाय. जहा सम्भव और व्यवहारिक हो, कताई-बुनाई

को प्राथमिकता दी जाय. प्रत्येक बुनियादी शाला अपने खर्च का अधिक से अधिक अंश अपने छात्रों और अध्यापकों के उद्योग से प्राप्त करने का प्रयत्न करे.* इसमें मुख्य हेतु यह है कि छात्रों में शरीर-श्रम के सम्बन्ध में तथा निर्माण-कार्य के प्रति रुचि उत्पन्न हो, और वे पीछे इस श्रम का यथेष्ट सम्मान करने वाले हों, उसे बौद्धिक कार्य से नीचे दर्जे का माननेवाले न हों; वे स्वावलम्बी बनें, और देश से बेकारी दूर हो कहना नहीं होगा कि खासकर निर्धन देशों में, सर्वसाधारण को ऐसी ही शिक्षा आसानी से दी जा सकती है, और इसी से जनता का कल्याण हो सकता है.

उच्च शिक्षा—माध्यमिक और उच्च शिक्षा में भी ऊपर कही बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए. प्रत्येक विद्यार्थी और अध्यापक अपनी आजीविका-प्राप्ति में स्वावलम्बी हो तथा दूसरों को स्वावलम्बी बनाने में सहायक हो. विज्ञान की शिक्षा दी जाय, और युवकों की आविष्कार-बुद्धि विकसित की जाय; पर उनके मन में यह बात जम जानी चाहिए कि हमारा ज्ञान हमारे स्वार्थ-साधन के लिए नहीं लोक-कल्याण के लिए है.

गांधीजी के अनुसार उच्च (विश्वविद्यालयों की) शिक्षा को भी उत्पादक दस्तकारियों पर आधारित होना चाहिए. इस शिक्षा का दायित्व सरकार पर नहीं, गैर-सरकारी संस्थाओं और व्यक्तियों पर होना चाहिए. इंजिनयरिंग, व्यावसायिक, और व्यापारिक विद्यालयों का भार व्यापारिक और औद्योगिक

* गांधीजी का मत था कि बुनियादी शिक्षा के सात वर्षों का औसत लेकर शिक्षा की आय और व्यय बराबर होना चाहिए. हाँ, विद्यार्थियों द्वारा बनायी हुई चीजों को निश्चित दामों पर सरकार खरीदे

संस्थाओं को उठाना चाहिए कृषि, विज्ञान, चिकित्सा और साहित्य तथा सामाजिक विज्ञानों के लिए विद्यालयों का या तो स्वावलम्बी होना चाहिए या दान पर आधारित होना चाहिए राज्य के विश्वविद्यालय केवल परीक्षाओं का प्रबन्ध करें और परीक्षाओं की फीस द्वारा स्वावलम्बी रहे

इस समय भारत में उच्च शिक्षा देने वाली संस्थाओं से जनता का प्राय. कुछ भी हित नहीं हो रहा है, और वे सर्व-साधारण से प्राप्त टेक्सों आदि की आय पर एक भार बनी हुई है यह अनुचित है इसमें आमूल परिवर्तन करने की जरूरत है. उदाहरण के लिए जो. का कुमारप्पा ने कहा है—

'आज हमें यह भावना पैदा करनी चाहिए कि हमारे खेती-कालिजों की जिम्मेदारी है कि जमीन पर कहत न पड़ने दें. अगर वे ऐसा नहीं करते तो इन कालिजों को पालने में कोई तुक नहीं है अब तक इन कालिजों में जुदा-जुदा जाति की ईखें उगायी गयी हैं ताकि मिलों को हर महिने ईख मिलते रहें और मशीनें लगातार चलती रहें अमरीकी रुई और देशी रुई के मेल से उन्होंने नयी रुई बनाई है, लेकिन गांव वालों की असली जरूरत की परवाह जरा भी नहीं की जाती. ×

कुछ मुख्य बातें—इस प्रकार शिक्षा-पद्धति की कुछ मुख्य बातें ये होनी चाहिए—

(१) विद्यार्थी शारीरिक श्रम करने वाले, और उसकी इज्जत करने वाले हों

(२) वे शिक्षा पाकर अपने ग्रामीण भाइयों से सम्पर्क रखने वाले हों, एक अलग दुनिया में विचरण करने वाले न हों.

× 'गांधी अर्थ विचार' से

(३) वे स्त्री जाति के सुख-सुविधाओं और उन्नति का प्रयत्न करने वाले हो

(४) वे अपने जीवन का उद्देश्य स्वार्थ-साधन न मानें, और लोक-कल्याण मे भाग लेने वाले हो.

(५) वे अपने निकटवर्ती समाज की सेवा तो करे ही, पर देश या राज्य के हित का ध्यान रखे, यही नहीं, उनकी नागरिकता की भावना किसी सकीर्ण क्षेत्र तक परिमित न होकर विश्वबधुत्व वाली हो

विद्यार्थी और श्रम-प्रतिष्ठा—ऊपर कहा गया है कि विद्यार्थी श्रम करनेवाले और उसकी इज्जत करने वाले हो इस समय इस पर बहुत ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है, कारण, आधुनिक शिक्षा पद्धति मे इसकी बहुत ही अवहेलना की जाती है, और परिणाम-स्वरूप पढ़े-लिखो का अपनी आजीविका के लिए इधर-उधर मारे-मारे फिरना, बेकारी बढना, देश मे उत्पादन कम होना, तथा शिक्षितो की, किसानो और मजदूरो से अलग ही दुनिया बनाना आदि बाते हमारे सामने हैं इस ओर नेताओ का ध्यान जा रहा है दिसम्बर १९५१ में भारत के प्रधान मत्री श्री-नेहरू ने कहा था कि

'मैं सभी विश्वविद्यालयो और कालिजो से सिफारिश करूगा कि छात्र-छात्राओं को तब तक कोई उपाधि-पत्र न दिया जाय, जब तक वे फावडा न चलाये, खेत न जोतें अथवा हाथ मे हल न ले इसके लिए छः महीने अथवा एक वर्ष की अवधि निश्चित की जा सकती है'

परन्तु विचारणीय बात यह है कि वर्तमान दूषित शिक्षा-पद्धति के होते हुए विद्यार्थियो को केवल प्रमाण पत्र के वास्ते कुछ समय शरीर श्रम करने के लिए बाध्य करने से ही

यथेष्ट परिणाम होनेवाला नहीं. उसके लिए तो शिक्षा-पद्धति को ही बदलना, और उसे पूर्वोक्त स्वरूप देना होगा.

शिक्षा का लक्ष्य; वर्गहीन समाज का निर्माण—हमें अपनी शिक्षा-पद्धति से विरोधी वर्गों की—शोषक और शोषित की, बुद्धिजीवी और श्रमजीवी की, हजूर और मजूर की—कल्पना समाप्त करनी है.

'भारत में ऐसी शिक्षा की नींव खेती और वस्त्र-उद्योग के आधार पर ही हो सकती है, क्योंकि राष्ट्र के ९० प्रतिशत लोग इन्हीं उद्योगों के द्वारा आजीविका प्राप्त करते हैं औसत नागरिक के लिए गणित, इतिहास; भूगोल, विज्ञान आदि का शिक्षण इन्हीं मूल उद्योगो के आधार पर हो सकेगा इस प्रकार,शिक्षा की क्रान्ति का जो रूप हमारे सामने स्पष्ट होता है, वह यह है कि हमारे विद्यालय भविष्य में खेतो और उद्योग-गृहो मे होगे, उनके लिए कीमती शहरी महलो की जरूरत नहीं है हमारे शिक्षित बालक गौरवशील किसान और औद्योगिक सब से प्रथम होगे, वे शरीर मे बलिष्ट और परिश्रमी होगे और साथ में बौद्धिक ज्ञान से भी युक्त. वे सहयोगी समाज के आदर्श को मानेगे और दूसरे को धक्का दे कर जीने को बुद्धिमानी नहीं समझेगे हमारे शिक्षक स्वयं खेतीहर और औद्योगिक होंगे.' ['लोकवाणी' से]

प्रौढ-शिक्षा—प्रौढ-शिक्षा का अर्थ यही नही है कि बड़ी उम्र के बालको को, जो नियमित रूप से स्कूलो मे नहीं पढ़ सके है, अक्षर-ज्ञान करा दिया जाय. इस शिक्षा का मुख्य कार्य व्यवहार-ज्ञान या नागरिकता की शिक्षा होना चाहिए. अक्षर-ज्ञान इसमें सहायक हो सकता है यह शिक्षा कम पढ़े लिखे तथा

ज्यादा पढ़े-लिखे सभी प्रकार के लोगो को दी जा सकती है. अपना रोजगार-धंधा शुरू करने के बाद भी आदमी अपनी शिक्षा जारी रखे, यही प्रौढ शिक्षा है. यह कार्य सरकार के भरोसे छोड़ देना ठीक नहीं है जिन लोगो को विशेप शिक्षा प्राप्त करने का सुअवसर मिला है उनका कर्त्तव्य है, कि वे अपने पास-पड़ोस के उन भाई बहनो को शिक्षा दे, जो इससे वचित रह गये हैं उन्हे प्रौढो को पढ़ाने की जिम्मेवारी अपने ऊपर ले लेनी चाहिए, और उस समय की प्रतीक्षा न करनी चाहिए जब सरकार कानून द्वारा उन्हे यह कार्य-भार लेने के लिए वाध्य करे. गाधीजी के शब्दो मे :—

प्रौढ-शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो स्त्री-पुरुषो को हर तरह वेहतर नागरिक बनाए कितावे होगी, पर वे विद्याथा के वजाय शिक्षकों के काम की अधिक होगी. हमे वहुमत को यह सिखाना होगा कि वे अल्पमत वालो के साथ कैसा बर्ताव करें, और यही अल्पमत वालो को भी सिखाना होगा ठीक ढ ग की प्रौढ-शिक्षा लोगो को पडोसियो का भाई चारा सिखाएगी और इस तरह अस्पृश्यता और साम्प्रदायिक समस्या की जड पर ही कुठाराघात करेगी. . हमे गाव वालो को सहकारिता की भी शिक्षा देनी है'

विशेष वक्तव्य—सक्षेप मे यह कहना है कि हरेक बालक और प्रौढ को, पुरुष और स्त्री को ऐसी शिक्षा मिलनी चाहिए कि वह स्वय सात्विक और स्थायी सुख प्राप्त करे और समाज के भी ऐसे ही सुख को बढ़ाने मे सहायक हो आज कल शिक्षा भी एक फैशन हो चला है; बिना शिक्षा पाये बालको को नीचे दर्जे का माना जाता है, इस लिए हम अपने बालको को विश्व-विद्यालयो और विद्यापीठो की डिग्री-डिप्लोमा दिलाने का प्रयत्न करते हैं होना यह चाहिए कि एक खास लक्ष्य रख कर हम उन्हे जीवन की शिक्षा दिलाये

दसवाँ अध्याय

स्वास्थ्य और मनोरंजन

जिस चीज का मनुष्य पुतला है, उसी से इलाज ढूँढे. पुतला पृथ्वी, पानी, आकाश, तेज और वायु का बना है इन पाँच तत्वों से जो मिल सके सो ले शुद्ध शरीर पैदा करने का प्रयत्न सब करें और उसी प्रयत्न में कुदरती इलाज अपने आप मर्यादित हो जाता है दुनिया के असंख्य लोग दूसरा कर भी नहीं सकते और जिसे असंख्य नहीं कर सकते, उसे थोड़े क्यों करें

—गांधीजी

स्वास्थ्य

संसार के सभी देशों में स्वास्थ्य सम्बन्धी बहुत से सुधार करने की गुंजायश है गरीब और अशिक्षित देशों में तो जनता का स्वास्थ्य बहुत ही चिन्तनीय दशा में है. आदमी की आदर्श आयु सौ वर्ष की मानी गयी है. कुछ देशों में औसत उम्र साठ वर्ष है, तो भारत में सिर्फ तेइस वर्ष ही है

लोगों का अल्पायु होना समाज के लिए हानिकर— लोगों की उम्र कम होने से समाज की कितनी हानि होती है, यह सहज ही पूरी तरह ध्यान में नहीं आता कल्पना करो कि एक आदमी की उम्र तीस वर्ष की है उसकी उम्र के पच्चीस वर्ष तो शिक्षा और काम सीखने आदि के निकाल दिये जायँ तो समाज के उपयोग में उसके जीवन के केवल पाँच वर्ष ही आये अब अगर इस आदमी का जीवन दस वर्ष और बढ़ जाय तो

यह समाज को पन्द्रह वर्ष के कार्य और अनुभव का लाभ दे सके. इसका अर्थ यह हुआ कि चालीस वर्ष का आदमी तीस वर्ष वाले की अपेक्षा तिगुना उपयोगी हो जाता है. इसी प्रकार आगे विचार किया जा सकता है. निदान, प्रत्येक राष्ट्र को दीर्घजीवी और स्वस्थ व्यक्तियों की आवश्यकता है.

निरोग रहने के उपाय; सादा रहन सहन, व्यायाम और खेल—यहां स्वास्थ्य-रक्षा के उपायों में विस्तार से लिखने का स्थान नहीं है, खास ध्यान इस बात की ओर दिलाना है कि मनुष्य की शरीर-रचना इस प्रकार की है कि यदि आदमी स्वाभाविक जीवन व्यतीत करे, और प्राकृतिक साधनों का उचित उपयोग करता रहे तो बीमार पड़ने का प्रसंग बहुत कम आवे पर मनुष्य ने अपना रहनसहन बहुत कृत्रिम बना लिया है, वह अपने भोजन वस्त्र और मकान में शरीर के हित का विचार न करके सामाजिक दिखावे या आडम्बर, शौकीनी और विलासिता पर जोर देता है यदि वह प्रकृति के निकट रहे, खान-पान और रहनसहन सादा रखे तो वह बारबार बीमार न पड़े, प्रायः स्वस्थ ही रहे. इस विषय की मुख्य बातें पहले बतायी जा चुकी हैं यहाँ व्यायाम और खेलों के बारे में ही कुछ विचार करना है

स्वास्थ्य-रक्षा के लिए ये आवश्यक और उपयोगी हैं. आदमी चाहे तो ये बिना कुछ द्रव्य खर्च किये ही हो सकते हैं. भारत में पहले दंड बैठक और कुश्ती आदि का प्रचार था, अब तो कितने ही आदमी अंगरेजों की देखादेखी व्यायाम के लिए सेंडो के डम्बल तथा अन्य उपकरणों का उपयोग करते हैं, जो काफी कीमती होते हैं इसी प्रकार यहा कबड्डी और गेन्द-बल्ले आदि का चलन कम हो गया है, और पढ़े-लिखे या शौकीन आदमी क्रिकेट,

फुटबाल, टेनिस आदि ऐसे खेल खेलते हैं, जिन में खर्च बहुत होता है, और जिनका विशेष लाभ इने-गिने आदमियों को ही मिलता है इस विषय में दृष्टिकोण बदलने की बहुत ज़रूरत है हमें ऐसे खेलों में भाग लेना चाहिए, जिनमें खर्च बहुत कम हो; इससे भी अच्छा यह है कि खेती और ग्रामोद्योग के काम करें, जिनसे उत्पादन में सहायता मिले और देश का हित हो. लोकोपयोगी कार्य करने में आनन्द मिलता ही है निदान, हमें शौकीनी के आमोद-प्रमोद से बच कर उत्पादक तथा स्वास्थ्य बढ़ानेवाले व्यायाम और खेलों में भाग लेना चाहिए.

रोग निवारण; औषधियों का सेवन—अधिकांश आदमी चाहे वे जाने या न जाने, किसी न किसी रोग से ग्रस्त हैं. डाक्टर और वैद्यों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है, और ज्यो-ज्यो वह बढ़ रही हैं, त्यो-त्यो नये-नये रोगों की, और रोगियो की भी वृद्धि हो रही है कितने ही आदमी प्रतिदिन भोजन की ही तरह औषधि का सेवन अनिवार्य मानते हैं, और भोजन के बाद कोई चूर्ण, चटनी या लेमनेड आदि ऐसा पदार्थ लेते हैं, जिससे खाना हजम होने में मदद मिले. अन्य आदमी समय-समय पर विविध रोगो से विशेष रूप से ग्रस्त हो जाने पर तरह-तरह की—सैकडो प्रकार की—दवाइयाँ लेते हैं औषधियो में जडी बुटी या वनस्पति आदि के अतिरिक्त अनेक प्रकार के खनिज या सामुद्रिक पदार्थ लोहा, चादी, सोना, हीरा, पारा गंधक, अभ्रक, मूगा मोती, शख आदि न-जाने क्या-क्या होता है; अफीम, शराब, संखिया आदि का भी उपयोग होता है, अनेक जानवरो का रक्त, चर्बी मास आदि भी विविध रूपो में दिया जाता है. औषधियो के विषय में नित्य नये अविष्कार हो रहे हैं, कौन जानता है, जो चीजें अब तक औषधियो के रूप में काम में नहीं आने लगी है. उनमें से भी कौनसी कब, किसी न किसी

रूप में औषधि बन जाय आदमी को अपने इस निरतर बढते हुए ज्ञान का गर्व है परन्तु, अफसोस! वह भूलता है, अधिकाश औषधिया हानिकारक हैं, वे एक रोग को दबाती है, तो थोडे-बहुत समय में उसी रोग को या किसी नये रोग को आमत्रित करने वाली होती है. वास्तविक रोग-निवारण के लिए हमे खासकर प्राकृतिक चिकित्सा अपनानी चाहिए.

प्राकृतिक चिकित्सा की विशेषता—अन्यत्र बताया गया है कि सर्वोदय की दृष्टि से हमारे उद्योग-धधो तथा रहनसहन मे केन्द्रीकरण की भावना न होकर विकेन्द्रीकरण की होनी चाहिए. प्राकृतिक चिकित्सा समाज को विकेन्द्रीकरण की ओर ही ले जाती है. इसके द्वारा आदमी अपने गाव और घर मे ही रहते हुए स्वास्थ्य लाभ कर सकता है; कारण, इसके लिए जिस धूप, पानी, हवा, और मिट्टी की ज़रूरत होती है, ये खासकर गाव मे सुलभ है. इसके विपरीत, शहरो मे बस्ती बहुत घनी और केन्द्रित हो जाने से मकानो मे धूप बहुत कम आती है, हवा खराब रहती है, और खुली तथा ताजी हवा दुर्लभ होती है, पानी भी नलो का होने से वैसा अच्छा नही रहता, जैसा कुओ से मिलने वाला होता है इस प्रकार शहरी वातावरण मे प्राकृतिक चिकित्सा के साधनो का अभाव होता है वहा आदमी ऐलोपथी पद्धति की ओर झुकता है, जिसमे बहुत खर्च है, और बहुत सा रुपया विदेशो को भेजना होता है, तो भी शरीर में विजातीय पदार्थों का प्रवेश होने से लाभ क्षणिक ही होता है, और अनेक दशाओ मे वह भी नही होता

निस्सदेह यह विचारणीय है कि बड़े-बडे औषधालय या अस्पताल, जिनसे से एक-एक के लिए हजारो और लाखो रुपये की औषधियो और यत्रो की आवश्यकता होती है, आखिर देश मे कितने बनाये और चलाये जा सकते है. लाखो बस्तियो मे

बिखरी हुई जनता के वास्ते वे कभी भी काफी नहीं हो सकते वे साधारण स्थिति के आदमियों की पहुँच से बाहर ही रहने वाले हैं इस प्रकार जनता की चिकित्सा की समस्या प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति से ही हल हो सकती है

ग्रामीण वातावरण की आवश्यकता—ऊपर बताया गया है, कि मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए आवश्यक प्राकृतिक तत्व ग्रामो मे ही अच्छी तरह मिल सकते हैं इस प्रकार हमारे लिए ग्रामीण वातावरण बहुत उपयोगी है, आधुनिक सभ्यता मे इसका निरतर ह्रास होता जा रहा है उत्पत्ति का केन्द्रीकरण करने वाले कल-कारखानो ने जनता का जीवन और रहनसहन अस्वाभाविक बना दिया है, सम्पत्ति और सुख के साधन मुट्ठी भर धनी लोगो को ही प्राप्त होते हैं, उनमे से भी बहुत से अपनी विला-सिता के कारण विविध रोगो के शिकार बने रहते हैं. आव-श्यकता है कि अधिक से अधिक उत्पादन स्वतत्र ग्रामोद्योग पद्धति से हो, जिससे जनता प्राकृतिक जीवन बितानेवाली और सादे रहनसहन वाली हो.

संयम—स्वास्थ्य के लिए उपयुक्त बातो की अपेक्षा मानसिक सयम का कुछ कम महत्व नहीं मनुष्य में अन्य प्राणियों की अपेक्षा बुद्धि या विचार-शक्ति की विशेषता है. इसके कारण जहा वह पशुओ से बहुत ऊचा उठ सकता है, वह उनसे बहुत नीचे भी गिर सकता है. दुर्भाग्य से स्त्री-पुरुष सम्बन्ध में मनुष्य कुछ दशाओ में पशुओं से भी गया-बीता है. वह केवल सन्तान-प्राप्ति के लिए ही सम्भोग नही करता, वरन् कामुकता या वासना का शिकार होकर अनुचित समय पर तथा आव-श्यकता से कहीं अधिक सम्भोग करता है ऐसा व्यक्ति, स्वास्थ्य सम्बन्धी अन्य नियमो का चाहे जितना पालन करे, स्वस्थ नहीं रह सकता. उसकी कार्यकुशलता का ह्रास होकर ही रहेगा, इसके

अतिरिक्त वह रोगी और कमज़ोर सन्तान की सृष्टि कर समाज के लिए सकट उपस्थित करता है. इस प्रकार यह स्पष्ट है कि स्वास्थ्य के लिए मनुष्य को सयम पर भी यथेष्ट ध्यान देना चाहिए; घर का तथा समाज का वातावरण इसके अनुकूल होना चाहिए.

मनोरंजन

मानव जीवन मे मनोरजन का भी महत्वपूर्ण स्थान माना जाता है. सभी आदमी मनोरजन चाहते है, और उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करते है. कुछ मनोरजन आदमी के लिए हितकर होते हैं और कुछ हितकर नहीं होते और कुछ तो हानिकर ही होते है. इस विषय मे कुछ विशेष विचार आगे किया जायगा.

काम में ही मनोरंजन—आजकल कितने ही आदमी सिर्फ बौद्धिक कार्य करते हैं, शरीर-श्रम नहीं करते, और अनेक शरीर-श्रमियो मे बौद्धिक कार्य करने के लिए योग्यता या सुविधा नहीं है दोनो ही तरह के आदमियो को अपने रोजमर्रा के काम मे कुछ मनोरजन नहीं होता. फिर, वर्तमान पूंजीवादी व्यवस्था और यत्रोद्योग पद्धति मे आदमी का काम नीरस और थकाने वाला होता है, उसमे उसकी, कुछ द्रव्य मिलने के अतिरिक्त, कोई दिलचस्पी नहीं होती; होना यह चाहिए कि काम मे ही आदमी को रस हो. आनन्द को काम से बाहर ढूढने की ज़रूरत न रहे. छः-सात घटे काम और एक घटा सिनेमा या जुएघर आदि का या नशे की अवस्था में प्रतीत होने वाला मनोरजन—यह विभाजन अस्वाभाविक और पतनकारी है. निस्संदेह धन्य हैं, वे व्यक्ति जो मनोरजन की खोज अपने काम से बाहर नहीं करते, उसे अपने नित्य के कार्य मे पाते रहते हैं. जब एक प्रकार के कार्य से जी उकतावे तो आदमी दूसरे प्रकार

का कार्य हाथ मे ले सकता है, इससे उसे बहुत राहत मिलेगी हां, यह बात तभी अमल में आ सकती है, जब आदमी स्वतंत्र रूप से खासकर खेती या ग्रामोद्योग का कार्य करता है, किसी की अधीनता में या यन्त्रोद्योगो का नहीं.

कुछ हितकर मनोरंजन—कुछ दशाओ में आदमी को अपने कामधधे से बाहर के मनोरजन की भी आवश्यकता हो सकती है. इसलिए यहां उसका उल्लेख किया जाता है. अच्छे समाचार पत्र और पुस्तको के अवलोकन से मनोरजन के साथ हमे ज्ञान-वृद्धि और चरित्र-निर्माण में भी सहायता मिल सकती है. कभी-कभी अपने गांव या नगर से बाहर दूसरे स्थानो मे जाकर प्राकृतिक तथा ऐतिहासिक दृश्य देखे जा सकते हैं. इसी प्रकार चित्रकारी, बागबानी, तैरना, खेलना-कूदना आदि भी मनोरजन के अच्छे साधन हैं हम समय-समय पर अपने मोहल्ले की गलियो आदि की सफाई मे भाग ले सकते हैं, अथवा अपने यहा के बालको को साफ-सुथरा रखने मे सहायता कर सकते हैं. कुछ आदमी मनोरजन के लिए ताश चौसर या शतरज आदि खेलते हैं ये खेल साधारणतया निर्दोप होते हैं, पर हम स्मरण रखें कि ये एक सीमा तक ही उपयोगी है. इनमें हमारा बहुत अधिक समय न जाय जब आदमी समय की मर्यादा न रख कर कई-कई घटे इनमे लगे रहते हैं तो इनका वास्तविक उद्देश्य ही नष्ट हो जाता है.

हानिकारक मनोरजन—आज कल सिनेमा, नाटक, नाचघर क्लब आदि मे सभ्य कहे जाने वाले लोगों के समय, द्रव्य और शक्ति का कितना दुरुपयोग होता है! शहरो में रेडियो का प्रचार बढ़ रहा है, पर इसका भी सदुपयोग कम ही होता है! इसमें सन्देह नहीं कि सिनेमा और नाटक, मनोरजन के अतिरिक्त, शिक्षा के भी अच्छे साधन हो सकते हैं. पर आज कल अधिकांश

सिनेमाओं से लोगो के शील और सदाचार को आघात पहुँचता है. उनके फिल्मो या चित्रपटो के चुम्बन, आलिंगन आदि दृश्यों से प्रायः युवको और युवतियो के हृदयो पर अनिष्टकारी प्रभाव पड़ता है और दुराचार या व्यभिचार को प्रोत्साहन मिलता है. कितने ही चित्रपटो मे चोरी, डकैती, नारीहरण या शिशुहरण आदि दृश्य ऐसी शैली से दिखाये जाते हैं कि दर्शको मे छल, कपट, दुस्साहस, चचलता और उत्तेजना आदि का भाव उत्पन्न होता और बढ़ता है और वे इन अपराधो को करने के लिए नये आधुनिक उपाय काम मे लाने के लिए प्रेरित होते हैं

ऊपर ताश, चौसर और शतरज को साधारणतया निर्दोष मनोरजन बताया गया है पर कितने ही आदमी इन खेलो के साथ जुए को भी जोड देते है जो लोग जुए के इरादे से इन्हें खेलते है, वे अपने द्रव्य को बरबाद करने के साथ जीवन को कष्टमय बना लेते है. जो व्यक्ति हारता है, उसकी तो हानि प्रत्यक्ष और तत्काल होती है; जो जीतता है, वह धन को बिना परिश्रम, मुफ्त मे पाजाने के कारण उसका ठीक उपयोग नहीं करता. हारने वाले जीतने की आशा मे, तथा जीतने वाले और अधिक धन प्राप्त करने की आशा से अधिकाधिक जुआ खेला करते है. इससे अनेक परिवारो का दिवाला निकलने, तथा जेवर और घर आदि बिकने की नौबत आ जाती है यह देख-सुन कर भी जो आदमी एक बार इस व्यसन मे फस जाता है, जल्दी ही इससे मुक्त नहीं होता. खेद है कि भारत मे इसे कुछ धार्मिक रूप दे दिया गया है आवश्यकता है, आदमी इस व्यसन से बिलकुल बचा रहे, तथा सरकार भी इसे रोकने के लिए प्रभावकारी उपाय काम मे लावे

कुछ लोग मनोरजन के लिए शराब का सेवन करते हैं. बात यह है कि प्रायः उनका जीवन बहुत सघर्षमय रहता है,

उसमे किसी प्रकार का आनन्द या रस नहीं होता. वे कल-कारखानो या कार्यालयो मे ऐसा श्रम करते हैं, जिस मे वे बहुत थक जाते हैं, और उनका दिल-बहलाव नहीं होता, फिर, वे दूसरे आदमियो के पास या बाजारो में तरह-तरह की विलासिता, आमोद-प्रमोद या शौकीनी की चीजो को देख कर उन्हे प्राप्त करने के इच्छुक होते हैं, पर अपने परिमित आर्थिक साधनो से उन्हे प्राप्त करने में असमर्थ होते हैं वे अपनी इस दुखमय अवस्था को--कुछ ही देर के लिए सही—भुला देने के लिए शराब का आश्रय लेते हैं इस प्रकार मदिरा-सेवन लोगो के गिरे हुए जीवन का लक्षण है. इसे बन्द तभी किया जा सकेगा, जब लोगो का जीवन-स्तर ऊचा उठे; वे स्वावलम्बी, आशा-पूर्ण, आनन्दमय जीवन व्यतीत करें, यथा-सम्भव अपने-अ पने परिवार मे, या मेल जोल वाले मित्रो के साथ उत्पादन-कार्य करें, विशाल यंत्रोद्योगो से बचे, पूजीवादी सगठन से मुक्त हो; सादगी, सेवा और संतोप को जीवन का मूल मत्र बनावें

विशेष वक्तव्य—स्मरण रहे कि यह आवश्यक नही हे कि जो अच्छा है, वही हमेशा रुचिकर भी हो, और जो रुचिकर है वह हमेशा अच्छा ही हो श्रेय और प्रेय का विवाद सनातन है हमें चाहिए कि मनोरजन के नाम पर हम ऐसे कार्यो मे भाग न लें, जिनसे हमारे मन पर बुरा प्रभाव पडे और हमारे समय, शक्ति या द्रव्य की हानि हो. जो मनोरजन निर्दोप हो, वे भी परिमित समय तक ही किये जाने चाहिएँ. हमें यथा सम्भव ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि हमे अपने रोजमर्रा के काम में ही यथेष्ट मनोरजन की अनुभूति हो, तथा हमारे मनोरजन से हमारा तथा समाज का हित हो

ग्यारहवां अध्याय

रहनसहन का दर्जा और जीवन-स्तर

जीवन का स्तर केवल आर्थिक सुविधाओं से ऊंचा नहीं होता, उसमें आदर्श की ओर चलने की प्रेरणा चाहिए मनुष्य-जीवन की सफलता इन्द्रिय-भोग की प्रचुरता मे नही किन्तु उसके नियत्रण मे है देश की सम्पत्ति बढाने के लिए हम अपनी आवश्यकताएँ बढाएँ, यह अर्थशास्त्र को उलटा समझना है. —पुरुषोत्तमदास टडन

जीवन की उन्नति ही बुनियादी चीज है, जीवन-रिद्धि (रहन सहन का ढग) नही. रिद्धि की वृद्धि तो मनुष्य के शारीरिक, बौद्धिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक आदर्श और सुप्त व प्रत्यक्ष शक्तियों को कम करके उसके जीवन की उन्नति को ठेस भी पहुँचा सकती है. —किशोरलाल मश्रूवाला

पिछले अध्यायो मे भोजन, वस्त्र और मकान आदि के बारे मे लिखा गया है इनका मानव जीवन मे बडा महत्व है. हम क्या खाते-पीते हैं, कैसे कपड़े पहनते है, कैसे स्थान में रहते हैं, इन बातों का असर हमारे जीवन पर तो होता ही है, कुछ अश में दूसरो पर भी होता है; कारण, मनुष्य सामाजिक प्राणी है, आदमी दूसरो को देख कर अपना रहनसहन का ढग निश्चित करता है, और समय-समय पर उसमें आवश्यक परिवर्तन करता है. इस लिए रहनसहन के नमूने या दर्जे ऐसे बनाये जाने चाहिए, जिनसे हमारा वास्तविक हित हो, और यदि उनके अनुसार दूसरे आदमी चलें तो उनका भी हित हो.

रहनसहन का दर्जा; पदार्थों का उपयोग—आज कल बहुत से आदमी समाज में सभ्य या धनवान गिने जाने के लिए हमेशा इस फिक्र में रहा करते हैं कि उनका रहनसहन, खानपान और वेश-भूषा बढ़िया, ऊंचे दर्जे की दिखायी दे यही कारण है कि काम में आने वाली चीजो की उपयोगिता का विचार मुख्य न होकर यह सोचा जाता है कि वे देखने में अच्छी हो, खूब बढिया, कीमती विविध प्रकार की या नये-नये ढग की हो. हमारे उपयोग के पदार्थों की संख्या बेशुमार है, तथा उत्तरोत्तर बढती जा रही है. उदाहरण के लिए खाने के वास्ते तरह-तरह के बिस्कुट, डबल रोटी, मिठाइयाँ, अचार, मुरब्बे; पहनने के लिए रूई, ऊन, रेशम, सन, पटसन आदि के भाति-भाति के कपड़े, 'बीमारियो से बचने' के लिए सैकड़ो रजिस्टर्ड पेटन्ट या अनुभूत दवाइयां, सुनने के लिए ग्रामोफोन और रेडियो; देखने के लिए सिनेमा और नाटक आदि ; सूंघने के लिए विविध सेन्ट, स्वाद या जायके के लिए लेमनज्यूस, आइस-क्रीम (मलाई का बर्फ) और चुस्की; विश्राम करने के लिए मुलायम गद्दे, तकिये और आराम-कुर्सी या कोच आदि; मनोरजन के लिए उपन्यास, नाटक, कहानियां संगीत और चित्रादि यह सब कुछ है, और इससे बहुत अधिक है फिर भी अभागे मनुष्य को संतोष या शान्ति नहीं.

पाश्चात्य देशों में लोगों का जीवन—समाज में रहन-सहन का दर्जा ऊचा दिखाने के लिए इगलैंड मे आदमी कैसा जीवन बिता रहे हैं, इस पर प्रकाश डालते हुए श्री विलफ्रेड बेलाक ने लिखा है—'जहा तक ब्रिटेन का सम्बन्ध है, रहन-सहन का दर्जा बढ़ने का मतलब अधिकाश लोगो के लिए यह है—प्रति दिन आठ घण्टे का नीरस और निरर्थक काम, जिसमें उनकी सर्जक शक्ति का कोई उपयोग नहीं होता, तथा बदले में

इतनी मजदूरी कि वे मनचाही शराब और सिगरेट खरीद सके, सिनेमा देख सकें और फुटवाल, घूसेबाजी तथा कुत्तो और घोड़ो की दौड़ को लेकर जो अनेक तमाशे और जुए होते रहते हैं, उनमे भाग ले सके स्त्रियो के लिए भी उनका यही मतलब है. वे नियम से सिनेमा देखती रहे तथा सिगरेट पीती रहे और तरह तरह के अगरागो से शरीर सजाती रहे

'साल मे आठ-नौ महीने तक प्रति शनिवार लगभग १०-२० लाख लोग लगातार ऐसे तमाशे देखते रहते है, और इनसे भी ज्यादा सख्या मे लोग इन खेलो से सम्बद्ध जुओं मे भाग लेते है इस तरह वे अपना अधिकांश समय और अपनी बहुमूल्य आय के ७० करोड़ पौण्ड उनमे प्रति वर्ष बरबाद करते हैं. तमाखू, शराब और जुए पर ब्रिटेन का वार्षिक व्यय अब दो अरब पौण्ड से भी ज्यादा है' इससे योरप अमरीका के विविध देशों की स्थिति का अनुमान किया जा सकता है.

भारत की वात—योरपीय देशो की अपेक्षा भारत वहुत निर्धन है, पर यहा भी रहनसहन का दर्जा ऊंचा करने की लहर चल रही है. शौकीनी का सामान, औषधियां, चाय, सीगरेट-बीड़ी आदि का उपयोग बढ़ता ही जा रहा है सिनेमा-घरो की उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही है, एक-एक शहर मे कई-कई सिनेमा घर हैं, तो भी वे काफी नहीं मालूम होते अनेक आदमी होठ लाल करने के लिए पान का सेवन करते हैं उससे संतुष्ट न होकर नये शौकीन खास तरह की बत्तिया ('लिप-स्टिक') इस्तेमाल करते हैं चेहरे खूबसूरत दिखायी दे, इसके लिए तरह-तरह के पाउडरो का उपयोग किया जाता है. स्त्रियां तो शृंगार के लिए प्रसिद्ध ही हैं, हमने ऐसे पुरुषों को देखा है, जिन्होने अपने नख रंगने के लिए 'नेल-पालिश' लगा रखा था

रहनसहन का दर्जा 'ऊंचा' करने की अनिष्टकारी सनक—इस प्रकार अनेक आदमी अपना रहनसहन ऐसा बनाने की कोशिश करते हैं, जो समाज में ऊंचे दर्जे का कहा जाता है वास्तव में जिसे आजकल 'ऊचा' दर्जा कहा जाता है, वह ऊचा नहीं; हॉ, वह बहुत जटिल या पेचीदा अवश्य है इसी प्रकार जो रहनसहन नीचे दर्जे का कहा जाता है, उसे सादा रहनसहन कहना चाहिए. अस्तु, जहा साधारण अल्प-मूल्य चीजो से काम चल सकता है, हम बढ़िया बहुमूल्य वस्तुओ को उपयोग करने मे अपना गौरव मानते हैं इसके उदाहरण हमारे रोजमर्रा के जीवन में पग-पग पर मिलते हैं. दाँत साफ करने लिए नीम या बबूल की दतवन बहुत उपयोगी होती है शहरो मे जहा इन्हे प्राप्त करने मे कुछ कठिनाई है, मिट्टी राख या नमक आदि से अच्छा दन्त-मजन बन सकता है, पर शौकीनी के लिए कीमती 'टूथ-ब्रुश' और 'टूथ-पेस्ट' चाहिए जो अगर ठीक तरह इस्त-माल न किये जाय तो बहुत हानिकर होते है ककर या काटो से पावो की रक्षा के लिए साधारण चप्पल या मामूली जूते काफी हैं, पर आदमी तीस-पैंतीस रुपये तक के या इससे भी बढ़िया बूट पहनना चाहते हैं, जिसके साथ जराब या मोजे भी होने चाहिए, और फिर सारी पोशाक ही उस के अनुसार कीमती हुए बिना शोभा नहीं देती जहा साधारण सूती कपडा अच्छा काम दे सकता है, रहनसहन का दर्जा ऊचा रखने के अभिलाषी बढ़िया सिल्क (रेशम) आदि का वस्त्र पहनना पसन्द करते हैं, और दो-तीन जोडी कपडो से सन्तुष्ट न हो ट्रक के ट्रक या अलमारिया भरे कपडे रखते है, इनकी धुलाई और तह कराई में खूब खर्च करते हैं. इसी प्रकार अन्य अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं

रहनसहन का दर्जा 'ऊंचा' होने के कारण—मनुष्यो के रहन-सहन का दर्जा 'ऊंचा' होने के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं:—

(१) आराम और भोग विलास की प्रवृत्ति पहले बताया जा चुका है कि मनुष्य की बहुत सी आवश्यकताएं इस लिए होती है कि उसमें आराम या सुविधा प्राप्त करने की, तथा भोग विलास की प्रवृत्ति होती है जिन वस्तुओ से इन आवश्यकताओ की पूर्ति होती प्रतीत होती है, उनका उपयोग वह आरम्भ कर देता है, और क्रमशः बढ़ाता रहता है

(२) अनुकरणप्रियता मनुष्य मे दूसरो का अनुकरण या नकल करने की आदत होती है. जब समाज मे कोई बडा या प्रतिष्ठित माना जाने वाला व्यक्ति किसी पदार्थ का उपयोग करता है, तो उसकी देखादेखी उसके पास रहने या उससे सम्पर्क मे आने वाले भी उन पदार्थों का सेवन करने लगते हैं. कुछ समय में इन पदार्थों के उपयोग का रिवाज चल पडता है इस बीच मे कुछ नये फैशन निकल आते हैं

नये-नये फैशन जैसे कुछ खास आदमियो की देखादेखी चलते हैं, ऐसे ही कुछ देशो के अनुकरण के आधार पर भी चलते है योरप में फ्रास नये-नये फैशन चलाने के लिए प्रसिद्ध रहा है भारत मे अंगरेजो के शासन के समय इगलैड का बहुत अनुकरण किया गया, यहा तक कि अंगरेजो के चले जाने पर अनेक आदमियो पर अगरेजी फैशन का भूत सवार है आजकल ससार में अमरीका के फैशनो की धूम है. वहा के वेश-भूषा आदि की अनेक स्थानो मे नकल की जाती है

(३) शहरी जीवन और उद्योगीकरण फैशन अधिकतर समुदायबद्ध, शहरी, और घनी आबादी वाली बस्तियो मे

चलते हैं. केन्द्रित उत्पादन या यंत्रोद्योगो की विपुलता में बस्तियो का ऐसा होना अनिवार्य है इस प्रकार नये नये फैशन खासकर पिछले डेढ़ सौ साल में बहुत बढ़े हैं

(४) व्यापारियों की स्वार्थमूलक विज्ञानबाजी आजकल उत्पादन पर जोर दिया जाता है. नफे को लक्ष्य में रख कर अधिक से अधिक माल पैदा किया जाता है, फिर इसे खपाने के लिए बाजारो की तलाश होती है. झूठी-सच्ची तरह तरह की विज्ञापन-बाजी की जाती है उससे प्रभावित होकर या धोखे में आकर आदमी अनेक बार अनावश्यक या हानिकारक वस्तुएँ भी खरीद लेते हैं.

जीवन-स्तर ऊंचा होना चाहिए—यह स्पष्ट ही है कि रहन सहन का दर्जा 'ऊंचा' करने की पूर्वोक्त बाते जीवन-स्तर को ऊचा करने वाली नहीं कही जा सकती हमें रहनसहन का दर्जा ऊचा उठाने की फिक्र न कर अपने जीवन-स्तर को ऊचा करने की ओर ध्यान देना चाहिए अधाधुन्ध आवश्यकताओ को बढाने का जीवन-स्तर से कुछ विशेष या अनिवार्य सम्बन्ध नहीं जो व्यक्ति जितने अच्छे चरित्र वाला, अच्छे स्वभाव वाला, अच्छा व्यवहार करने वाला, लोकसेवा के कार्यों में रुचि रखने वाला और अपने को समाज के लिए उत्सर्ग करने वाला है, उसका जीवन उतने ही ऊचे स्तर का कहा जायगा भोजन, वस्त्र या वेश-भूषा आदि की बाहरी टीप टाप वाला व्यक्ति उपर्युक्त मानवी गुणो से बहुत कुछ वचित हो सकता है और बहुधा होता है इसके विपरीत, एक 'अर्द्ध-नग्न' या 'अर्द्ध-सभ्य' गाधी या विनोवा का रहन-सहन सादा होने पर भी वह मानव संस्कृति का कहीं ऊचा प्रतीक होता है

इसलिए लोगो को चाहिए कि अपने रहनसहन का दर्जा 'ऊचा' करने और अधिकाधिक आवश्यकताएं बढ़ाने के लिए

चिन्तित न हो, और अपना जीवनस्तर ऊचा उठाने के प्रयत्न मे लगें. इसके लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य के जीवन निर्वाह की न्यूनतम आवश्यकताए पूरी हो. जैसे स्वच्छ भोजन वस्त्र, साफ ताजी हवा वाले मकान, बालको की-शिक्षा, स्वास्थ्य और चिकित्सा सम्बन्धी यथेष्ट व्यवस्था तो हो, ही इसके अतिरिक्त ऐसे पदार्थों का भी अधिक उपयोग हो, जिनसे मनुष्य की निपुणता बढे, वह देश तथा समाज के लिए यथेष्ट उपयोगी और सुयोग्य हो विलासिता की या कृत्रिम वस्तुओ के उपयोग से जीवन-स्तर ऊचा नहीं होता, उससे तो वह नीचा ही होता है

याद रहे कि किसी देश के कुछ थोड़े से आदमियो का जीवन-स्तर ऊंचा होने से ही, चाहे इससे दूसरे देशो मे वह कितना ही प्रसिद्ध हो जाय, वहा की जनता का जीवन-स्तर ऊचा नहीं कहा जा सकता सब आदमियो का जीवन सुखमय हो, तभी यथार्थ में देश में जीवन-स्तर का ऊचा होना माना जा सकता है.

जीवन-स्तर पर प्रभाव डालने वाली बातें—अपना जीवन-स्तर ऊचा करने के लिए हमे जानना चाहिए कि इस पर नीचे लिखी बातो का विशेष प्रभाव पड़ता है—

(१) स्वास्थ्य मनुष्यो की मूल आवश्यकताए--भोजन, वस्त्र, निवास--पूरी होने के अतिरिक्त उनका स्वास्थ्य ठीक रहने का प्रबन्ध होना चाहिए इसके लिए, दूसरी बातों के साथ लोगो की शारीरिक ही नही, मानसिक स्वच्छता या सफाई की भी बहुत जरूरत होती है अकसर आदमियो को निजी या पारिवारिक स्वच्छता की ओर ही ध्यान दिया जाता है. वह काफी नहीं है, सामूहिक अर्थात् मोहल्ले और बस्ती की सफाई की भी अवहेलना नहीं होनी चाहिए इस दिशा मे बहुत सुधार होने की आवश्यकता है

(२) इन्द्रिय-निग्रह और संयम. जो आदमी भोग-विलास, फैशन और शौकीनी में नहीं फसता, सादा जीवन और उच्च विचार का जीवन व्यतीत करता है, उसे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति में ही अपनी सारी शक्ति और समय खर्च करना नहीं पडता. इस मितव्ययिता के कारण वह अपनी योग्यता का उपयोग अपना जीवन-स्तर ऊचा करने में लगाता है फिर संयमी पुरुष के सन्तान कम होती है, इससे वह उनके भरणपोषण और शिक्षण के लिए अपेक्षाकृत अच्छी व्यवस्था कर सकता है, इससे सतान का भी जीवन-स्तर ऊचा होने का मार्ग प्रशस्त होता है.

(३) शिक्षा शिक्षा शब्द का उपयोग हम व्यापक अर्थ में कर रहे हैं, केवल अक्षर-ज्ञान के अर्थ में नहीं. अस्तु, शिक्षित व्यक्ति विचारशील और दूरदर्शी होते हैं उन्हे अपने प्रति, सन्तान के प्रति तथा समाज के प्रति पालन किये जाने वाले कर्तव्यो का ज्ञान होता है और वे अपने उत्तरदायित्व को अच्छी तरह निभाते हैं. वे अपना ही जीवन-स्तर ऊचा नहीं रखते, वरन् अपनी सतान का और समाज के अन्य व्यक्तियो का भी ऊचा करने में सहायक होते हैं.

(४) लोकसेवा की भावना जिस व्यक्ति मे लोकसेवा की भावना जितनी अधिक होगी, उसका जीवन-स्तर उतना ही ऊंचा माना जायगा इसलिए आवश्यकता है, लोगो में दूसरो की सहायता, सहानुभूति का विचार हो, वे त्याग भाव से, सादगी से रहने का अभ्यास करे, अपने सम्पर्क मे आने वाले व्यक्तियो के हित साधन का प्रयत्न करे सत्सग और अच्छे साहित्य का अवलोकन करे.

जीने की कला सीखने की जरूरत—हमे उपयोग का उद्देश्य या लक्ष्य अच्छी तरह ध्यान में रखना चाहिए. विविध

पदार्थों का उपयोग हमे जीवन के विकास की दृष्टि से करना है हमे जीवन की कला सीखनी है. हम आनन्द पूर्वक रहे, दूसरो के लिए आनन्द, प्रेम, मित्रता और सेवा तथा त्याग की भावना रखे, ये बातें उस समय तक असम्भव है, जब तक हम अधिक से अधिक कीमती चीजो का उपयोग करने की चिन्ता मे ग्रस्त है जब हम अपने जीवन-व्यवहार को कुछ सरल बनावेगे, जब हम कृत्रिम, दिखावटी या बनावटी आडम्बर से मुक्ति पावेंगे तभी हम अपनी संकीर्ण और क्षुद्र परिधि से निकल कर महत् जीवन का अनुभव कर पावेगे इस समय जीवन हमारे सामने गौण है; हम जीते है तो सुन्दर बढिया चीजे खाने के लिए, और तरह-तरह की वेश-भूषा करने के लिए, हमारा समय शारीरिक या भौतिक आवश्यकताओ की पूर्ति मे जा रहा है, और उनके पूरा न होने से हमारे मन मे क्षोभ है, झुझलाहट है. जब हम क्षणिक इन्द्रिय-सुख को लात मार कर सच्चे जीवन को प्रधानता देगे, और जीवित रहने के लिए ही विविध आवश्यकताओ की पूर्ति करेगे, तभी हमे जीवन के वास्तविक सत्य का ज्ञान होगा और हम जीवन की कला सीखने वाले होगे.

तीसरा खंड

उत्पत्ति

जिस धन को पैदा करने से जनता तबाह होती हो, वह धन निकम्मा है। आज जो लोग करोडपति है, वे बडे-बडे और अनीतिमय सग्रामो के कारण करोडपति हुए हैं। वर्तमान युग के अधिकाश युद्धो का मूल कारण धन का लोभ ही दिखायी देता है।

\+ \+ \+

आप अहिन्सा का निर्माण बडी मिलो (केन्द्रित उत्पादन) की सभ्यता पर नहीं कर सकते, किन्तु उसका निर्माण स्वावलम्बी गावो के आधार पर हो सकता है।.. .... . मेरा सुझाव है कि यदि भारत को अहिन्सक रीति से विकास करना है तो उसे बहुत बातो का विकेन्द्रीकरण करना होगा।

—गांधीजी

बारहवां अध्याय

उत्पत्ति का उद्देश्य

भारत का, और हा, ससार का अर्थ विधान ऐसा होना चाहिए कि किसी व्यक्ति को भोजन और वस्त्र के अभाव का कष्ट न हो, दूसरे शब्दों मे, प्रत्येक व्यक्ति को अपना निर्वाह करने लिए यथेष्ट कार्य पाने योग्य होना चाहिए

—गाधीजी

विविध वस्तुओ का उत्पादन इसलिए किया जाता है कि उनके द्वारा लोगो की आवश्यकताएं पूरी हो. आवश्यकताए अनेक हैं, पर वे खासकर दो तरह की होती हैं—(१) बुनियादी या आधारभूत तथा मुख्य और (२) कृत्रिम या दिखावटी तथा गौण बुनियादी जरूरतो मे प्रकृतिदत्त पदार्थों (हवा, प्रकाश, पानी, मिट्टी) के अतिरिक्त भोजन, वस्त्र, मकान, शिक्षा, स्वास्थ्यादि का समावेश है. कृत्रिम आवश्यकताओ की तो कोई सीमा ही नहीं, इनकी पूर्ति से जीवन-निर्वाह विकास नहीं होता ये मौज-शौक या ऐशोआराम के लिए होती हैं.

उत्पत्ति में बुनियादी आवश्यकताओं को प्रधानता देने की ज़रूरत—यह स्पष्ट ही है कि प्रत्येक आदमी को पहले ऐसी ही चीजें उत्पन्न करनी चाहिएं, जो बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा करने वाली हों परन्तु वर्तमान अर्थव्यवस्था में अनेक आदमी ऐसे ही पदार्थों के उत्पादन मे लगे रहते हैं, जिन्हे प्राथमिकता नहीं दी जानी चाहिए. उदाहरण के लिए जब कि

जनता के खाने के लिए अन्न की कमी है, वे अपनी भूमि मे जूट या कपास पैदा करते है, जिससे वे इन पदार्थों को बेच कर अन्न की अपेक्षा अधिक मुनाफा प्राप्त कर सके यः व्यवहार अनुचित और अमानवीय है

उत्पत्ति का उद्देश्य मुनाफा नहीं होना चाहिए—लोगो के ऐसे व्यवहार का कारण उनका क्षुद्र स्वार्थ है वे ऐसी ही वस्तु की उत्पत्ति करते है, जिससे उन्हे अधिक से अधिक नफा हो. उनका मुख्य लक्ष्य अपने मुनाफे का रहता है, उनके कार्य से समाज का, और अनेक दशाओ मे स्वय उनका भी हित होता है या नही, अथवा उनकी उत्पादन-विधि से श्रमियो के कुशल-क्षेम की वृद्धि होती है, या नही, इसकी वे परवाह नही करते; या यो कह सकते है कि उतनी ही परवाह करते हैं, जितनी कानून-भग के दोषी होने से बचने के लिए करना जरूरी हो असल मे, प्रत्येक व्यक्ति को चाहिए कि बाहरी दबाव के बिना, स्वेच्छा से ही नीति का पालन करे, और मुनाफेखोरी की भावना न रखे.

सेवा-भाव होना चाहिए—मनुष्य को अपने अन्य कार्यों की भाति उत्पादन मे भी सेवा-भाव रखना चाहिए जो व्यक्ति सेवा-भाव से उत्पादन करता है, उसे अनेक दशाओ मे तरह-तरह की असुविधाएं और कष्ट होता है, पर यह होते हुए भी, यदि वह विवेकशील है तो उसे अपने कार्य मे अद्भुत आनन्द मिलता है, जो दूसरे व्यक्तियो को कभी प्राप्त नहीं होता. बात यह है कि जितना हम दूसरो से प्रेम और सद्भावना का परिचय देते हैं, उतना ही हमारा आत्मिक विकास होता है, हमे अपने जीवन की उपयोगिता प्रतीत होती है और हम सात्विक तथा स्थायी मानसिक सुख-शान्ति का अनुभव करते हैं

उत्पत्ति के उद्देश्य के अनुसार उत्पादन-विधि—मुनाफेखोरी की भावना से उत्पादन करने वाला यह विचार नहीं करता कि जो चीज मैं बना रहा हूं, वास्तव मे आवश्यक है या नहीं, अथवा उसका कितना परिमाण उपयोगी होगा असल में उसके लिए वस्तु का बनाना मुख्य बात नहीं, उनकी नजर तो ग्राहकों की जेब पर रहती है किस प्रकार उनका पैसा उसके पास आ जाय. इस में सफलता पाने के लिए वह किसी भी कुटिल या अनैतिक उपाय काम मे लाने से परहेज नहीं करता वह उत्पादन मे घटिया से घटिया सामग्री काम मे लाता है, क्योकि वह सस्ती मिलेगी, चाहे उससे उपयोक्ता को स्वास्थ्य-हानि ही हो. वह अपने बनाये पदार्थ का रूप, रग, गध ऐसा रखता है कि ग्राहक उसकी ओर आकर्षित हो जाय उदाहरण के लिए हलवाई अपनी मिठाइयो मे आटा या मैदा बहुत खराब काम मे लाते हैं, घी की जगह वनस्पति-तेल (जिसे वनस्पति घी कहा जाता है) या दूसरी सस्ती चीज डालता है, पर उसमे रग डाल कर तथा गुलाब जल छिडक कर उसके दोषो को ढक देता है और ग्राहको को आसानी से फसा लेता है

इसके विपरीत, सेवा-भाव से उत्पादन करने वाले की विधि दूसरी ही होगी. वह मिठाई बनाने लिए अच्छा बढिया आटा तैयार करायेगा जिसमें किसी तरह की मिलावट न हो वह घी भी शुद्ध ही काम मे लायेगा, यदि उसके घर का घी नहीं है, तो बहुत विश्वास की जगह से लेगा वह मिठाई को सुन्दर बनाने के लिए उसमे किसी प्रकार का अनावश्यक पदार्थ (रग) नहीं मिलाएगा. उसकी मिठाई की लागत ज्यादा होगी, और उसे कुछ मुनाफा न होगा, उसकी मेहनत का पारिश्रमिक भी कठिनाई से मिलेगा. पर उसे इसी मे संतोष रहेगा. उसे यह अनुभव होगा कि मेरे द्वारा कुछ लोकसेवा हुई है, मेरा जीवन समाज के लिए उपयोगी है.

उत्पादन-विधि का मनुष्य पर प्रभाव—आदमी के प्रत्येक कार्य का उस पर प्रभाव पड़ता है. हम प्रायः शारीरिक प्रभाव की ही बात सोचते है, परन्तु इसके अतिरिक्त मन पर भी प्रभाव पडता है. बात यह है कि कार्य करते समय हमारी जैसी भावना होती है, जैसी विचार-धारा होती है, उसकी छाप मन पर पड़े बिना नहीं रहती. यदि हम छल-कपट या चतुराई चालाकी से दूसरो का पैसा ऐंठना चाहते हैं, अपने स्वार्थ के लिए उन्हे कष्ट देते हैं तो इससे हमारा मानसिक पतन होता है इसके विपरीत, जब हम अपने कार्य को करते हुए अपने सामने प्रेम, सेवा और त्याग की भावना रखते हैं तो हमे मानसिक शान्ति और सुख मिलता है, हमारे चरित्र और व्यक्तित्व का विकास होता है इसलिए मनुष्य के स्वय अपने हित के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने उत्पादन कार्य का उद्देश्य मुनाफेखोरी न रख कर सेवा-भाव ही रखे इससे उसका कल्याण तो होगा ही, समाज का भी हित होता है, उसके उत्थान मे सहायता मिलती है.

तेरहवां अध्याय

उत्पत्ति के साधन

जीवन की मूल आवश्यकताओं के पदार्थों की उत्पत्ति के साधन सर्व-साधारण जनता के नियन्त्रण में रहें

—गांधीजी

प्रकृति मानव को जो कुछ देती है, उसे वह श्रम के द्वारा ही अपना सकता है.

—जवाहिरलाल जैन

उत्पत्ति के साधन; भूमि, श्रम और पूंजी—आदमी भूमि पर रहता है—चाहे वह स्थल हो, या जल या वायु भूमि के बिना आदमी के रहने की व्यवस्था नहीं होती, फिर धनोत्पत्ति की तो बात ही क्या आदमी को किसी भी प्रकार की वस्तु उत्पन्न करनी हो, उसके लिए भूमि अनिवार्य है. भूमि के अतिरिक्त, उत्पत्ति का दूसरा साधन श्रम है, यदि कोई व्यक्ति श्रम या मेहनत करने वाला न होगा तो धनोत्पत्ति कौन करेगा. भूमि पर आदमी काम करता है तभी धन उत्पन्न होता है. पर क्या भूमि और श्रम ये दो ही उत्पत्ति के साधन हैं?

आरम्भ में आदमी ने धनोत्पादन का कार्य अपने शरीर के अंगों से ही, बिना किसी अन्य साधन के, किया होगा तथापि बहुत प्राचीन समय से वह किसी न किसी प्रकार के औजार आदि का उपयोग कर रहा है. पहले उसने लकड़ी की मदद ली, पीछे पत्थर या लोहे आदि के औजार बनाये और पशुओं को

पाल कर अपना सहायक बनाया ये औजार आदि मनुष्य की पूजी है. पूजी उस धन को कहते है, जो और अधिक धन पैदा करने मे सहायक हो इसका खुलासा विचार 'पूजी' नाम के अध्याय में किया जायगा

स्मरण रहे कि उत्पत्ति मे भूमि के तल के अलावा उसके भीतरी भाग (भू-गर्भ), जल-वायु, वर्षा आदि का भी प्रभाव पड़ता है, इस लिए इन्हे भी भूमि के अन्तर्गत समझा जाता है अर्थशास्त्र मे तो भूमि मे वे सब उपयोगी वस्तुए आ जाती हैं, जो मनुष्य ने न बनायी हो ; उदाहरण के तौर पर जगल, पहाड, खान, नदी, झील, तालाब और समुद्र आदि, और इनसे अपने आप बिना मेहनत मिलने वाले विविध पदार्थ—लकडी, पशु पक्षी, औषधिया, धातुए, शख, मोती, मछलिया आदि: इसी तरह कुदरती तौर पर मिलने वाली जल-शक्ति, वायु-शक्ति सूर्य का प्रकाश आदि भूमि मे ही गिने जाते है. इसलिए भूमि की जगह 'प्रकृति' शब्द का भी उपयोग किया जाता है.

श्रम और पूँजी में किसे प्रधानता दी जाय ?— वर्तमान अथशास्त्र मे श्रम की अपेक्षा पूजी को बहुत ही अधिक महत्व दिया जाता है यह कहा तक ठीक है ? किसान की पूजी बीज, हल, बैल, और खाद आदि है इनमे से पहले बीज की बात लीजिए. किसान को आरम्भ में भूमि से जो अन्न मिला या उसने अपने श्रम से, प्रकृति की सहायता से, पैदा किया, उसमे से कुछ उसने खाया और कुछ आगे के लिए बचा कर रखा. इस बचाये हुए अन्न में से कुछ का उसने बीज के लिए उपयोग किया. इस प्रकार बीज की उत्पत्ति मे मूल साधन भूमि और श्रम ही हैं. इसी प्रकार हल का विचार करे. इसकी लकड़ी या लोहा उसे भूमि से मिला है, और अपने श्रम से उसने इन चीजो का हल बनाया है. बैलों की भी यही बात है. पशु तो प्रकृति से प्राप्त हैं

ही, मनुष्य ने अपने श्रम से उन्हें अपने काम में आने लायक बनाया है खाद के बारे में भी कोई नयी बात नहीं है आदमी ने अपने श्रम से इसे प्राकृतिक भंडार में से संग्रह किया है निदान, जिन चीजो को वर्तमान अर्थशास्त्रियो ने किसान की पूंजी कहा है उनका मूल भूमि और श्रम ही हैं सभी कच्चे पदार्थों की तथा तैयार माल की उत्पत्ति के विषय में यही कहा जा सकता है

इस प्रकार पूंजी, उत्पत्ति का प्रमुख साधन नहीं उत्पत्ति का मूल भूमि और श्रम ही हैं. इसलिए पूंजी की अपेक्षा श्रम को कहीं अधिक महत्व दिया जाना चाहिए; सर्वोदय अर्थशास्त्र में ऐसा ही किया जाता है

क्या प्रबन्ध और साहस भी उत्पत्ति के साधन हैं?—वर्तमान अर्थशास्त्री भूमि, श्रम और पूंजी के अतिरिक्त प्रबन्ध और साहस को भी उत्पत्ति के साधन मानते है इन दोनो साधनो को संयुक्त नाम 'व्यवस्था' दिया जाता है इन्हें उत्पत्ति के साधन मानना कहां तक उचित है?

वर्तमान या पाश्चात्य अर्थशास्त्रियो का कथन है कि भूमि, श्रम और पूंजी से ही धनोत्पत्ति का कार्य नहीं हो सकता, जब तक कि कोई व्यक्ति इन तीनो को इकट्ठा न करे और यह निश्चय न करे कि अभीष्ट उत्पादन के लिए इन तीनो मे से प्रत्येक की कितने कितने परिमाण मे आवश्यकता है फिर, आज कल धनोत्पादन की विधि में बहुत अन्तर हो गया है एक-एक कल-कारखाने में हजारो आदमी इकट्ठे हो कर काम करते हैं. इन सब को अपने-अपने निर्धारित कार्य में लगाने के लिए एक पृथक् व्यक्ति की आवश्यकता होती है, जो इस बात का प्रबन्ध करे कि कौनसा काम (या काम का हिस्सा) कब और किस प्रकार किया जायगा,

तथा कौन-कौन आदमी कहा-कहा काम करेगे, भूमि कौनसी अच्छी है और लाखों या करोड़ो रुपये की आवश्यक पूजी कैसे, कहां-कहां से कितनी-कितनी मात्रा मे सग्रह की जायगी इन सब बातो के प्रबन्ध को उत्पत्ति का एक जुदा (चौथा) साधन मानना चाहिए इसके अतिरिक्त, वर्तमान अर्थशास्त्रियो के अनुसार, आजकल उत्पत्ति के लिए एक और व्यक्ति या व्यक्ति-समूह की आवश्यकता है, जो उसकी हानि-लाभ का जिम्मेवार हो, जो कल-कारखाने को चलाने की जोखम उठावे. ऐसे 'साहस' को धनोत्पत्ति का एक अलग (पाचवा) साधन माना जाता है

विचार कर देखा जाय तो प्रबन्ध और साहस उत्पत्ति के पृथक् और स्वतत्र साधन नहीं हैं. ये एक प्रकार से श्रम के ही रूप हैं. प्रबन्धक सब श्रमियो का निरीक्षण और नियत्रण करता है और भूमि और पूजी का प्रबन्ध करता है. आधुनिक बड़ा मात्रा की उत्पत्ति में इसका बड़ा महत्व गिना जाता है. पर यह है बौद्धिक श्रम का ही रूप.

इसी प्रकार साहसी भी बुद्धिजीवी हैं, जो हानि लभ की जोखम उठा कर बड़े पैमाने के उत्पादन का जिम्मा लेता है, और उसके चलाने की जिम्मेवरी लेता है, तथा यदि वह डूब जाय तो उसकी जोखम उठाने को तैयार रहता है. यह सब आखिर है तो बौद्धिक कार्य ही ऐसा कार्य करने वाला, प्रायः अपने लाभ को दृष्टि मे रख कर धनोत्पत्ति के साधन जुटाता है, और वतमान दशा मे लोकहित को गौण मान कर और बहुधा उसकी उपेक्षा कर दूसरो के श्रम से अपना स्वार्थ साधन करता है.

अस्तु, प्रबन्ध और साहस उत्पत्ति के पृथक् या स्वतत्र साधन नहीं, ये बौद्धिक श्रम के ही रूप है. इस के सम्बन्ध मे खुलासा विचार आगे किया जायगा

चौदहवां अध्याय

भूमि

जैसे हवा और पानी पर सब का हक है, वैसे जमीन पर सब का हक है, और जब कि कई लोगों के पास बिलकुल जमीन नहीं है उस हालत में बहुत ज्यादा जमीन अपने पास रखना गलत बात है . यह कभी नहीं हो सकता कि आम जनता को जमीन से महरूम रखा जाय और जनता इस चीज को कायम के लिए बरदाश्त करे —विनोबा

जिस तरह हवा और पानी मनुष्य की उतनी ही निजी सम्पत्ति है, जितनी वह सांस लेकर और पीकर अपना सके, उसी तरह कोई भी व्यक्ति उतनी ही जमीन अपनाने का हकदार है, जितने पर वह अपने शरीर-श्रम से पैदा कर सके. —धीरेन्द्र मजूमदार

भूमि का क्षेत्र—पिछले अध्याय मे कहा गया है, कि उत्पत्ति के तीन साधनों मे से एक भूमि है, यहा इसके सम्बन्ध मे विशेष विचार करना है. जैसा पहले बताया जा चुका है अर्थशास्त्र मे भूमि का अर्थ केवल पृथ्वी-तल या जमीन से ही नहीं लिया जाता, वरन् इसके अन्तर्गत वे सब पदार्थ तथा शक्तिया समझी जाती है, जो प्रकृति से प्राप्त होती हैं, और जिन्हे मनुष्य श्रम के द्वारा अपने लिए उपयोगी बनाता है. इस प्रकार इसमे निम्नलिखित वस्तुएँ तथा शक्तियां सम्मिलित हैं —

१—पृथ्वी-तल तथा पृथ्वी से प्राप्त होने वाले पदार्थ जैसे लोहा, कोयला, सोना, चांदी, अन्य धातुए, मिट्टी का तेल, कुए

या श्रोत का जल, और भूमि की उत्पादक शक्तिया तथा जगल मे मिलने वाले पदार्थ, विविध जड़ी-बूटी आदि

२—भूमि के ऊपर का जल, नदी, तालाब, झील, समुद्र और इनमे मिलने वाली मछलिया, शख, मोती आदि

३—वायु, गर्मी-सर्दी, प्रकाश, वर्षा, तथा जल-शक्ति, वायु-शक्ति, सूर्य-शक्ति आदि.

इन मे से प्रत्येक के विषय मे अलग-अलग ब्योरेवार लिखने की यहां आवश्यकता नही. कुछ थोड़ी सी बातो का विचार करना है हमारा विशेष ध्यान इस ओर रहना चाहिए कि उत्पत्ति के लिए इनका उपयोग करने मे हमारा दृष्टिकोण उदार और व्यापक रहे. किसी का उपयोग कुछ थोड़े से व्यक्तियो के स्वार्थ-साधन मे न होकर मानव समाज के हित की दृष्टि से होना चाहिए.

प्राकृतिक परिस्थिति का आर्थिक जीवन पर प्रभाव— जिस देश की जैसी प्राकृतिक स्थिति, जल-वायु, वर्षा आदि होती है, वहां उसके अनुसार ही आर्थिक जीवन का निर्माण होता है परिस्थिति अनुकूल होती है तो आवश्यक वस्तुए सहज ही पैदा हो सकती है और मनुष्य का जीवन सुखमय बीतता है उसे खूब अवकाश मिलता है, वह कलाओ का विकास करने और आध्यात्मिक बातो को सोचने मे लग जाता है, परन्तु वह आराम-तलब और आलसी भी हो सकता है. यदि परिस्थिति प्रतिकूल होती है तो उसे अपने निर्वाह आदि के लिए आवश्यक वस्तुओ की उत्पत्ति मे बहुत श्रम करना होता है और उसका जीवन बहुत कष्टमय रहता है, परन्तु इससे उसे कुछ दशाओ मे मेहनत करने की आदत पड जाती है, और वह तरह-तरह के आविष्कार करने लगता है

मनुष्य ने अपने प्रयत्न द्वारा वहुत से स्थानो मे प्राकृतिक परिस्थिति में आवश्यक परिवर्तन करके उसे अपने अनुकूल वनाने मे एक सीमा तक सफलता प्राप्त की है. अनेक अनुपजाऊ स्थानो को हरा भरा वनाया गया है, रेगिस्तान में नहरें निकाल कर उसका कायाकल्प किया है, पहाड को चीर कर उसमें से आने जाने का रास्ता वना लिया है, समुद्र के किनारे को मिट्टी से पाटकर उस पर मकान वना लिये हैं, ऊचे ऊचे दुर्गम पहाड़ी स्थानो को उपयोग मे लाया गया है, नकली झीले और सरोवर आदि वनाये गये हैं. इस प्रकार मनुष्य विज्ञान से प्रकृति पर नयी-नयी विजय प्राप्त करने का दम भरता जा रहा है. तथापि समय-समय पर प्रकृति अपनी विशाल या अजेय शक्ति का परिचय देती रहती है जव उसका कोप होता है, तो वर्षों के प्रयत्न से वनाये हुये नगर भूकम्प आदि से वात की वात मे धराशायी हो जाते हैं; जहा हम वरावर स्थल देखने के अभ्यस्त हैं, वहा एक दम जल-ही-जल हो जाता है अस्तु, प्राकृतिक स्थिति का मनुष्य के जीवन पर गहरा प्रभाव पडता है

जंगल—जगलो से मनुष्य को कई तरह के लाभ हैं—(१) ये वायु को शुद्ध करते हुए मनुष्य के स्वास्थ्य को वनाये रखने तथा उसे सुधारने मे सहायक होते हैं. (२) ये वर्षा के पानी को जल्दी वहकर चले जाने से रोकते है और उसे जमीन में इकट्ठा करके उसे पीछे धीरे-धीरे देते हैं (३) पेड़ो के पत्ते हवा को तरी देकर उसकी गर्मी को कम करते हैं, इस प्रकार ये गर्म प्रदेशो की उष्णता को नियन्त्रित करके मनुष्य के लिए अनुकूल वनाते हैं. (४) इनसे पशुओ के चरने के लिए अच्छी चरागाहे होती है तथा इमारतो और इधन आदि के लिए लकडी मिलती है (५) इनसे कई अन्य उपयोगी पदार्थ प्राप्त होते हैं, जैसे गोद, रवड लाख, चमडा रगने के लिए पेडो की छाल, तरह

तरह के मसाले, तथा कागज बनाने की घास आदि. (६) जगलों से भूमि पर वर्षा भी अधिक होती है. (७) पेड़ो की जड़ें मिट्टी को बाधे रहती है इससे नदियो की बाढ़ आदि के कारण मिट्टी कम बहती है, और भूमि का कटाव रुका रहता है (८), जंगलो से अनेक प्रकार के पशु पक्षी तथा वनस्पतियाँ प्राप्त होती है, जो मनुष्य के बहुत काम आती है.

आबादी बढ़ने से बहुत से स्थानो में जंगलो को काट कर उस भूमि को निवास योग्य बनाया जा रहा है. फिर, मनुष्यो को इमारतो तथा इधन के लिए भी लकड़ी की जरूरत बढ़ने से जंगल अधिकाधिक काटे जा रहे हैं इस प्रकार बन-सम्पति कम होती जा रही है इसलिए बनो की रक्षा और उन्नति की ओर यथेष्ट ध्यान बना रहना चाहिए यथा-सम्भव सूखे या बेकार पेडो को ही काटा जाय अन्य पेडो का उपयोग बहुत किफायत से होना चाहिए, साथ ही नये-नये पेड़ो को लगाने तथा उन्हे बढ़ाने का क्रम बराबर चलता रहना जरूरी है बहुधा जंगलो मे बांसो के आपस मे रगडने से आग लग जाती है. और उससे भयकर विनाश हो जाता है, उसकी चौकसी रखने की जरूरत है

नदियाँ—नदियो का मानव जीवन पर आरम्भ से ही बहुत प्रभाव रहा है नदियो ने मनुष्य को शारीरिक एव मानसिक भोजन दिया है. अनेक तीर्थ-स्थान तथा व्यापारिक नगर किसी न किसी नदी के किनारे बसे है, और उससे सौन्दर्य प्राप्त कर रहे हैं. प्राचीन काल मे मनुष्यो के समूह के समूह नदियो के किनारे रहते आये है 'जय मातु गगे' तथा 'जय जमुना मैया' के घोष या नारो मे गगा जमुना को माता के रूप मे मानना बिना कारण ही नहीं हुआ है. प्राचीन सभ्यताओ का उद्गम नदियो और समुद्र के तट पर ही विशेष हुआ है इन्होने मनुष्य

जाति के खासकर आर्थिक इतिहास के निर्माण में महत्वपूर्ण भाग लिया है. नदियो से खेती में सहायता मिलती है, और मछलियाँ आदि प्राप्त होती हैं नदियो के डेल्टो और टापुओं की जमीन बहुत उपजाऊ होती है नदियों के रास्ते यातायात और यात्रा कार्य सुगम होता है हाँ, नदियों की बाढ से बहुधा गाव नष्ट हो जाते हैं, और माल असबाब तथा मनुष्य और पशु बह जाते हैं. लेकिन उससे यह लाभ भी होता है कि कहीं-कहीं भूमि पर उपजाऊ मिट्टी के परत जम जाते हैं, सूखे और बजर स्थानो मे तरावट पहुँच जाती है, एव ऊसर और रेह वाली मिट्टी वह जाती है. नदियो से नहरें काट कर, वर्षा न होने के समय मे भी खेती की जाती है.

नदियो को अधिक उपयोगी बनाने के लिए ऐसी व्यवस्था की जाती है कि इनकी बाढ से हानि यथा-सम्भव न हो; इनके बाध बना कर तथा इनमे से नहरें निकाल कर अधिकाधिक क्षेत्र में सिंचाई की जाय, इनसे बड़े पैमाने पर बिजली पैदा की जाय यातायात की सुविधा के लिए इन पर पुल भी बनाये जाते हैं.

एक बात ऐसी है जिस की ओर बड़ी बेपरवाही की जाती है, वह है नदियो की स्वच्छता. अनेक स्थानो मे बस्तियो का मल-मूत्र बह कर नदियो में मिल जाता है कुछ शहरों के पास तो कल-कारखानो का गन्दा पानी भी इन्हीं मे मिला दिया जाता है इससे प्राय बस्तियो के पास नदियो का जल स्वच्छ नहीं रहता और जो आदमी वहां नहाते हैं, अथवा इस जल को पीते हैं, उन्हे इसका यथेष्ट लाभ नहीं मिलता, कुछ दशाओ में हानि ही होती है आवश्यकता है कि मल-मूत्र और गदे पानी का खाद आदि के लिए उपयोग किया जाय, उसे नदियो मे न मिलने दिया जाय; और यदि वह कहीं मिले भी तो बस्ती से काफी फासले पर; जिससे वह दूर तक बहने से स्वच्छ हो जाय

और बस्ती के आदमियो के लिए उस जल का उपयोग हानिकर न हो.

खनिज पदार्थ—भूमि से मनुष्य को तरह-तरह के खनिज पदार्थ मिलते है, जो शुद्ध किये जाने पर बहुत उपयोगी होते हैं. इनके बारे मे यह बात याद रखनी है कि जब ये खानों से एक बार निकाल लिये जाते है तो वे सदा के लिए खाली हो जाती हैं. धातुएँ फिर पैदा नहीं की जा सकतीं इसलिए इन्हे सावधानी से तथा वैज्ञानिक पद्धति से निकाला जाना चाहिए, जिससे इनका कोई भाग अनावश्यक रूप से नष्ट न हो साथ ही इनका उपयोग बहुत मितव्ययिता पूर्वक होना चाहिए—इसमें भावी पीढियो की आवश्यकता का यथेष्ट ध्यान रहना चाहिए

पशु-पक्षी—जगलो और पहाड़ो मे तरह-तरह के अनेक पशु-पक्षी पाये जाते है क्रमशः उनमे से कुछ के बारे मे आदमी को मालूम हुआ कि उन्हे मार कर खालेने की अपेक्षा उन्हे पालना अधिक लाभदायक है तब गाय, भैस, बकरी, भेड आदि से पीने के लिए दूध लिया जाने लगा. घोडा, गधा, बैल, भैसा, ऊट, हाथी और खच्चर आदि सवारी तथा सामान ढोने के काम मे लाये गये. प्रायः उपयोगिता की दृष्टि से विविध स्थानो में भिन्न-भिन्न पशुओ को विशेप महत्व दिया गया. उदाहरण के लिए भारत मे गाय का खास स्थान है समुद्र और नदियो मे दूसरे जानवरों के अलावा मछलियॉ बहुतायत से मिलती हैं, जिन्हे आदमी खासकर खाने के काम मे लाता है पशुओ की तरह अनेक पक्षी भी आदमी के बहुत काम आते हैं. हॉ, कुछ पशु-पक्षी ऐसे भी है जो मनुष्य को तरह-तरह का नुकसान पहुँचाते है, और जिन्हे वह आज तक अपने लिए उपयोगी नही बना सका है अपने जीवन तथा सुख-सुविधा के लिए उसे इनको

मारना पड़ता है वर्तमान दशा में इसे क्षम्य कहा जा सकता है और कुछ दशाओं में आवश्यक भी माना जा सकता है. पर जो पशु-पक्षी किसी प्रकार हानि नहीं पहुँचाते उन्हें अपने स्वाद, फैशन या शौकीनी के लिए मारना कहां का न्याय है! चहचहाते जंगलों को निर्जीव करने का प्रयत्न कैसे उचित कहा जा सकता है!

प्राकृतिक शक्ति—आदमी की विशाल शक्ति का रहस्य यह है कि वह अपने शरीर के अंगों पर ही निर्भर न रह कर, दूसरे साधनों की सहायता ले सकता है. बहुत प्राचीन समय से ही वह विविध औजारों से काम लेता रहा है और उनमें समय-समय पर सुधार करता रहा है. इनके अतिरिक्त उसने पशुओं का उपयोग किया. बाद में भाप आदि का उपयोग जान लेने पर उसने उससे चलने वाली मशीनों का आविष्कार किया भाप से चलने वाले यंत्रों में कोयले या ईंधन का खर्च बहुत होता है क्रमशः आदमी को पेट्रोलियम का उपयोग ज्ञात हुआ. मशीनें चलाने में इससे खूब काम लिया जा रहा है. ऊंचे-ऊंचे पहाड़ों के जल-प्रपातों से तथा बड़ी-बड़ी नदियों से बिजली पैदा करके लाभ उठाने का प्रयत्न हो रहा है. जिन स्थानों में वायु-शक्ति बड़े परिमाण में है, वहां उसका उपयोग हो रहा है वैज्ञानिकों का विश्वास है कि एटम-बम और हाइड्रोजन बम में प्रगट होने वाली परमाणु-शक्ति का उपयोग एंजिन आदि विविध यंत्रों के चलाने में सफलता-पूर्वक हो सकेगा. उष्ण कटिबन्ध के देशों में सूर्य के प्रकाश (धूप) से मिलने वाली शक्ति अनन्त है, उसे इकट्ठा करके संचालन शक्ति के रूप में काम में लाने की दिशा में प्रगति हो रही है. हाँ, किसी शक्ति को खर्च करते समय यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि वह कहां तक उचित और अनिवार्य है.

भूमि सामाजिक सम्पत्ति है; किसी की मिलकियत नहीं—भूमि प्रकृति की देन है, यह सब के लिए है. इसका उपयोग समाज-हित की दृष्टि से होना चाहिए. किसी व्यक्ति या परिवार को इस पर विशेष अधिकार जमाना अनुचित है जैसा कि श्री जो. का. कुमारप्पा ने कहा है—

'धूप, हवा, पानी वगैरा मे मिलकियत हो ही नही सकती; इसी तरह से जमीन पर कोई कब्जा नहीं माना जा सकता. यह समाज की मानी जानी चाहिए. किसी आदमी को उतनी ही जमीन दी जा सकेगी, जितनी समाज के भले के लिए इस्तेमाल करने की उसमें योग्यता हो जमीन पर मिल्कियत तो समाज की ही होनी चाहिए जो आदमी जिस जमीन पर काश्त करे, उसे उस जमीन की पैदावार का पूरा फायदा मिलना चाहिए और जो बेशी बचे, सिर्फ उसे ही दूसरे लोगो मे बाटा जाय जब यह रिवाज चालू होगा, तभी बटवारा-न्याय कायम हो सकेगा बाटने का काम एक-एक आदमी के सपुर्द न हो कर सहयोगी सोसाइटियो के सुपुर्द हो'[६]

समाज के व्यापक हित का ध्यान रखने की आवश्यकता—भूमि के सम्बन्ध मे हमारा दृष्टिकोण राष्ट्रीय ही नहीं, अन्तर्राष्ट्रीय होना चाहिए पहले बताया जा चुका है कि मानव जाति को भिन्न-भिन्न टुकड़े मे बाट कर उनके हित का अलग-अलग विचार करना अनुचित और विनाशकारी है. मानव समाज के एक हिस्से का अपने स्वार्थ मे लीन होना अन्ततः उसके भी लिए हानिकर है इसलिए भूमि की व्यवस्था में हमे अपने सामने समाज के किसी सकीर्ण रूप को न रख, उसके पूर्ण और व्यापक स्वरूप का ध्यान रखना चाहिए वर्तमान दशा मे इस ओर घोर उपेक्षा हो रही है

---

६ 'गाधी-अर्थ विचार' मे

उदाहरण के तौर पर भारतीय सघ के १२ लाख वर्गमील के क्षेत्र में ३५ करोड आदमी रह रहे हैं, और इसके पास आस्ट्रेलिया है, जिसका क्षेत्रफल इससे ढाई गुना अर्थात ३० लाख वर्गमील होने पर भी उसकी आबादी केवल ७५ लाख है इसका अर्थ यह है कि जब कि भारत में प्रति वर्गमील आबादी ३०० है, आस्ट्रेलिया में यह औसत अढ़ाई है एक का दूसरे से १२० और १ का अनुपात है. फिर भी आस्ट्रेलिया भारतवासियो के लिए तथा सभी रगदार जातियों के लिए अपना द्वार बन्द किये हुए हैं. वह केवल गौर वर्ण का स्वागत करता है. दक्षिण अफ्रीका की वर्ण-विद्वेष नीति का कटु अनुभव हम चिर काल से करते आ रहे हैं. प्राय. गौराग जातियाँ अपने लिए अधिक से अधिक भूमि को सुरक्षित रखना चाहती हैं. खासकर संयुक्त-राज्य अमरीका के विशाल और उपजाऊ प्रदेश मे अन्य देशों के काफी आदमी रखने की क्षमता है निदान वर्तमान भूमि व्यवस्था की यह विषमता दूर की जानी चाहिये.

यह कार्य अच्छी तरह तभी होगा, जब ससार के सब देशों का एक राज्य और एक विश्व-सरकार स्थापित होगी. इस दिशा में आगे बढने के लिए किसी को दूसरों की प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं जो भी राज्य इस शुभ कार्य में अग्रणी हो सके उसे अपना कर्तव्य पालन करके दूसरों के लिए उदाहरण बनना चाहिए. इसी प्रकार व्यक्तियों को राज्यो के उदाहरण की राह देखना अनुचित है. जो भी व्यक्ति इस दिशा में कुछ अच्छा कदम उठा सकें, उन्हे इसमें ढील न करनी चाहिए.. इस विचारधारा के, गाव-गाव और नगर-नगर में प्रचार होने की आवश्यकता है.

भूमि वितरण के तरीके ; श्री विनोबा का शिक्षाप्रद उदाहरण—भूमि-वितरण के तीन तरीके हैं :—(१) बडी-बड़ी

जमीनों के मालिको से जबरदस्ती जमीन छीन कर उसे भूमि-हीनो में बांट देना, इसके लिए हत्या और खून-खराबी की भी आवश्यकता हो सकती है और इसे शान्ति-पूर्वक स्थायी रूप मे रखना भी कठिन है. इससे प्रजातन्त्र को खतरा तथा अधिनायक-वाद की तैयारी होने की आशका होती है (२) कानून द्वारा उचित मुआवजा देकर, जमींदारो से उनके पास की अतिरिक्त भूमि लेकर उसे भूमि-हीनो मे बाटना मुआवजे का प्रश्न कितनी कठिनाइयाँ पैदा करता है; और यह कितना अव्यवहारिक है इसका अनुभव भारतवासियो को गतवर्षो मे अच्छी तरह हो चुका है (३) अधिक भूमिवालों का दृष्टिकोण बदल कर उनसे उपहार या दान के रूप मे भूमि प्राप्त करके उसे भूमि-हीन किसानो में बाटना

श्री विनोबा ने इनमे से तीसरे तरीके को अपनाया है. उन्होंने मई-जून १९५१ में तैलगाना (हैद्राबाद) मे गरीबो को बाटने के लिए लगभग तेरह हजार एकड़ जमीन हासिल की. भारत भर में उनका लक्ष्य पाच करोड एकड़ भूमि संग्रह करना है, एक करोड उत्तर प्रदेश मे, और शेष अन्य प्रदेशो मे. शहरी लोगो को भूमि की आवश्यकता न होने से, उन्हे छोड़ दे, तो भारत मे प्रति परिवार को सात एकड़ भूमि मिल सकती है. जिनके पास इससे अधिक है, उन्हे स्वेच्छा से उनका दान कर देना चाहिए भूमि-दान की यह पद्धति भू-स्वामियो के लिए शोभास्पद तथा भूमि-हीनो के स्वाभिमान की रक्षक है यह अहिन्सात्मक क्रान्ति का मार्ग प्रशस्त करती है यह कानून से भी अधिक सफल है अगर कानून बने, और उसमे मानलो कि श्रीमानो के लिए दो सौ एकड भूमि की मर्यादा रखी जाय तो इससे कम भूमि वालो से ज़मीन नही ली जा सकेगी पर विनोबाजी ने तो सौ एकड़ वालों, पचास-चालीस और इससे भी कम एकड़ वालो से भूमि

प्राप्त की है एक गांव में २० एकड वाले ने भी ३ एकड़ जमीन दे दी. कोई भी सरकारी कानून २० एकड़ वाले से तीन एकड़ नहीं ले सकता, लेकिन जहां हृदय में परिवर्तन होता है, वहां यह हो सकता है

विशेष वक्तव्य—इस अहिन्सात्मक क्रान्तिकारी प्रयत्न की सफलता का अनुमान सिर्फ मिले हुए भू-दान के परिमाण से नहीं लगाया जा सकता, बल्कि जो वृत्ति वहा निर्माण हुई है, उससे लगाया जाना चाहिए इस मनोवृत्ति की भूख आज हिन्सा से थके मांदे सारे ससार को है.

श्री मश्रूवाला ने लिखा है—'यह सारी सफलता बल या कानून का आश्रय लिये बिना हुई है इससे जाहिर है कि मनुष्य इतने नहीं गिर गये हैं, जितने हम कभी-कभी निराशा के क्षणों में सोचने लगते है निराश होने की आवश्यकता नहीं है हमेशा की तरह मनुष्य आज भी अहिन्सा की वाणी से प्रभावित होता है; हा, वह किसी प्रेम-मूर्ति साधु-पुरुष के मुह से निकलनी चाहिए.' क्या भारत मे ऐसे प्रेम-मूर्ति साधु-पुरुषो की परम्परा नहीं बनी रह सकती ? और क्या ससार के अन्य देशो में उनका अभाव रहेगा ? हमे मानवता के उदय में और मनुष्य जाति के उत्थान में विश्वास है.

पन्द्रहवां अध्याय

श्रम और बौद्धिक कार्य

हाथ और पैर का श्रम ही सच्चा श्रम है, और हाथ-पैरो से मजदूरी करके ही आजीविका प्राप्त करना चाहिए. मानसिक और बौद्धिक शक्ति का उपयोग समाज-सेवा के लिए ही करना चाहिए हम हाथ पैर न हिलायें तो क्या बुद्धि से खेती करेंगे,

—गांधीजी

आज जहा मजदूरो का शरीर ज्यादा काम से घिसता जा रहा है, वहा शिक्षितों का शरीर कोई काम न होने से घिसता जा रहा है, यानी दोनो का नुकसान हो रहा है बुद्धि की भी यही हालत है. बुद्धिमान लोगो को बुद्धि का ज्यादा काम पडता है, इसलिए उनकी बुद्धि घिसता जा रही है ; और, मजदूरो की बुद्धि को काम नही मिलता, इसलिए उनकी बुद्धि क्षीण होती जा रही है, इसलिए दोनो वर्गों को दोनो तरह का काम मिलना चाहिए.

—विनोबा

यदि गॉवो तथा शहरों के लोग खुद मेहनत करने लगें, खुद सडके, नहरे, स्कूल आदि बनाने लग जायँ दफ्तरों में बाबू बनने की ख्वाइश छोड दें और सरकार की तरफ मुंह ताकना बन्द कर दें तो थोडे ही दिनो में हमारे देश का नक्शा बदल सकता है.

—जवाहरलाल नेहरू

पिछले अध्याय मे, भूमि के विषय मे लिखा गया है. वह खुद, अर्थात् बिना मनुष्य के मेहनत किये, केवल थोड़े से, सो

भी कच्चे पदार्थ पैदा करती है जंगलो में अपने आप पैदा होने वाली चीजें, मेहनत के बिना, मनुष्य के लिए विशेष उपयोगी नहीं होतीं फिर विविध उपयोगी वस्तुओ का संग्रह करके रखने में या प्राकृतिक पदार्थों को ऐसे रूप में लाने में कि वे उपयोगी हो सकें, श्रम आवश्यक है. अब इसी के बारे मे विचार करते हैं.

श्रम किसे कहते हैं?—वर्तमान अर्थशास्त्र मे श्रम के अन्तर्गत मनुष्य द्वारा किया हुआ वह सब प्रयत्न समझा जाता है जिससे धन की उत्पत्ति हो. इस प्रकार इस अर्थशास्त्र में बौद्धिक कार्य को भी श्रम माना जाता है, और कवि, लेखक, चित्रकार, डाक्टर, वकील आदि को श्रमियो मे गिना जाता है. सर्वोदय अर्थशास्त्र की दृष्टि भिन्न है. उसके अनुसार आदमी को अपनी बौद्धिक शक्ति का उपयोग लोकसेवा मे करना चाहिए. और अपने निर्वाह आदि के लिए शरीर से श्रम करना चाहिए. इस प्रकार यह अर्थशास्त्र केवल ऐसी मेहनत को ही श्रम मानता है, जो प्रधानतया शरीर से की जाती है और जिसे साधारणतया शरीर-श्रम कहा जाता है

व्यक्तिगत हित और सामाजिक हित की दृष्टि से श्रम के भेद अनुचित हैं—कुछ अर्थशास्त्री श्रम के नीचे लिखे भेद करते हैं—(१) व्यक्ति और समाज दोनो के लिए हितकर; अर्थात् ऐसी उपयोगी चीजो के बनाने का श्रम जिसकी मजदूरी खूब अच्छी मिले. (२) व्यक्ति के लिए हितकर, परन्तु समाज के लिए अहितकर; जैसे नशे या विलासिता की वस्तुएं बनाने का श्रम, जिससे श्रमी को खासी आमदनी होती है, पर समाज को हानि पहुँचती है. (३) व्यक्ति के लिए अहितकर, परन्तु समाज के लिए हितकर; जैसे शिक्षा, साहित्य, चिकित्सा आदि का ऐसा सेवा-कार्य करना, जिसका पारिश्रमिक बहुत कम मिले.

समाज की वर्तमान व्यवस्था ऐसी है कि त्यागभाव से लोकसेवा करने वाले और निर्धनता का जीवन बिताने वाले व्यक्तियो मे से बहुत कम का यथेष्ट आदर मान होता है, और समाज को हानि पहुँचाने वाले सब व्यक्तियो को राज्य की ओर से समुचित दड नही दिया जाता. उदाहरण के लिए आतिशबाजी की चीज़े या अनेक प्रकार के मादक पदार्थ बनाने वालो के, शौकीनी या विलासिता बढ़ाकर लोगो का द्रव्य हरण करने वालो के, और मुकदमेबाजी बढ़ाने वाले वकीलो के कार्य को दंडनीय नहीं माना जाता. वर्तमान अर्थशास्त्र में इनका कार्य उत्पादक माना जाता है, चाहे इनसे दूसरो को कितनी ही हानि पहुँचे. यह अर्थशास्त्र व्यक्ति और समाज के हित में भेद करता है और पूरे समाज के कल्याण की बात नहीं सोचता; और जब कभी या कुछ अंश मे अपने देश भर के हित का विचार करता है तो इसे दूसरे देशों का अहित होने देने मे कोई आपत्ति नही होती.

इसके विपरीत, सर्वोदय अर्थशास्त्र व्यक्तिगत् हित और सामाजिक हित मे भेद नहीं मानता इसके अनुसार, कोई श्रम व्यक्ति के लिए वास्तव में हितकर तभी हो सकता है, जब उससे समाज का भी हित होता है व्यक्ति समाज का अग है, समाज को हानि पहुचाकर कोई आदमी अपना हित नहीं कर सकता. चोर, आतिशबाज या मादक वस्तु बनाने वाला व्यक्ति अपने कार्य से अपना नैतिक पतन करता है, अपनी आत्मा की उन्नति या विकास में बाधक बनता है, इसलिए वह कुछ धन कमाते हुए भी घाटे का काम करता है इसी प्रकार जब हम त्याग और सेवा-भाव से कार्य करते है तो हमारे मन को जो आनन्द और संतोष मिलता है, वह दिन रात पैसे के पीछे पड़े रहने वालो को कहां मिल सकता है! इस प्रकार व्यक्ति-हित और समाज

हित को अलग अलग मान कर श्रम के भेद करना ठीक नहीं है, सर्वोदय अर्थशास्त्र का यही आदेश है.

बौद्धिक कार्य को श्रम न माने जाने के सम्बन्ध में विचार—पहले कहा गया है कि सर्वोदय अर्थशास्त्र बौद्धिक कार्य को श्रम न मान कर उसे लोकसेवा के रूप मे लेता है बात यह है कि अन्य प्राणियो की अपेक्षा मनुष्य में बुद्धि की विशेषता है. यह बुद्धि क्रमश. विकसित होती रहती है. आदमी को चाहिए कि वह अपनी इस विशेष शक्ति का उपयोग शरीर-निर्वाह या विलासिता मे न लगा कर लोकहित मे लगावे परन्तु अधिकाश आदमी ऐसा न कर, इसका उपयोग निजी स्वार्थों की पूर्ति या प्रतिष्ठा की वृद्धि में करते हैं, और इस प्रकार आर्थिक तथा सामाजिक असमानता बढ़ाते हैं. भारत में इससे जाति भेद, ऊच-नीच, या छूत-अछूत के भेद-भाव की सृष्टि हुई और इसे धार्मिक बल मिल गया. किसी न किसी रूप में ऐसी भावना अन्य देशो में भी है इसे हटाया जाना चाहिए इसलिए बौद्धिक कार्य को श्रम न मान कर, सभी लोगो के लिए अपने जीवन-निर्वाह आदि के वास्ते शरीर श्रम करने की आवश्यकता पर जोर देना जरूरी है.

शरीर-श्रम और श्रमियों की प्रतिष्ठा—समाज को न्यायाधीश, अध्यापक, लेखक, कवि आदि की आवश्यकता है तो क्या किसान, बढ़ई, जुलाहे, लुहार, चमार और मेहतर के काम की जरूरत नहीं है ? एक तरह से इनकी जरूरत और भी ज्यादा है. इनके श्रम के बिना समाज की जीवन-यात्रा ही नहीं चल सकती. फिर, इन दोनो वर्गों मे बौद्धिक कार्य करने वालों को इतना ऊंचा माना जाना, और शारीरिक श्रम करने वालो को निम्न पद मिलना कहां का न्याय है.! एक को दूसरे की अपेक्षा

कई गुना वेतन क्यो मिले। इस विषय में खुलासा विचार आगे किया जायगा. इसके अतिरिक्त बुद्धिजीवियों को शरीर-श्रमियों की अपेक्षा अपने आपको ऊचा न समझना चाहिए और उनसे समानता स्थापित करने के लिए कुछ समय अनिवार्य रूप से शरीर-श्रम द्वारा उत्पादक कार्य करना चाहिए. वास्तव में हमारी किसी श्रमी के साथ बराबरी की भावना तभी सिद्ध होती है, जब हम उसका काम करने को तैयार रहे.

प्रत्येक बुद्धिजीवी को अभी कम से कम कितना श्रम अवश्य करना चाहिए, इस विषय में श्री श्रीकृष्णदास जाजू का मत है कि इसकी मात्रा महीने मे २४ घटे मज़दूरी उचित समझनी चाहिए, फिर चाहे रोजाना काम एक घटा हो या इससे अधिक. सामान्यतः दिन भर का काम छः घंटों का मानना चाहिए. इस हिसाब से २४ घटो का काम महीने भर में चार दिन का होता है. श्री जाजूजी ने भारत की वर्तमान अवस्था मे खेती सम्बन्धी काम को प्रथम स्थान देते हुए लिखा है—

अगर दूसरो के खेत में काम करना पड़े तो जैसे अन्य मजदूर लोग मजदूरी लेते हैं, वैसे ही हम भी लेवें ऐसा करने से काम में लगन आवेगी. खेत का मालिक पूरा काम किये विना ठीक मजदूरी नही देगा इसके अलावा दूसरा एक बडा लाभ यह होगा कि मामूली मजदूरों पर हमारे काम का नैतिक असर पडेगा. देहातों के सिवा कसबों में भी खेती की मजदूरी का काम मिल सकता है शहरो मे मुश्किल होगा, पर शहर वाले परिस्थिति के अनुसार वहा मकान आदि की मजदूरी का काम ढूँढ सकते हैं ×

समाज में अनुत्पादकों की भरमार—प्रत्येक व्यक्ति को जीवन-निर्वाह के लिए विविध वस्तुओ की जरूरत होती है, यदि

× 'सर्वोदय,' अप्रेल १९५१

और नहीं तो कम से कम इसी विचार से उसे उत्पादक श्रमी होना चाहिए. जिन आदमियों के हाथ-पांव ठीक काम करते हैं, वे दूसरों पर भार क्यों बनें! दान-दक्षिणा लेना केवल उनके लिए ही ठीक है जो अपाहज होने की वजह से, भरसक उद्योग करने पर भी अपना निर्वाह नहीं कर पाते, अथवा जो अपना सब समय लोकसेवा करने में लगाते हैं अन्य किसी समर्थ और स्वस्थ व्यक्ति का परावलम्बी होना अनुचित है परन्तु ठीक जाँच की जाय तो प्रत्येक समाज में बहुत से आदमी ऐसे मिलेंगे, जो उत्पादक कार्य नहीं करते, अथवा बहुत कम करते हैं

जिन लोगों का जहा तक वश चलता है, वे वहा तक श्रम को टालते हैं. बुद्धिजीवियों ने अनेक ऐसे मार्ग निकाल लिये हैं, जिनसे उन्हें श्रम न करना पड़े अनेक आदमी वास्तव में उत्पादक न होते हुए भी उत्पादकों की तरह, वरन उससे भी अधिक आदर मान पाते हैं निम्नलिखित व्यक्ति असल में अनुत्पादक या बहुत-कुछ अनुत्पादक ही हैं, भले ही वे उत्पादक समझे जाते हो—

(१) रईस, सेठ, साहूकार जो सूद की कमाई पर मौज उड़ाते हैं

(२) कल कारखानों के मालिक, जो उनमें पैसा लगाने के अतिरिक्त कोई उत्पादक श्रम नहीं करते

(३) जमीन जायदाद के मालिक जो कुछ श्रम न करते हुए लगान या किराये की आमदनी खाते हैं.

(४) जुआरी, सट्टेबाज, आदि जो बात की बात में बहुत पैसे के हकदार बन जाते हैं

(५) पुजारी और महन्त आदि जो समाज में नैतिक या आध्यात्मिक शिक्षा के प्रचार में योग नहीं देते

(६) वे सब आदमी और औरतें जो अपने बाप-दादा या अन्य रिश्तेदार की कमाई से खाते पीते हैं.

(७) ऐसे वकील या डाक्टर आदि जो लोकहित या समाज-हित की परवाह न कर अपने मवक्किलो और रोगियो से अनापशनाप धन ऐंठते है, और समाज मे मुकदमेबाजी और रोग फैलाने मे सहायक होते है

(८) वे सब दुकानदार जो अपनी चीजो मे मिलावट करते तथा बेहद मुनाफेखोरी करते हैं; या चीजो का बहुत अधिक आकर्षक रूप बना कर ग्राहको को ठगते है

(९) वे लेखक, कवि, चित्रकार, सिनेमा-नाटक दिखाने वाले आदि जो लोकहित की भावना न रख अपनी कृतियो से जनता मे चचलता, उद्वेग और विलासिता बढाते है

(१०) ऐसे सब सरकारी तथा गैर-सरकारी नौकर जो नाम मात्र के काम के लिए बहुत अधिक द्रव्य पाते है

यह सूची पूरी होने का दावा नही करती. इसी प्रकार के अन्य व्यक्ति भी है, जो पूर्णतया या अशतः मुफ्तखोरे और परावलम्बी है इन्हे समाज मे मान-प्रतिष्ठा न मिलनी चाहिए. वह तो श्रम को ही दी जानी चहिए यदि श्रम को आदर नहीं मिलता तो राष्ट्र का पतन स्वाभाविक है प्राचीन काल मे यूनान रोम आदि की सभ्यताए लुप्त हो गयीं, क्योकि उनका आधार दासो का श्रम था, ऊंचा समझा जानेवाला वर्ग आराम और विलासिता का जीवन विताता था. वर्तमान राष्ट्रो को इस इतिहास से शिक्षा लेनी चाहिए.

बौद्धिक कार्य का उपयोग लोकसेवा के लिए— लोगो को चाहिए कि बौद्धिक कार्य प्रायः लोकसेवा के ही लिए करें कुछ पाठको को यह आशका हो सकती है कि जब इसमे उसका कोई निजी स्वार्थ न होगा तो आदमी ऐसा क्यो

करेगा. पर सोचना चाहिए कि इस समय भी कितने ही आदमी अनेक कार्य निस्वार्थ और परोपकार भाव से करते हैं यदि सर्व-साधारण की शिक्षा-दीक्षा प्रारम्भ से ही ठीक हो और अनुकूल वातावरण हो तो इस दिशा में प्रगति होने में कोई सन्देह नहीं हो सकता मनुष्य में नर से नारायण बनने की क्षमता है

शरीर-श्रम का आदर्श—गांधीजी ने जीवन-निर्वाह के लिए शरीर-श्रम को आवश्यक माना है उनका मत है कि बौद्धिक कार्य और (रोटी कमाने के अतिरिक्त) अन्य शारीरिक श्रम प्रेम का श्रम होना चाहिए और उसे केवल समाज सेवा के लिए किया जाना चाहिए. स्वेच्छा से इस आदर्श को अपनाने से समाज का दुःख दरिद्रता कितनी कम हो जाय और उसके सुख शान्ति में कितनी वृद्धि हो जाय। आदमी का रहन-सहन सादगी का होने से उसे जीवन की जटिलता और परेशानी से मुक्ति मिल जाय और उसका स्वास्थ्य भी बहुत सुधर जाय इसके अतिरिक्त इससे उसकी मानसिक उन्नति में भी सहायता मिले, क्योंकि शारीरिक शक्ति बढने से बुद्धि का भी विकास होता है. फिर शरीर-श्रम से देश में उत्पादन बढने से वह स्वावलम्बी होगा, और उसके स्वाभिमान की रक्षा होगी. एक और महत्त्वपूर्ण परिणाम यह होगा कि इससे बुद्धिजीवियों और श्रमजीवियों के बीच की घातक खाई पटने में विलक्षण प्रभाव पडेगा. ऐसे चौतर्फा कल्याण करनेवाले आदर्श को स्वीकार करने और प्राप्त करने के प्रयत्न पर किसी को कुछ आपत्ति या शंका क्यों हो?

सोलहवां अध्याय

श्रम-विभाग बनाम श्रम-समन्वय

आदमी श्रम को बचाते रहते हैं, यहा तक कि हजारों बेकार हो जाते हैं और बाजारों मे भूखा मरने के लिए फेंक दिये जाते हैं मैं समय और श्रम-की बचत मुट्ठी भर लोगों के लिए नही, सब के लिए चाहता हूं

—गाधीजी

श्रम से सम्बन्ध रखने वाला एक विषय, जिसे आजकल बहुत महत्व दिया जाता है, वह है, जिसे आधुनिक अर्थशास्त्र मे 'श्रम-विभाग' कहा जाता है यह वास्तव मे श्रम का विभाजन नहीं होता; कार्यों का, या एक-एक कार्य की विविध क्रियाओ का विभाजन होता है इस अध्याय मे इस बात का विचार किया जायगा कि व्यक्ति तथा समाज की सर्वांगीण उन्नति की दृष्टि से यह कहा तक हितकर या हानिकर है, और यदि यह अन्तत अनिष्टकर है तो इसके स्थान पर श्रम-समन्वय का उपयोग किस प्रकार किया जाना चाहिए.

कार्य-विभाग; भारत की वर्ण व्यवस्था—पहले मनुष्यो की एक-एक टोली या परिवार अपनी जरूरतें पूरी कर लेता था, धीरे-धीरे उनमे काम का बटवारा होने लगा. समूह के कुछ आदमी सब की रक्षा का काम करने लगे; कुछ सब के खाने-कपडे आदि की व्यवस्था करने के वास्ते पशु पालन, खेती, उद्योग-धधे तथा व्यापार करने लगे, कुछ, दूसरो को अच्छी-अच्छी बाते सिखा कर उनका और साथ मे अपना ज्ञान बढाने लगे इनके अतिरिक्त कुछ आदमी अपनी योग्यता का विकास न कर सकने

के कारण मामूली मेहनत मजदूरी आदि से ही अपना निर्वाह करने वाले होने लगे भारत में इस प्रकार के कार्य-विभाग ने शास्त्रीय स्वरूप धारण कर लिया यह माना जाता है कि यहां वर्ण-व्यवस्था अर्थात् समाज का ब्राह्मण क्षत्री, वैश्य और शूद्र इन चार भागो में विभाजन पहले गुण-कर्म के अनुसार था पीछे धीरे धीरे यह जन्म के आधार पर समझा जाने लगा और चार जुदा-जुदा जातियाँ बन गयीं, तथा प्रत्येक के सैकडो भेद-उपभेद हो गये बढई, लुहार, जुलाहा, मेहतर, चमार आदि वंश-परम्परा के अनुसार होने लगे, इनका परस्पर में सामाजिक सम्बन्ध न रहा, ऊच-नीच का भी भेद-भाव आ गया कुछ जातियाँ तो अस्पृश्य या अछूत ही मानी जाने लगीं, उनका काम नीचे दर्जे का माना जाने लगा यहा तक कि इनका काम करने पर 'ऊची' जातियों के आदमी भी सामाजिक दृष्टि से गिरे हुए समझे जाने लगे इस प्रकार भारत मे कार्य-विभाग जात-पात और ऊच-नीच के भेद भाव वाला हो गया

आधुनिक श्रम-विभाग—औद्योगिक कार्य-विभाग सभी देशो मे रहा है यह क्रमशः बढता गया अठारहवीं सदी से भाप आदि से चलने वाली मशीनो का आविष्कार होने पर यह कार्य-विभाग और आगे बढा. पहले आदमी एक काम के सब हिस्सों को पूरा करके कोई चीज बनाता था अब एक काम के विविध हिस्से किये जा कर व अलग-अलग आदमियो के, या जुदा-जुदा समूहो के सुपुर्द किये जाने लगे यन्त्रो से चलने वाले कल-कारखानो में प्रत्येक कार्य कई सूक्ष्म हिस्सों मे बटा होता है प्रत्येक हिस्सा अपूर्ण होता है, और सब हिस्सो के कार्य हो चुकने पर अन्त मे अभीष्ट वस्तु तैयार होती है उदाहरण के लिए पहले एक आदमी अपने परिवार वालो के साथ मिल कर कपास ओटता, धुनता, सूत कातता

और कपड़ा बुन लेता था. अब कल-कारखानो मे कपड़ा तैयार करने की क्रिया सैकड़ो भागो मे विभक्त है, और प्रत्येक भाग अलग-अलग समूहो को सौंपा जाता है. हरेक समूह मे सैकड़ो या हजारो आदमी काम करते है, तब कपड़ा तैयार होता है खासकर ऐसे औद्योगिक कार्य-विभाग को ही 'श्रम-विभाग' कहा जाता है

श्रम-विभाग से हानियाँ—वर्तमान अर्थशास्त्र मे श्रम-विभाग के गुणो का खूब बखान किया जाता है. इससे मुख्य लाभ ये बताये जाते हैं.—एक खास क्रिया को लगातार करने से उसका करना आसान हो जाता है, उसे करने के लिए यन्त्रो का आविष्कार हो सकता है, समय को और श्रम को बचत होती है, उत्पादन अधिक होता है, प्रत्येक व्यक्ति को उसकी शक्ति और योग्यता के अनुसार काम दिया जा सकता है, इत्यादि इन लाभो के विषय मे पाठको को काफी जानकारी होगी इस लिए इन्हे विस्तार से लिखने की आवश्यकता नहीं. हम यहां श्रम-विभाग से होने वाली हानियो का विचार करते है; उनके सम्बन्ध मे प्रायः आधुनिक अर्थशास्त्र में बहुत कम ध्यान दिया जाता है. ये हानियां खासकर निम्नलिखित है·—

(क) यह श्रमी को मनुष्य के बजाय एक यन्त्र जैसा बना देता है अनेक आदमियो को अन्त मे कहना पडता है कि हमारी सारी जिन्दगी आलपीनो की नोक घिसने मे, बटन दबाने मे या कीले ठोकने जैसे काम मे ही गयी उन्हे कोई पूर्ण चीज बनाने का, और अपने काम का प्रत्यक्ष पूरा परिणाम देखने का आनन्द या गौरव प्राप्त नहीं होता उनकी विचार और योजना शक्ति का उपयोग न होने से उसका विकास नहीं होता यह बात मनुष्य जाति की उन्नति या कल्याण मे बहुत बाधक है.

(ख) प्रत्येक श्रमी को एक कार्य के छोटे से उपविभाग की क्रिया करनी होती है उसे उसी का अभ्यास होता है यदि किसी कारण से उस का वह कार्य छूट जाय तो उसकी कार्य-कुशलता एक खास क्षेत्र तक ही परिमित रहने के कारण, उसे अन्यत्र काम मिलना आसान नहीं होता.

(ग) एक क्रिया करने वालों को अपने काम का दूसरी क्रियाएं करने वालों के साथ मेल बैठाना पड़ता है; यदि दूसरी क्रिया वाले अपना कार्य कुछ जल्दी या तेजी से कर लेते हैं तो इन्हें भी अपनी क्रिया उसी गति से करनी पडती है जिस गति से सम्बंधित यंत्र चलता है, उसी गति से आदमी को चलना होता है इससे स्नायुओं या नसों पर बहुत अधिक दबाव पडता है, जो अस्वाभाविक और अस्वास्थ्यकर होता है.

श्रम-विभाग का उपयोग खासकर यंत्रोद्योगों में होता है, अतः इससे होने वाली हानियों की विशेष जानकारी 'यंत्रोद्योग' नाम वाले अध्याय से होगी.

श्रम-समन्वय की आवश्यकता—श्रम-विभाग में मनुष्य को सिर्फ एक धनोत्पादक यंत्र माना जाता है इससे मानवता का ह्रास होता है. आवश्यकता है मनुष्य को मनुष्य मानने की, और उसके सब पहलुओं के विकास के लिए श्रम-समन्वय की दृष्टि से विचार करने की श्रम-विभाग भले ही किसी देश की कुल धन-राशी को बढ़ाने वाला हो, उससे अधिकांश जनता का शोषण होता है, और दूसरे देशों पर साम्राज्यवाद का चक्र चलाने का मार्ग प्रशस्त होता है, इसलिए इसे यथा-सम्भव त्याग कर श्रम-समन्वय को अपनाया जाया जाना आवश्यक है.

श्रम-समन्वय की दृष्टियां—श्रम-समन्वय का विचार कई दृष्टियो से होना आवश्यक है—

(१) स्त्री-पुरुष की दृष्टि से
(२) पारिवारिक दृष्टि से
(३) सामाजिक दृष्टि से
(४) औद्योगिक दृष्टि से
(५) प्रादेशिक दृष्टि से
(६) भौगोलिक या राष्ट्रीय दृष्टि से

आगे इनके सम्बन्ध मे क्रमशः विचार किया जाता है

स्त्री-पुरुष दृष्टि—स्त्री-पुरुष की शरीर-रचना मे कुछ नैसर्गिक भेद है. स्त्री रजस्वला होती है उस समय तथा गर्भवती होने पर प्रसव-काल से कुछ दिन पहले से लेकर, कुछ समय बाद तक उसमें श्रम करने की क्षमता कम रहती है. इस लिए उसके काम मे इस बात का ध्यान रखा जाना जरूरी है परन्तु किसी काम धधे को नीचा समझना और इस लिए उसे स्त्रियो के ही करने का मानना ठीक नहीं है. इस दृष्टि से पुरुषो को भी रसोई बनाना, आटा पीसना, सूत कातना, बच्चो की सार-सभार करना आना चाहिए; और आवश्यकता होने पर जब उन्हे ये काम करने पड़े तो बहुत परेशानी या कष्ट अनुभव न करना चाहिए इस प्रकार स्त्री-पुरुषो के काम मे उससे अधिक अन्तर या विभिन्नता न होनी चाहिए, जितनी नैसर्गिक दृष्टि से होनी ज़रूरी है. इसमे जो सामाजिक तथा अन्य बाधाए हो, उन्हे दूर किया जाना चाहिए. उदाहरण के लिए भारत के कुछ भागो मे तथा दूसरे भी कुछ देशो मे स्त्रियो को पर्दे मे रखा जाता है और उन्हे घर से बाहर की दुनिया का कुछ ज्ञान या अनुभव नहीं होता. इससे उनके जीवन मे बहुत एकागीपन और अस्वस्थता आती है इसका निवारण होना आवश्यक है.

पारिवारिक दृष्टि—पारिवारिक जीवन मे आदमी त्याग और सेवा की शिक्षा लेता है इस प्रकार परिवार समाज-संगठन की एक स्वाभाविक इकाई और विश्वबधुत्व की क्रियात्मक पद्धति है भारत और चीन आदि मे इस का बहुत चलन रहा है इस जमाने मे इसका ह्रास होता जा रहा है. आज कल लोगों में वैयक्तिक भावना बढ़ रही है आदमी अपनी कमाई को अपनी ही इच्छानुसार, और अधिकतर अपने ही सुख के लिए खर्च करना चाहता है, अपने भाई या दूसरे रिश्तेदारों की वह चिन्ता नहीं करता. आवश्यकता है कि आदमी अपने स्वार्थ का, समूह के स्वार्थ के साथ, मेल बैठाए.

सयुक्त कुटुम्ब प्रणाली समाजवाद का एक व्यावहारिक स्वरूप है. इसे बनाये रखना चाहिए हा, इसमें जो दोप आ गये हैं, उनका निवारण होना चाहिए उदाहरण के लिए संयुक्त परिवार मे सब को रोटी कपड़ा मिलने का भरोसा होने से कुछ आदमी भरसक श्रम करने और स्वावलम्बी होने का यत्न नहीं करत, वे खाली बैठे दिन काटते हैं यह देख कर जो कमाने वाला होता है, उसे भी उत्पादन-कार्य मे विशेप उत्साह नहीं रहता. इससे घर की आर्थिक दशा खराब हो जाती है; वह वैसी अच्छी नहीं होती, जैसी उस दशा में, जब प्रत्येक समर्थ व्यक्ति अपनी योग्यता के अनुसार खूब मन लगा कर श्रम करता इस प्रकार के उदाहरण समाज मे यथा-सम्भव कम हो, ऐसा प्रयत्न होना चाहिए

सयुक्त-परिवार-प्रथा को धक्का पहुचाने वाली एक खास बात यह है कि प्राय: बडे-बूढो के विचार पुराने ढग के होते हैं इधर अनेक युवक और युवतिया नये प्रगतिशील विचारों के होते हैं. एक दूसरे के प्रति सहिष्णुता न होने से बहुत से संयुक्त परिवारों में सघर्प बना रहता है, इसका परिणाम अन्ततः यही होता है कि युवक-युवतिया उनसे अलग रहने की तैयारी कर लेते हैं, और

संयुक्त परिवार समाप्त हो जाता है. आवश्यकता है कि बड़े-बूढ़े उदार दृष्टिकोण वाले हो. पुरानी व्यवस्था उनके समय मे अच्छी रही हो तो भी उन्हे उसको युवको पर बलपूर्वक लादने की कोशिश न करनी चाहिए. साथ ही युवकों को यथा-सम्भव बड़े-बूढो का दृष्टिकोण समझने का प्रयत्न करते रहना चाहिए, और जब उनकी कोई बात वे न मान सकें तो भी उनके प्रति आदर-भाव और सेवा-सुश्रुषा में किसी प्रकार कमी न आने देना चाहिए ऐसे व्यवहार से पारिवारिक संघर्ष का अवसर कम आएगा. और संयुक्त-परिवार-प्रथा की रक्षा मे सहायता मिलेगी.

सामाजिक दृष्टि—हमने भारत की वर्ण-व्यवस्था का उल्लेख किया है उसका उद्देश्य यही था कि समाज मे सब आदमी इस प्रकार अपने-अपने समूह का कार्य करे कि सब का समन्वय होकर समाज व्यवस्था अच्छी तरह बनी रहे और सबकी उन्नति का मार्ग प्रशस्त रहे इस उद्देश्य को भुला दिये जाने से विविध समूहो या वर्णों मे पृथक्ता या विभाजन की भावना बढ़ती गयी ऊच-नीच के भेद भाव ने विषमता उत्पन्न कर दी, समानता और सहयोग के विचार का ह्रास हो गया; यहा तक कि समाज का एक खासा बड़ा भाग अस्पृश्य माना जाने लगा, उसके विकास का मार्ग ही रुक गया

सामाजिक भेद-भावो का श्रम की उपयोगिता अर्थात् उत्पादन पर बहुत हानिकारक प्रभाव पहुँचता है. उदाहरण के लिए बहुधा जब ऐसे चार-छः आदमियो को किसी जगह काम करना होता है, तो वे इकट्ठे नहीं रहते, प्रत्येक अपने रहने और भोजन बनाने की अलग-अलग व्यवस्था करता है; इसमे कितनी असुविधा और अपव्यय होता है, इसका सहज ही अनुमान हो सकता है. खेद है कि ससार के बहुत से आदमियो ने अभी तक यह नहीं समझा कि मनुष्य-मात्र आपस मे भाई-भाई है जो

लोग सिद्धान्त से विश्वबंधुत्व की बात ठीक मानते हैं, उनके भी संस्कार ऐसे पड़े हुए हैं कि व्यवहार में वे अपने उदार दृष्टि-कोण को भूले ही रहते हैं.

मनुष्य जाति को टुकडे-टुकडे करने वाले विकार मुख्यतः निम्नलिखित है. (१) जाति भेद—ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शुद्र तथा इनके अनेक भेद (२) सम्प्रदाय भेद—हिन्दू-मुसलमान, ईसाई-यहूदी रोमनकेथलिक-प्रोटेस्टेंट, शिया-सुन्नी आदि (३) वर्ण भेद—गौरांग, पीत वर्ण, श्याम वर्ण आदि. इस प्रकार के सब भेद-भाव मानवता के बीच में खाइयाँ बनाये हुए हैं इनके आधार पर किया हुआ कार्य-विभाग अत्यन्त अनिष्टकारी है. निदान, समाज की प्रगति और कल्याण के लिए श्रम-समन्वय की विचार-धारा के अनुसार व्यवहार होना चाहिए

प्रादेशिक दृष्टि—किसी उद्योग धंधे की विविध क्रियाएं कई कई और दूर दूर के स्थानो में होना कितना हानिकारक है, यह एक उदाहरण से स्पष्ट हो जाएगा आजकल भारत में कुछ बुनाई हाथ के करघो पर होती है और इसके लिए मिल का सूत काम में लाया जाता है इस पर विचार कीजिये. देहात कपास पैदा करते हैं पर वे उसके अधिकांश भाग को बोरों में भर कर पास के कस्बो और शहरो में भेज देते हैं वहा वह कारखानों में ओटी जाती है और उसकी गाठे बाधी जाती है वहा से उन शहरो में भेजी जाती है जहा कातने की मिले हैं. इन स्थानों में गांठे खोली जाती हैं, रूई धुनी जा कर उसकी पूनिया बनायी जाती हैं तब उसे काता जाता है. फिर सूत की गाठे बाध कर उसे गांवो में भेजा जाता है. यहा हाथ-करघो से बुनाई होती है बुने हुए कपडे का बहुत सा हिस्सा बिकने के लिए फिर कस्बो या शहरो में भेजा जाता है. इसमे माल लाने-लेजाने और बांधने-खोलने की कितनी व्यर्थ की मेहनत होती है. यदि

गांव के आदमी अपने यहा ही ओटने, धुनने, कातने और बुनने की व्यवस्था करले तो कितना खर्च सहज ही बच सकता है

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि किसी प्रकार के उद्योग-धंधे का, खासकर जो मनुष्य की प्रारम्भिक आवश्यकताओ की पूर्ति करते हैं, उनका कार्य गावो और शहरो मे विभाजित न हो ; प्रादेशिक दृष्टि से उत्पादन मे हमारी दृष्टि श्रम-विभाग या कार्य-विभाग की ओर न होकर श्रम-समन्वय की ओर होनी चाहिए

भौगोलिक या राष्ट्रीय दृष्टि—कार्य-विभाग एक सीमा तक देश-देश मे भी होता है जिस देश मे जो माल पैदा करने की विशेष सुविधा होती है, वह देश उस माल को पैदा करे और अपने लिए आवश्यक अन्य पदार्थों को उन दूसरे देशो से लेले, जिन्हे उन पदार्थों को पैदा करने की विशेष सुविधा हो—ऐसी व्यवस्था से सारी दुनिया को अधिक से अधिक लाभ होता है, इसे सिद्धान्त रूप से स्वीकार करके मुक्त द्वार व्यापार-नीति का चलन हुआ इस नीति को अवलम्बन कर इगलैंड ने खेती करना प्रायः छोड ही दिया वह एक औद्योगिक देश बन गया वह अपने भोजन के पदार्थों तथा उद्योग-धंधो के लिए आवश्यक कच्चे सामान के लिए दूसरो पर आश्रित रहने लगा ऐसी अर्थनीति का दुष्परिणाम युद्ध-काल मे खास तौर से सामने आता है वैसे भी ऐसी परिस्थितिया आ सकती है कि बाहर का सामान उचित समय पर और यथेष्ट परिमाण मे न मिल सके और सर्वसाधारण के लिए घोर सकट उपस्थित हो जाय. अस्तु, प्रत्येक राष्ट्र को अपनी प्राथमिक आवश्यकताओ के लिए स्वावलम्बी होना चाहिए इस प्रकार भौगोलिक या राष्ट्रीय दृष्टि से भी हमे श्रम-विभाग या कार्य-विभाग नही चाहिए, अर्थात् कुछ देश केवल खेती करने वाले हो, और कुछ उद्योग धधो वाले हो, ऐसा न होकर सब को खेती और उद्योग धंधो से

यथा-सम्भव मिला जुला उत्पादन करना चाहिए यह श्रम-समन्वय ही मानव जाति के लिए कल्याणकारी है

विशेप वक्तव्य—जैसा श्री नरहरि परिख ने 'मानव अर्थ-शास्त्र' में कहा है, प्रत्येक कार्य-विभाग—चाहे वह समाज के जुदा-जुदा वर्गों के बीच हो, या एक उद्योग की जुदा-जुदा क्रियाओं को करने वालो के बीच हो, या शहरों और गावो के बीच हो, अथवा एक देश के जुदा-जुदा भागो के बीच हो या भिन्न-भिन्न देशो के बीच हो--इसी अवस्था मे अभीष्ट है, जब जिन-जिन के बीच यह चलता हो, उन सब के हित के लिए हो. वर्तमान संसार में सास-बहु का सा कार्य-विभाग चल रहा है सास बहु से कहती है—'तू घर आयी है तो अब हम दो जने है. अब हम काम का बटवारा कर ले ; तू रसोई कर मैं जीमू ; तू बिस्तर बिछा, मैं सोऊँ इस प्रकार का कार्य-विभाग औद्योगिक दृष्टि से उन्नत और अवनत देशो मे, और शहरो गांवो में, पूंजीपतियो और श्रमियो मे, जमींदार और किसान मे, ऊची कही जाने वाली जातियो और नीची मानी जाने वाली जातियो में, गौराग या श्वेत वर्ण और अश्वेत वर्णो में चल रहा है इसका आधार शोषण है. उत्पादनमें किसी का शोषण न होकर सब का पोषण हो--यह कसौटी होनी चाहिए, इसलिए हमारी उत्पादन पद्धति का आधार कार्य-विभाग या श्रम-विभाग न होकर श्रम-समन्वय होना चाहिए

हम सब मिल जुल कर काम करे, कोई अपने स्वार्थ और दूसरो के शोषण का विचार न करे, हम अपने बीच में तरह-तरह की विभाजक दीवारे खडी न करे : यदि हम किसी विशेप विषय में दूसरो की अपेक्षा अधिक उन्नत या विकसित हो, तो हमारी उन्नति या विकास मानवता की वृद्धि में सहायक हो

सतरहवां अध्याय

पूंजी

बिना दूसरे के मर्म-स्थान को आघात पहुंचाये, बिना कठोर कर्म किये, बिना मछुवाहे की तरह निर्दयी होकर हिन्सा किये बड़ी सम्पत्ति प्राप्त नही होती

—नीति वाक्य

आज कल पैसा जरूरी चीज है, लेकिन मेहनत से ही दौलत पैदा होती है, असल दौलत इन्सान की मेहनत है अगर हमारे देश में सोना-चाँदी ज्यादा नही है तो क्या; इन्सान तो है, जो मेहमत करके दौलत पैदा कर सकते हैं.

—जवाहरलाल नेहरू

पूंजी क्या है ? पूजी वह धन है, जो और धन को पैदा करने मे काम आए, धन किसे कहते है, यह पहले बताया जा चुका है साधारणतया आदमी, पूजी का अर्थ रुपया-पैसा समझते हैं, परन्तु आजकल पूजी मे नकद रुपये का भाग बहुत कम होता है. उसमे अधिकतर कच्चा पदार्थ, हल, बैल, बीज, श्रमियो के मकान, कार्यालय, कारखाने, औजार, मशीन आदि होती हैं

अतिरिक्त उत्पादन और अपहृत श्रम—पूंजी बचत का फल है आदमी जितना धन पैदा करते हैं, यदि उस सब को खर्च कर डाले, भविष्य मे धनोत्पादन करने के लिए, उसमे से कुछ बचा कर न रखे, तो पूजी कहाँ से आए. अतः खर्च करने मे मितव्ययिता का विचार रहना आवश्यक है; फजूल-

खर्ची रोकी जानी चाहिए. इसके लिए मनुष्य को अपनी आवश्यकताओं पर नियंत्रण रखना होता है जो लोग पूजी इकट्ठी करते हैं, उनमे से कोई कोई बहुत ही कठिनाईया सहते हैं; यहा तक कि अपने भोजन-वस्त्र में भी बहुत किफायत से काम लेते हैं इस प्रकार वे अपने साधारण उत्पादन से भी कम मे अपना काम चला कर जीवन व्यतीत करते हैं, और थोडी-थोडी पूँजी जमा करते जाते हैं.

पूजी सचय करने का दूसरा रूप यह है कि हम जितना खर्च करें, उससे अधिक पैदा करें कुछ खास दशाओ में और एक सीमा तक ऐसा हो सकता है पर साधारणतया यह बात बडे पैमाने पर नहीं होती. किन्तु इसका भी एक रास्ता निकाला गया है. चतुर चालाक आदमी दूसरे मनुष्यो (श्रमियो) द्वारा धन पैदा कराके उसे सब में अच्छी तरह नहीं बाटते; वे उत्पन्न धन में से दूसरो को साधारण मजदूरी देकर शेष सब (जो काफी बडा हिस्सा होता है) अपने लिए रख लेते हैं, और इस में से कुछ हिस्सा अपने इने-गिने खास सहायको को देकर उन्हे संतुष्ट रखते हैं, जिससे इन्हे उनका सहयोग मिलता रहे आधुनिक काल मे भाप और बिजली आदि की शक्तियो से चलने वाले बड़े-बड़े कल कारखानो से इस दिशा में बहुत सुविधा होने लग गयी है उनके कारण अब अर्थव्यवस्था ऐसी है कि जब हजारों मजदूरो को प्रति व्यक्ति पचास्सी-सौ रुपये माहवार मिलते हैं और ये जैसे-तैसे अपना निर्वाह करते हैं, तो दूसरी ओर मैनेजर आदि को कई-कई हजार रुपये प्रति मास मिलते हैं, और मिल-मालिक का तो कुछ हिसाब ही नहीं, उसे तो लाखों रुपये मिलने में भी कोई रोक टोक नहीं. ये लोग खूब ठाठ-बाठ से रहते हैं, मनमाना खर्च करते हैं; फिर भी इनके पास काफी धन बचा रहता है, जिसे ये और अधिक धन

पैदा करने में लगाते रहते हैं इस तरह इनकी पूंजी अधिकाधिक बढ़ती जाती है इस पूंजी पर मजदूरों का वैसा ही अधिकार होना चाहिए, जैसा मिल-मालिक आदि का; क्योंकि उन्होंने कुछ कम घंटे या कम मेहनत का काम नहीं किया है. वास्तव में उन्होंने अधिक कष्ट उठाया है, जब कि मिल-मालिक आदि ने शरीर-श्रम न करके अपनी बुद्धि का ही उपयोग किया है जो कि स्वार्थ-साधन के बजाय सेवा- कार्य में होना चाहिए था अस्तु, वर्तमान बड़ी-बडी पूंजी के कारोबार प्राय अपहृत श्रम के मूर्तिमान रूप हैं और मानव जाति के दुर्भाग्य की घोषणा कर रहे हैं.

समाज में आर्थिक विषमता न होते हुए पूँजी की वृद्धि आवश्यक है—समाज की उन्नति या विकास के लिए विविध वस्तुओ और कामो की जरूरत है. उनके लिए धन की आवश्यकता होने से यह स्वय-सिद्ध है कि प्रत्येक देश मे पूजी बढ़ायी जाने के यथेष्ट प्रयत्न हों. वर्तमान अर्थशास्त्र भी इस बात पर जोर देता है, परन्तु सर्वोदय अर्थशास्त्र मे और उसमे यह अन्तर है कि यह समाज मे आर्थिक विषमता पैदा करने वाली बातो का निवारण करके पूजी द्वारा ऐसे धन की तथा इस प्रकार उत्पत्ति बढ़ाने का आदेश करता है, जिससे किसी वर्ग विशेष का ही हित न होकर समस्त समाज का सुख और विकास बढने का मार्ग प्रशस्त हो प्रत्येक देश मे पूजी की वृद्धि होनी चाहिए; हाँ, पूजी स्वयं लक्ष्य नहीं है, उसका उद्देश्य है लोक-सेवा या सर्व-हित.

भारतवर्ष मे पूंजी की वृद्धि के लिए जनता मे शिक्षा के अतिरिक्त, मितव्ययिता और दूरदर्शिता के भावो का प्रचार होना चाहिए ; ब्याह-शादी, नाच-रग और जन्म-मरण आदि सम्बन्धी फजूलखर्ची की विविध रीति-रस्मे हटनी चाहिए; तथा खेती और उद्योग-धन्धो आदि की उन्नति की जानी चाहिए और इसके लिए इनमें काम आने वाले विविध औजारो

तथा पद्धतियों के सम्बन्ध में उपयोगी आविष्कार होते रहने चाहिए इस समय मशीनों और यन्त्रोद्योगों को बहुत महत्व दिया जा रहा है, इससे जो हानि है, उनका विचार अन्यत्र किया गया है

पशुओं की उन्नति—पहले कहा जा चुका है कि पशु भी पूंजी का अंग है, इसलिए पूंजी की वृद्धि का एक कार्य पशुओं की उन्नति करना तथा उनका स्वास्थ्य सुधारना है अनेक स्थानों में इस ओर काफी ध्यान नहीं दिया जाता उन्हें प्राय. मैला-कुचैला पानी तथा घटिया दर्जे का और कम चारा दिया जाता है, इनसे वे कमजोर और रोगी रहते हैं, तथा उनकी आयु कम होती है इन बातों का सुधार होना चाहिए आज कल सभी देशों में नगरों की वृद्धि होती जा रही है, इससे पशुओं के चरागाहों तक में मकान बनते जा रहे हैं, या उन्हें खेती के लिए जोत लिया जाता है इससे पशुओं को यथेष्ट चारा नहीं मिलता इसका प्रबन्ध होने की आवश्यकता है पशुओं के रोगों का इलाज करने की व्यवस्था खास-खास स्थानों में ही नहीं, प्रत्येक बड़े गांव या ग्राम-समूह में होनी चाहिए पशुओं की नस्ल सुधारने की भी यथेष्ट व्यवस्था होने की भी जरूरत है

बहुत से पशु मनुष्य के मांसाहार के लिए मारे जाते हैं यद्यपि आदमी क्रमशः शिकारी अवस्था को छोड कर अधिकाधिक पशु-पालक बनता जाता है. तथापि अभी तक उसकी मांसाहार की प्रवृत्ति काफी बनी हुई है कुछ अंश में तो भौगोलिक स्थिति ही इसका कारण है. जहां आदमी को अपने निर्वाह के लिए अन्न या फलादि पर्याप्त मात्रा में नहीं मिलते, वहां उसका मांसाहारी होना स्वाभाविक है पर बहुत से स्थानों में आदमी केवल स्वाद के लिए पशु-पक्षियों को मारता है कितने ही पशु खासकर चमडे के लिए मारे जाते हैं आधुनिक सभ्यता में चमडे का इस्तेमाल कितना बढ़ गया है, यह सर्वविदित है यदि मरे हुए जानवरों

की खाल से ही बने चमड़े का उपयोग किया जाय तो अनेक जानवर मारे जाने से बचाये जा सकते हैं कुछ देशो में ऐसा सरकारी नियम है कि दूध देने वाले (मादा) पशुओ को न मारा जाय, पर बहुत से देशो मे इतने विवेक का भी परिचय नहीं दिया जाता.

इससे अधिक अमानुषिक बात है, गर्भवती भेडो आदि को इस लिए मारा जाना कि उनके गर्भ के बच्चे का मास बहुत स्वाद, तथा चमड़ा या रोआं बहुत कोमल समझा जाता है और उसके इतने दाम उठ जाते हैं कि मा और बच्चे दोनो को मारने मे नफा ही रहता है. भेडो की इस प्रकार की हत्या का उल्लेख सातवे अध्याय मे (वस्त्र के प्रसग मे) हो चुका है. विविध देशो की सरकारों और जनता को यह घातक व्यापार बन्द करने का उद्योग करना चाहिए

याद रहे कि भारत मे बैल ही खेती का प्रमुख साधन है यातायात का भी यह बड़ा सहारा है बैल की जन्मदाता होने, तथा अपने दूध के विशेष गुणो के कारण यहा गौ को माता कहा जाता है इसलिए हमारी अर्थव्यवस्था मे गौ की रक्षा और उन्नति का यथेष्ट ध्यान रखा जाना जरूरी है.

पूँजी का उपयोग लोकहित की दृष्टि से होना चाहिए—आवश्यकता है कि पूजी से सर्वसाधारण को लाभ हो, कुछ थोड़े से व्यक्तियो का स्वार्थ-साधन या भोग विलास की वृद्धि नहीं अतः उत्पत्ति के उपकरणो पर किसी व्यक्ति या सस्था का ऐसा स्वामित्व न होना चाहिए कि उसके द्वारा दूसरो के शोषण से सुविधा हो. प्रत्येक परिवार के पास इतनी पूंजी हो जिससे वह अपनी असली जरूरते पूरी कर सके और साथ ही अपने गांव या नगर के हित मे भी कुछ भाग ले सके. स्थानीय सस्थाओ को अपने गांव या नगर के व्यापक हित का ध्यान रखना चाहिए.

जिन कार्यों के लिए विशेष पूंजी की आवश्यकता हो, तथा जिनका उपयोग देश के किसी खास भाग के लिए न होकर राष्ट्र के हित के लिए हो, उनकी व्यवस्था राष्ट्रीय सरकार द्वारा की जानी चाहिए ऐसे कार्यों का परिमाण स्वभावतः कम ही रहेगा हमे देश की अधिकांश पूंजी का उपयोग विकेन्द्रित रूप में करके उन दोषो से वचना है जो पूंजी के केन्द्रीकरण से होते हैं वर्तमान अवस्था में जहा एक-एक व्यक्ति के पास कुछ इकट्ठी पूंजी है, वे उसका उपयोग 'ट्रस्टी' या अमानतदार के रूप मे करे इसके सम्वन्ध मे आगे 'मुनाफा'-अध्याय मे लिखा जायगा

राष्ट्रीय पूंजी—अब ऐसी पूंजी का विचार किया जाता है, जो सर्वसाधारण के उपयोग के लिए होती है, और जिसके प्रवन्ध या व्यवस्था आदि का कार्य सरकार करती है यह पूंजी खासकर रेल, सडक, तार, डाक, टेलीफोन, रेडियो, खाने, नदिया, वांध, नहरें, समुद्र-तट आदि है सरकार को चाहिए कि इनकी उन्नति करे, परन्तु इसके साथ ऐसी व्यवस्था भी करे कि वे सर्वसाधारण के लिए यथेष्ट उपयोगी हो, ऐसा न हो कि कुछ खास श्रेणी या वर्गों के आदमी ही उनसे विशेष लाभ उठा सकें. उदाहरण के लिए सडको और रेलो के वारे मे कुछ खुलासा विचार आगे व्यापार के प्रसग मे किया जायगा

विदेशी पूंजी के उपयोग का सवाल—पूंजी के उपयोग के सम्वन्ध मे एक विचारणीय प्रश्न यह रहता है कि किसी देश की सरकार द्वारा विदेशी पूंजी का उपयोग कहा तक उचित है हम ऊपर कह चुके हैं कि प्रत्येक देश में पूंजी का उपयोग विकेन्द्रित रूप मे होना चाहिए सरकार द्वारा यातायात, सवाद-वाहन या सिंचाई आदि के ऐसे ही कार्य किये जाने चाहिऍं, जो उसके लिए करना अनिवार्य हो. इस प्रकार उसे पूंजी की आवश्यकता कम ही होनी चाहिए यह पूंजी उसे वहुधा अपने देश की

ही जनता से भिन्न जायगी, खासकर जब वह जनता के श्रम के उपयोग की उचित व्यवस्था करेगी और नकद पूजी को विशेष महत्व न देगी. फिर, जब कोई देश, विदेशी पूजी का उपयोग करता है, उस पर ऋण देने वाले राष्ट्र का प्रभाव पड कर उसका आर्थिक दृष्टि से पराधीन हो जाना स्वाभाविक है. यही नहीं, उसकी राजनीति भी एक सीमा तक दूसरे देश की सरकार द्वारा नियन्त्रित हाने की आशका रहता है इस प्रकार वर्तमान अवस्था मे किसी देश मे विदेशी पूजी से काम लेना खतरे से खाली नहीं आजकल कितने ही देश औद्योगीकरण के लिए विदेशी पूजी का उपयोग करने के इच्छुक रहते है, उन्हे इस विषय में सतर्क रहने की आवश्यकता है खासकर उन देशो मे, जहां भारत की तरह जनसख्या यथेष्ट है, लोगो को ग्रामोद्योग या हाथ-उद्योग को ही बढ़ाना चाहिए, जिससे पूजी की विशेष आवश्यकता ही न हो इस विषय पर आगे यन्त्रोद्योग शीर्षक अध्याय मे विशेप विचार किया जायगा

पूंजीवाद को हटा कर शोषणहीन समाज का निर्माण— वर्तमान अर्थव्यवस्था जन-शक्ति के आधार पर न होकर पूजी के आधार पर है श्रमियो का शोषण हो रहा है, यह दो प्रकार से है—एक तो व्यवस्था, प्रबन्ध या इन्तजाम के नाम पर, और दूसरे केन्द्रित उत्पादन की चीजो का वितरण करने के बहाने हाथ-उद्योग या ग्रामोद्योग स्वावलम्बी और विकेन्द्रित उत्पादन का प्रतीक है इसमे वितरण की आवश्यकता तो अपने-आप खतम हो जाती है, और जब इस पद्धति को समझ-बूझ कर अपनाया जाय अर्थात् इन्तजाम भी जनता स्वय ही सहयोगी आधार पर कर ले, तब शोषण के मार्ग बन्द हो जाते है. इस प्रकार स्वावलम्बी और विकेन्द्रित, उत्पादन पद्धति अपनाने से ही जनता शोषण से मुक्त हो सकती है ग्रामोद्योग,

विकेन्द्रित उत्पादन और वितरण के सम्बन्ध में खुलासा विचार आगे किया जायगा; यहां संक्षेप में यह सूचित करना है कि इस समय जो पूंजी का प्रमुत्व है, और श्रम अर्थात् सर्वसाधारण का शोषण हो रहा है, उसे समाप्त कर शोषणहीन समाज का निर्माण किया जाना चाहिए आवश्यकता है कि पूंजीपति अर्थात शोषक समझ बूझ कर शारीरिक श्रम अपनाकर 'मजूर' बन जाय, मजदूरों में विलीन हो जाय, अन्यथा वे मजूरों द्वारा समाप्त किये जानेके लिए तैयार रहें. आजके युग की सब से बडी और मुख्य माग शोषणहीन समाजको रचना करना है और यदि हम उस माग को पूरी नहीं करेंगे तो जमाना हमारे लिए बैठा नहीं रहेगा

पूँजी बनाम श्रम—आज कल पूंजी की तुलना में श्रम की बहुत कुछ उपेक्षा की जाती है यहां तक कि उसे पूंजी बढाने का साधन मान लिया गया है बडे-बडे यन्त्रोद्योगों में निरंतर यह प्रयत्न होता रहता है कि जिस काम को एक हजार श्रमी करते हैं, उसे करने के लिए ऐसी मशीन रूपी पूंजी का आविष्कार हो जाय, जिस के द्वारा उसे केवल सौ-दो सौ और फिर क्रमशः उससे भी कम श्रमी कर सके मशीनों और इमारतों की वृद्धि और विस्तार मे देश का वैभव माना जाता है उनमें काम करने वाले श्रमियों की कमी पर गर्व किया जाता है यह नीति विनाशकारी है हमे याद रखना चाहिए कि कोई राष्ट्र लोहे और पत्थरों का, अर्थात् आलीशान इमारतों आदि का नहीं होता उसका जीवन-प्राण तो श्रम करने वाली जनता ही होती है यदि श्रम है तो आवश्यक सम्पत्ति या पूंजी का निर्माण सहज ही हो सकता है, और, आखिर पूंजी का उपयोग भी तो इसी में है कि वह जनता के हित में लगे निदान, पूंजी और श्रम में प्राथमिकता तो श्रम को ही मिलनी चाहिए.

अठारहवां अध्याय

खेती

मेरी आखिरी आकांक्षा यह है कि हर गांव एक-एक कुटुम्ब बन जाय; सब मिलकर जमीन जोतें, पैदा करें, खाए-पीए और रहे मैं चाहता हूँ कि हर गांव गोकुल बन जाय.

—विनोबा

पिछले अध्यायों में उत्पत्ति के साधनों—भूमि, श्रम और पूंजी— के सम्बन्ध में लिख चुकने पर अब हम खेती सम्बन्धी विविध प्रश्नों पर सर्वोदय की दृष्टि से विचार करेंगे

भूमि का उचित विभाजन—पहले कहा जा चुका है कि इस समय भूमि विविध राष्ट्रों में तथा प्रत्येक राष्ट्र के सब व्यक्तियों में लोकहित की दृष्टि से विभाजित नहीं है. ऐसी स्थिति में खेती की पैदावार यथेष्ट न होना, तथा जो होती है, उसका जनता में बहुत असमान रूप से बटना स्वाभाविक ही है विविध राज्यों में एक-दूसरे के प्रति, तथा एक राज्य के सब आदमियों में आपस में सहानुभूति और बंधुत्व की क्रियात्मक भावना हो कर ही इस स्थिति में सुधार होना चाहिए इस विषय में खुलासा पहले लिखा जा चुका है प्राकृतिक स्थिति या भूमि के गुणों की भिन्नता के कारण सब स्थानों में किसी परिवार के लिए आवश्यक भूमि का एक ही परिमाण निर्धारित नहीं किया जा सकता, तथापि यह कहा जा सकता है कि एक परिवार के पास इतनी भूमि होनी चाहिए जिसकी पैदावार से उसकी जीवन-रक्षा के पदार्थ यथेष्ट परिमाण में मिल सकें, और जिस पर वह साधारणतया स्वयं ही खेती कर सके जो लोग खेती

करने योग्य न हों, या स्वयं खेती न करते हों, उन्हें जमीन रखने की आवश्यकता नहीं, वे उद्योग धंधों आदि से अपना निर्वाह करें.

खेती में ध्यान देने की बातें—आदमी की मुख्य आवश्यकताएं भोजन, वस्त्र और मकान हैं. खेती करने में इन की पूर्ति का लक्ष्य रहना चाहिए इसलिए

(१) यथा-सम्भव मकानों के लिए ऐसी ही भूमि काम में लायी जाय जो खेती के लिए अयोग्य हो अर्थात् जिस पर खेती न हो सकती हो, या खेती करने से पैदावार की मात्रा बहुत कम होती हो

(२) जहा तक सम्भव हो हर एक बस्ती के आदमियों को अपने भोजन की तथा अन्य प्रमुख आवश्यकताओ की पूर्ति के पदार्थ अपनी बस्ती मे उत्पन्न करने चाहिएं, जिससे वे स्वावलम्बी हों उन्हे दूसरो के आश्रित रहने की जरूरत न हो

(३) हर एक बस्ती को अपने स्थान के लिए आवश्यक उद्योग धधों के लिए जिस-जिस और जितने-जितने कच्चे माल की आवश्यकता हो, उसे वह माल भी उतनी मात्रा में स्वय पैदा करने का प्रयत्न करना चाहिए.

(४) अपनी जरूरत से अधिक पैदा करने मे अपने अन्य बधुओ की सहायता करने का लक्ष्य रहे, मुनाफा कमाने का नहीं

भूमि का सर्वोत्तम उपयोग; संतुलित खेती— अनेक स्थानो में यह शिकायत है कि खेती के लिए इतनी भूमि नहीं है, जिससे वहां जनता की भोजन-वस्त्र सम्बन्धी आवश्यकताओ की पूर्ति हो सके. उदाहरण के लिए भारत में प्रति व्यक्ति के हिसाब से औसतन ०७ एकड भूमि आती है, और इससे इतनी पैदावार नहीं होती कि सब निवासियों का अच्छी तरह निर्वाह हो जाय भूमि की यह कमी मालूम होने का मुख्य कारण

यह है कि हमारा भोजन संतुलित नहीं है, हम अधिकतर अन्न पर निर्भर रहते है, यह ठीक है कि एक एकड भूमि मे पैदा होने वाला अन्न उसमे पैदा हो सकने वाले अन्य पदार्थों की अपेक्षा अधिक 'केलोरी' या जीवन-मान (शरीर के लिए आवश्यक उष्णता की मापक इकाइयां) देता है, परन्तु अन्न से शरीर-रक्षक भोजन के अश कम मात्रा मे मिलते है अगर हम ये अश लेने के लिए केवल अन्न पर ही निर्भर रहे तो अन्न की बहुत बड़े परिमाण में आवश्यकता होती है इसके विपरीत, यदि अन्न के पूरक के रूप मे फल, सब्जी, दूध और उसकी बनी चीजे, गुड, मेवा और तेलहन आदि का उपयोग करे तो संतुलित भोजन के विविध भागो की पूर्ति, केवल अन्न की अपेक्षा, इन पदार्थों के कम परिमाण से ही हो सकती है. गुड मे तथा आलू आदि कन्द-मूल मे, प्रति एकड़ अन्न की अपेक्षा जीवन-मान भी अधिक होता है इस प्रकार सतुलित भोजन से दोहरा लाभ है इसमे प्रति व्यक्ति भूमि की आवश्यकता कम होती है, और साथ ही इससे शरीर को ठीक और स्वस्थ रखने के लिए आवश्यक तत्व उचित परिमाण मे मिल जाते है इसका विचार करके खेती करने से भूमि की कमी की समस्या सहज ही हल हो जाती है प्रत्येक बस्ती की भूमि विविध फसलें पैदा करने के लिए इस प्रकार विभाजित की जानी चाहिए जिससे वहा की जनता की सतुलित भोजन, वस्त्र आदि की प्रमुख आवश्यकताओ की पूर्ति हो जाय

आगे के नक्शे मे यह दिखाया जाता है कि एक लाख आबादी के लिए सतुलित खेती करने के वास्ते भूमि का विभाजन किस प्रकार होना चाहिए इसमे ऐसे सतुलित शाकाहार या निरामिष भोजन का हिसाब लगाया गया है कि औसत दर्जे के आदमी को प्रति दिन २८४० जीवन-मान तथा प्रति वर्ष २५ गज कपडा मिल जाय मासाहारियो के लिए दूध के बजाय १० तोले मांस या मछली और एक अडा रखा जा सकता है

पदार्थ	तोले प्रति दिन	जीवन-मान	सेर प्रति वर्ष	एक लाख जनता के लिए			भूमि प्रति शत
				आवश्यक भूमि एकड़ों में	बीज तथा घास के लिए १५% अतिरिक्त भूमि	भूमि का योग एकड़ों मे	
१—भोजन							
अन्न	४०·००	१६००	१८२·५०	४३,४००	६,५१०	४६,९१०	६५·२
दाल	५·००	२००	२२·८०	५,४००	८१०	६,२१०	८·०
गुड़	५·००	२००	२२·८	१,२००	१८०	१,३८०	१·८
मेवा	२·५०	१४५	११·४०	२,६००	३९०	२,९९० }	८·४
तेल	१·२५	२५५	५·७०	३,०००	४५०	३,४५० }	
घी	१·२५	—	५·७०	—	—	—	—
दूध	३०·००	२४०	१३६·८५	—	—	—	—
सब्जी	२०·००	४८	९१·२५	१,६००	२४०	१,८४०	२·४
आलू आदि	१०·००	१००	४५·६२	१,०००	१५०	१,१५०	१·५
फल	१०·००	५२	४५·६२	६००	१३५	१,०३५	१·४
२—कपड़ा							
रुई			६·२५	७,५००	१,१२५	८,६२५	११·३
योग		२८४०		६६,९००	९,९९०	७६'५९०	१००·०

इसमें सारे भारत के अंकों के आधार पर मोटा हिसाब लगाया गया है; अवश्य ही इसमें स्थान-भेद से अन्तर रहेगा. अगर हम प्रत्येक व्यक्ति को आठ छटाक अन्न देते हैं तो इसका अर्थ यह है कि ६५.२ प्रतिशत भूमि अन्न की खेती में लगनी चाहिए इसी प्रकार अन्य बातें समझी जा सकती हैं यह हिसाब एक लाख आबादी के लिए लगाया गया है. अगर कोई गांव या मिली हुई इकाई इन पदार्थों को इस अनुपात में पैदा करे तो वहां के आदमियो की प्रमुख आवश्यकताए पूरी हो जायगी इस लिए हमें इस प्रकार की सतुलित खेती का लक्ष्य रखना चाहिए किसानों को अपनी भूमि में खास-खास फसलो को ही पैदा करने की अनुमति दी जानी चाहिए; भूमि उनकी होते हुए भी, उन्हे उसका उपयोग समाज-हित की दृष्टि से करना चाहिए; अपने मुनाफे के लिए नहीं.*

व्यापारिक फसलों पर प्रतिबन्ध—इससे यह स्पष्ट ही है कि 'व्यापारिक' पैदावार बहुत सीमित कर दी जानी चाहिए समझदार किसान स्वयं ऐसा करेंगे, तथापि पचायतो द्वारा ऐसे पथ-प्रदर्शन की व्यवस्था होनी चाहिए कि किसान किस-किस फसल को पैदा करे जिस भूमि पर फसलें मुनाफे की दृष्टि से पैदा की जायं, उन पर मालगुजारी काफी अधिक लगायी जाय

खेती की उन्नति; बैलों का सवाल—खेती की उन्नति के साधारण उपाय सर्वविदित है. अतः यहां उनका विचार न कर बैल, सिंचाई और खाद के बारे मे कुछ बातो का उल्लेख किया जाता है भारत में बैलो की संख्या बहुत काफी है, परन्तु अधिक-तर बैल कमजोर हैं, उनसे यथेष्ट काम नहीं होता, वे प्रायः

* श्री जो का. कुमारप्पा की 'इकानामी आफ परमेनेन्स', भाग २, से

किसानों के लिए भार-रूप हैं. अच्छे बैल यहा आवश्यकता से कम हैं. इसलिए यहा बैलो की नस्ल सुधारने और उन्हें हृष्ट-पुष्ट बनाने की बहुत आवश्यकता है

पर कुछ दशाओं मे इससे भी समस्या हल न होगी आवश्यकता होने पर गायो से भी खेती आदि का काम लिया जा सकता है मिस्र मे इसकी सामान्य प्रथा है गायों से काम लेने से उनका दूध कम नहीं होता, और न उनके स्वास्थ्य पर ही कुछ हानिकारक प्रभाव पड़ता है. जब गाय खेती आदि का काम करने लगेगी तो उनकी उपयोगिता बढ़ने से उन्हे भली भांति खिलाया पिलाया भी जा सकेगा. यही बात सांडो के बारे मे विचारणीय है उनसे काम न लेने के सम्बन्ध में हमारी जो अविवेक-पूर्ण विचार-धारा बनी हुई है, उसे छोड़कर हमें अपने पशु-धन को, और उस के साथ खेती को, उन्नति करनी चाहिए

सिंचाई; कुए, तालाब और बांध—ससार में बहुत कम देश ऐसे हैं, जहा सिचाई के साधनो की पूर्ण व्यवस्था हो भारत मे तो ७० प्रतिशत भूमि ऐसी है कि उसमें उचित वर्षा होने से ही ठीक उपज हो सकती है. अतिवृष्टि और अनावृष्टि दोनो ही बहुत हानिकर है. इन्हे रोकने के लिए छोटे-छोटे बाधों और तालावो की जरूरत है अधिक वृष्टि होने पर खेतों का पानी बाधो तथा तालाबो मे भेजा जा सकता है, आर कम वृष्टि होने पर उनमें एकत्रित जल से सिचाई हो सकती है भारत में पहले छोटे-छोटे तालावो की संख्या बहुत थी. पर इधर वैयक्तिक स्वार्थवश उनके खेत बना लिये गये आवश्यकता है कि पुराने तालाबो को ठीक किया जाय और जहां-तहाँ नये तालाब, और बांध बनाये जाय. यहाँ बहुत से कुए भी नष्ट हो गये हैं, अथवा उनमें मिट्टी गिर जाने से उनमें पानी बहुत कम रह गया है

इनकी मरम्मत आदि की जानी चाहिए. किसानो को ऐसे कामो के लिए यथेष्ट प्रोत्साहन और सहायता दी जाने की ज़रूरत है.

बिजली के पम्पों और नहरों से हानियां भी हैं— सिंचाई के दो बड़े साधन बिजली के पम्प और नहरें हैं इनसे बहुत लाभ होता हुआ प्रतीत होता है, पर कुछ सज्जनो के मत से हानियां और भी अधिक है उदाहरण के लिए श्री जो. का. कुमारप्पा ने लिखा है कि 'बिजली के पम्प के आ जाने से जमीन के नीचे का पानी इतना गहरा उतर जाता है कि तालाब और कुओ मे नहीं आ पाता. यही नहीं, पुराने झाड़ भी सूख जाते है, क्योंकि जमीन के नीचे का पानी उनकी जड़ो से नीचे उतर जाता है ये सूखे झाड़ काट डाले जाते हैं और मिट्टी बह जाने के लिए खुली कर दी जाती है. हमारी जमीन की हालतो से यह स्पष्ट है कि जो जरूरी है वह यह नहीं कि हमारी जमीन के नीचे के पानी को खूब खींचा जाय, बल्कि यह कि समुद्र मे व्यर्थ बह जाने वाले पानी का सग्रह किया जाय. दूसरे शब्दो मे कहे तो यह कि बिजली के पम्पो की अपेक्षा हमे नदीं, नालो पर छोटे-छोटे बांध बांधने की ज्यादा जरूरत है, जिससे बरसात के पानी का संग्रह किया जा सके'

इसी प्रकार नहरो की बात है. इनके भी फायदे तो सब बताते हैं, पर प्रायः इनसे होने वाली हानियो की ओर ध्यान नहीं दिया जाता. नहर की व्यवस्था अनिवार्यतः सरकार के अधीन होने से इसमे परावलम्बन तो है ही. इसके अतिरिक्त नहरो से प्रायः ये हानियां होने की सम्भावना रहती है—(१) खेतो मे बालू पहुँचने से पैदावार पर बुरा असर पड़ता है, (२) रेह या अन्य खाद की अधिकता वाले क्षेत्र से बहकर

आने वाला पानी खेतो को बजर बना डालता है. (३) नहरों के कारण वर्षा के पानी का स्वाभाविक बहाव रुक जाता है, पानी सड़ता है, सील की जगह पैदावार कम या खराब होती है आस पास की बस्तियों के मनुष्यो तथा पशुओ का स्वास्थ्य बिगडता है.

प्रत्येक देश की सरकार को चाहिए की बिजली के पम्पो या नहरों द्वारा सिंचाई का विस्तार करने से पूर्व अपने यहां की भूमि पर इसके पडने वाले प्रभाव की विशेषज्ञों द्वारा अच्छी तरह जांच करा ले; और केवल उन्हीं स्थानो में इसका विस्तार करे, जहा यह बहुत उपयोगी साबित हो.

कृषि-यंत्रीकरण से लाभ हानि—बहुत से देशों में कितनी ही भूमि ऐसी है, जिसमें प्रयत्न करने से खेती होना सम्भव है, पर की नहीं जाती. उदाहरण के लिए कही-कहीं कांस या अन्य घास उगी रहती है, जिसकी जड़े जमीन के अन्दर बहुत गहराई तक गई हुई होती हैं इस घास को निकालना और इस भूमि में हल चलाना या बीज बोना आसान नहीं है. ट्रेकटरो की सहायता से यह काम हो सकता है पर क्या साधारण भूमि में भी ट्रेक्टरों आदि मशीनो से काम लेना अच्छा है ? पहले भारत की दृष्टि से विचार करें अभी तो मशीने विदेशो से मगाने का सवाल है, पर मान लो कुछ समय बाद ये यहा ही बनायी जा सकती हैं. पर इन्हे चलाने के वास्ते पेट्रोल की जरूरत होती है. इसके लिए हमें दूसरे देशो पर निर्भर रहना होगा. दूसरी ओर हमारे यहां मनुष्य-शक्ति की कमी नहीं, यहा तो उसका यथेष्ट उपयोग करने की ही समस्या है, जिससे हर आदमी को काम अर्थात् आजीविका का साधन प्राप्त हो बडे-बडे यत्रो से तो बेकारी बढ़ने वाली ठहरी इस प्रकार यहा कुछ खास दशाओ में और बहुत परिमित सीमा तक ही उनका उपयोग किया जाना चाहिए

अमरीका में यह अनुभव में आया है कि ट्रेक्टरों या बड़ी मशीनों की सहायता से खेती की उपज उस समय तो बहुत बढ जाती है, पर पीछे इस वृद्धि का परिमाण घट जाता है, वृद्धि को बनाये रखने के लिए या तो रासायनिक और खनिज खाद दिये जाते हैं, (जिन के विषय मे हम आगे लिखेंगे.) या फिर उस भूमि को छोड़कर दूसरी नयी ज़मीन मे खेती की जाती है यह स्पष्ट ही है कि जिन देशो मे भूमि कम है, और सारी भूमि पर ही निरतर खेती होती है, वहां यह विधि उपयोगी नहीं हो सकती. ट्रेक्टरो से खेती की उपज मे यदि कुछ वृद्धि होती है तो वह अस्थायी ही होती है, इसलिए दीर्घकालीन हित की दृष्टि से उनका उपयोग वांछनीय नहीं है.

वैज्ञानिक खेती की आवश्यकता—बहुधा यांत्रिक खेती और वैज्ञानिक खेती का भेद भुलाकर दोनो को एक ही समझ लिया जाता है वास्तव मे ये अलग-अलग है. 'वैज्ञानिक खेती वह है जिसमे इस बात का अच्छी तरह विचार रखा जाय कि अमुक फसल की पैदावार बढाने के लिए किस प्रकार की भूमि तथा कैसी आबोहवा का क्षेत्र उपयोगी होगा, उसमे खाद कैसा, कितना और किस प्रकार दिया जाय, उसमें पानी कब और कितना देना ठीक होगा. इसके विपरीत, यांत्रिक खेती में खेती सम्बन्धी विविध प्रक्रियाओ को यन्त्रो द्वारा करने पर जोर दिया जाता है, इसका मुख्य उद्देश्य मज़दूरो को कम करना होता है (पैदावार बढाना नहीं) इस प्रकार वैज्ञानिक खेती यन्त्रों के बिना भी हो सकती है. प्रत्येक देश मे खेती वैज्ञानिक पद्धति से होने की जरूरत है. भारत मे इस ओर यथेष्ट ध्यान दिया जाना चाहिए

खाद के सम्बन्ध में विचार—वर्तमान अवस्था में, अनेक स्थानो में प्राकृतिक खाद का यथेष्ट उपयोग नहीं किया

जाता भारत मे खासकर गाव में गोवर खूब होता है, परन्तु खाद के लिए उसके प्राय उतने ही हिस्से का उपयोग किया जाता है, जो वर्षा ऋतु में मिलता है. शेष आठ माह तो गोवर के कंडे या उपले वनाये जाकर उनसे इधन का काम लिया जाता है. आवश्यकता है कि गावो के पास जगल और चरागाह काफी हो, जिससे वस्ती की हवा शुद्ध होने के अतिरिक्त लोगो को इधन और चारा यथेष्ट परिमाण में मिल सके; और गोवर जलाने की जरूरत न रहे.

इसके अलावा यह भी विचार करना चाहिए कि गावो में आदमी मल-मूत्र और कूडा कचरा जहा-तहां छोडते रहते हैं. इससे हवा विगडने और लोगों का स्वास्थ्य खराव होने के अतिरिक्त खेती वहुत से कीमती खाद से वचित रहती है. हरेक वस्ती से वाहर गढ्ढे खोद कर शौचगृह वनवाने और उन्हीं में गोवर, कूड़ा कचरा डालने की व्यवस्था होनी चाहिए एक गढ्ढे के भरने के वाद उसका खाद तैयार होने तक दूसरे गढढे का उपयोग किया जाय. इससे गाव की गंदगी 'दूर होने के साथ वहुत उपयोगी खाद मुफ्त में ही मिल जाती है

रासायनिक या खनिज खाद से सावधान ! याद रहे कि रासायनिक या खनिज खाद जमीन के लिए स्वाभाविक पोपक नहीं है. ये जमीन को कुछ हद तक उत्तेजित करते हैं, इससे पैदावार वढ जाती है, पर उस पैदावार में पोपक या स्वास्थ्यप्रद तत्व यथेष्ट परिमाण में नहीं होते

इसलिए अनेक विशेपज्ञो का मत है कि रासायनिक या खनिज खाद का उपयोग वहुत सोच-विचार कर, एक परिमित परिमाण में ही होना उचित है, अन्यथा लाभ के वदले हानि ही होगी. वास्तव में यह कार्य ऐसा ही है,' जैसा सोने का अडा देने

वाली मुर्गी का पेट चीर कर एक साथ ही पूरा फायदा उठाने की चेष्टा में हमेशा होनेवाले लाभ से वंचित हो जाना.

बड़े पैमाने की और छोटे पैमाने की खेती— कुछ आदमी बड़े पैमाने की खेती पर बहुत जोर दिया करते हैं. भारत में इसकी उपयोगिता सीमित ही है. इस प्रसंग में श्री किशोरलाल मश्रूवाला का निम्नलिखित कथन विचारणीय है :—

'किसी का छोटे पैमाने पर की जाने वाली खेती में विश्वास हो या न हो, आज के हिन्दुस्तान में तो अनाज की पैदावार का वही एक मुख्य जरिया है बडे पैमाने की खेती का दायरा व्यापारी फसलों तक ही परिमित रहे, उसे अनाज की फसलों की होड में उतरने का मौका नहीं मिलना चाहिए. अगर उससे अनाज भी पैदा करना हो तो वह काम खुद सरकार को ही करना चाहिए.'

इसी प्रकार श्री विनोबा ने कहा है कि—

'भूमि व्यवस्था को हल करने के लिए हमें रूस व अमरीका की नकल नहीं करनी बल्कि चीन की करनी है. अमरीका में प्रति व्यक्ति १५ एकड से भी अधिक भूमि उपलब्ध है और रूस में तो उसका औसत और भी बडा है, पर भारत में जितनी भूमि है वह सबको बराबर बांट भी दी जाय तो एक या सवा एकड से ज्यादा का औसत यहां नहीं पडता. इसलिए यहां न तो रूस का सामूहिकवाद चल सकता है, न अमरीका का यान्त्रिक-खेतीवाद. × × × मेरा अनुभव है कि छोटे खेतों में, जिसकी किसान स्वयं पूरी देख-भाल कर सकता है, उत्पादन का औसत अधिक होता है हाल ही में भारत-सरकार ने जो अधिक अन्न उत्पादन प्रतियोगिता की थी, उससे पता चला कि एक एकड भूमि में एक किसान ने अपना ध्यान तथा मेहनत केन्द्रित कर १५० मन धान उत्पन्न कर संसार का रेकार्ड तोडा, यद्यपि संसार में उसकी भूमि से अधिक उपजाऊ भूमि तथा साधन उपलब्ध थे. यदि वह

एक एकड़ के स्थान पर सौ एकड़ की खेती करना तो यह औसत कभी नहीं पड़ सकता था, क्योंकि एक तो उसके पास इतना समय न होता, जो सारे खेत की देखभाल तथा मेहनत में लगा सके और दूसरे उसके पास इतना बड़ी जोत के लिए खाद व अन्य खर्चों की पूंजी भी नहीं हो सकती थी, और, जिसके पास पूंजी होती और जो नौकरों से काम लेता वह उतना काम करा नहीं सकता, जितना कि वह खुद कर सके।'

विशेष वक्तव्य—सहकारी पद्धति से खेती करने से कई बातों मे किफायत होती है, और पैदावार बढ़ती है पर भारत की वर्तमान स्थिति में यह लाभकारी नहीं हो रही है श्री विनोबा का इरादा प्रारम्भ में इसी पद्धति का था पर तेलंगाना में विचार और अनुभव के बाद उन्हे यह सामयिक नहीं लगा उनका मत है कि सहकारिता का प्रयोग तभी सफल हो सकते हैं जब वह युक्ति और गणित से किया जाय जिन लोगो को सहकारिता का अभ्यास नहीं है, और हिसाब-किताब का यथेष्ट ज्ञान नहीं है, उन पर यह चीज लादना ठीक न होगा हा, आगे जाकर छोटे-छोटे हिस्सो की जमीन वाले किसानो मे कई बातो में सहकार हो सकता है, जैसे दस-पाच परिवार मिलकर बैलो की जोड़िया रख सकते हैं, हरेक किसान अलग-अलग रखवाली करे, इसके बजाय वह काम सहकार से किया जा सकता है, फिर जमीन के साथ ग्रामोद्योग भी रखने की योजना तो है ही

उन्नीसवां अध्याय

ग्रामोद्योग

लोग पूछते हैं कि छोटी-छोटी बातों से क्या होना है, यह जमाना महत् परिणामों के लिए काम करने का है. ग्रामोद्योगो मे जब करोडो हाथों का उपयोग हो सकता है, और करोडो लोगों का पेट भर सकता है, तब यह काम छोटा कैसे माना जा सकता है।

—विनोबा

साधारण आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हमारा यह ध्येय होना चाहिए कि अपने ग्रामो और घरो मे अपने कुटुम्ब के साथ रह कर कारीगर उत्पादन का कार्य करे इसी नीति मे मुझे मानवता और नैतिकता की रक्षा दिखायी देती है.

—पुरुषोत्तमदास टंडन

ग्रामोद्योग किसे कहते हैं?—ग्रामोद्योग से ऐसे उद्योग का आशय है, जिसके द्वारा बनने वाली चीजो का उत्पादन, विनिमय और उपयोग बहुत-कुछ गाव के भीतर ही हो जाय. उदाहरण के तौर पर मिट्टी के बर्तनो को ले ये गाव में बनते हैं, वहीं उनका अदलबदल या खरीद-बेच होती है, और वहीं वे काम मे लाये जाते है खेती, पशु-पालन, हाथ-चक्की, तेलघाणी, चर्खा, कर्घा, चमारी, कुम्हारी आदि के धधे ऐसे व्यापक और विराट उद्योग है, जो हरेक गांव मे फैले हुए है; जो गाव की अर्थ-व्यवस्था और गांव के जीवन के मूल आधार हैं. इनमे काम आने वाला कच्चा माल स्थानीय होता है. ये उद्योग फैशन और

विलासिता, सजावट और प्रदर्शन की वस्तुए उत्पन्न नहीं करते, बल्कि बहुत बड़े परिमाण मे दैनिक आवश्यकताओ की अनिवार्य वस्तुओ का उत्पादन करते हैं.

कुटीर उद्योग और गृहोद्योग—कुटीर उद्योग मे यह आवश्यक नहीं है कि उसके लिए कच्चा माल स्थानीय ही हो, वह बाहर से मगाया हुआ भी हो सकता है ये उद्योग प्राय. ऐसे होते हैं, जिन्हे गावो या शहरो के लोग अपने फुरसत के समय मे कर सकें और जिनसे ऐसी चीजें बन सकें जो धनिको की बैठको की शोभा बढ़ा सके ऐसी चीजो को शहरों मे तथा विदेशों में भी बेचा जा सकता है

गृहोद्योग अधिकतर ऐसे उद्योग हैं, जिनका काम घर वाले, खासकर स्त्रियाँ कर लेती हैं बेल-बूटा, सिलाई, या मौजे, स्वेटर और बनयान आदि की बुनाई का काम, जाली का काम और मुरब्बे, अचार, पापड आदि इनके कुछ उदाहरण हैं इन चीजो का उपयोग प्राय. घर मे ही हो जाता है.

ग्रामोद्योगों का महत्व ; समाज-संगठन—ग्रामोद्योगो में उत्पादक और उपयोक्ता मे प्रत्यक्ष या सीधा सम्पर्क रहता है किसान, कारीगर, धोबी, चमार, जुलाहा, तेली, दर्जी आदि एक दूसरे को जानते हैं. उनके अच्छे कार्यों की प्रशसा, और खराब काम की आलोचना होती है उन पर लोकमत का प्रभाव पडता है, और उन्हे अच्छे व्यवहार की प्रेरणा मिलती है हरेक आदमी अपनी कुछ आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए दूसरे को आजीविका का काम देकर उसकी ऐसी सहायता करता है, जिससे न तो देनेवाले मे अहकार आता है, और न लेने वाले मे कुछ दीनता आती है दोनो समान धरातल पर रहते हैं. इस प्रकार ग्रामोद्योगो से समाज एक स्वस्थ और स्थायी आधार पर सगठित होता है.

शोषण का अभाव और स्वावलम्बन—ग्रामोद्योग मे श्रमी स्वतंत्र और स्वावलम्बी होता है, वह दूसरो पर निर्भर नहीं रहता वह साधारण औजारो से काम करता है, जिनका मालिक वह खुद ही होता है. उत्पादन का पूरा लाभ उसे ही मिलता है, कोई दूसरा व्यक्ति (पूंजीपति) उसके द्वारा होने वाली आय के किसी अश का अपहरण नहीं कर सकता; कारण, दूसरे व्यक्ति का इसमे कोई स्थान ही नही होता इस प्रकार ग्रामोद्योग पद्धति में शोषण की गुजाइश नहीं होती.

हिसाब से मालूम हुआ है कि भारत के सूती कपडे के कारखानो मे बिके माल की कीमत का केवल बीस-बाईस प्रतिशत ही मजदूरी का भाग होता है, जबकि खादी मे इस भाग का अनुमान ६० से ७० प्रतिशत तक होता है वास्तव में ग्रामोद्योगो मे वस्तु के मूल्य मे, कच्चे तथा यातायात का व्यय और दुकानदार का साधारण पारिश्रमिक निकल कर शेष सब मजदूरी ही होती है, उसमे मुनाफे का प्रश्न ही नहीं उठता

श्रमियों की स्वतंत्रता—ग्रामोद्योग मे श्रमी किसी के अधीन नहीं होता, वह स्वय अपना मालिक होता है उसे जब जरूरत हो, उसकी तबियत ठीक न हो, बाल-बच्चो की सार-सभार करनी हो, या घर का कोई काम करना हो, अथवा किसी अतिथि का स्वागत-सत्कार आदि करना हो, या किसी की विवाह-शादी या मृत्यु-सस्कार आदि मे भाग लेना हो तो वह अपने काम से सहज ही अवकाश ले सकता है यन्त्रोद्योग पद्धति मे यह बात कहां!

मनुष्य का विकास—ग्रामोद्योगो मे आदमी पूरी चीज बनाता है. वह उस चीज के विविध हिस्सो का पारस्परिक सम्बन्ध जानता है, और उनका एक दूसरे से मेल बैठाता है

इसमें उसे अपनी बुद्धि का उपयोग करना होता है इससे स्वभावतः उसका विकास होता रहता है यन्त्रोद्योगों में यह बात नहीं होती आदमी यंत्र के द्वारा किसी वस्तु के छोटे से भाग को बनाता रहता है, अथवा यों कहें कि वह उसमें काम आनेवाली सैकड़ो क्रियाओं में से किसी एक को करने में लगा रहता है; असल में वह क्रिया तो मशीन से होती है, आदमी केवल उसकी देख-रेख या सार-सभार करता है, उसे अपनी सूझ-बूझ से काम लेने का अवसर नहीं मिलता इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति में कारीगरी का जो थोड़ा-बहुत माद्दा होता है, वह यन्त्रोद्योग में समाप्त हो जाता है मनुष्य के विकास की विशेष गुंजायश ग्रामोद्योगों में ही है.

बेकारी का हल—भारत में लगभग सत्तर फीसदी आदमियों का धंधा खेती है, और ये साल में कुल मिलाकर कई-कई माह बेकार रहते हैं. इनके अलावा दूसरे आदमियों में भी बेकारी है ही. देश की इतनी बड़ी जनता को रोजगार देने के लिए यन्त्रोद्योग कदापि सफल नहीं हो सकते यही कारण है कि गांधी जी जन्म भर ग्रामोद्योगों के विस्तार और वृद्धि के लिए आन्दोलन करते रहे श्री जवाहरलाल नेहरू ने भी, जो यन्त्रवाद के काफी जोरदार पक्षपाती हैं, भारत की स्थिति देखते हुए व्यापारियों को कहा था :—

औद्योगीकरण हम कितना शीघ्र ही क्यों न बढ़ाए, फिर भी हम अपने लाखों करोड़ों लोगों को उसमें कैसे काम दे सकेंगे यह मेरी समझ में नहीं आता. हमारे कारखानों में बहुत हुआ तो दो करोड़, तीन करोड़ या उससे कुछ अधिक लोग काम करेंगे फिर भी जो बचे उनका क्या? जब तक आप गृह-उद्योग यानी छोटे पैमाने पर या सहकारी पद्धति से चलने वाले उद्योग खड़े करके बेकारों को काम नहीं देते तब तक आप उनका पूरा उपयोग नहीं कर सकेंगे

विकेन्द्रीकरण, लोकराज्य और अहिंसात्मक समाज—ग्रामोद्योग पद्धति की एक विशेषता विकेन्द्रीकरण है इसमें सैकड़ो या हजारो आदमी किसी उच्च अधिकारी के आदेशो का आंख मीचकर पालन करनेवाले नहीं होते. इसमें तो आदमी अपने परिवार के सदस्यो के साथ अथवा सहकारी पद्धति से दूसरे व्यक्तियो के साथ काम करता है. सब का प्रेम-पूर्वक सहयोग होता है, किसी की दूसरो पर हकूमत नहीं होती इस प्रकार ग्रामोद्योगो से लोकराज्य के अनुकूल परिस्थितियाँ बनती है और उसका उत्तरोत्तर विकास होता है.

वर्तमान हिन्सात्मक समाज की जगह हम अहिन्सात्मक समाज की स्थापना करना चाहते हैं तो उसकी सम्भावना विकेन्द्रीकरण-नीति से ही हो सकती है गाधीजी ने १९३९ में लिखा था—

'मेरा कहना है कि यदि भारत को अहिन्सात्मक समाज की ओर बढना है तो उसे कई पदार्थों का विकेन्द्रीकरण करना पडेगा केन्द्रीभूत पदार्थों की स्थिरता तथा सुरक्षा पर्याप्त बाहुबल के बिना नहीं की जा सकती. आप अहिन्सा का निर्माण बडी मिलो (केन्द्रित उत्पादन) की सभ्यता पर नहीं कर सकते, उसका निर्माण स्वावलम्बी गावों के आधार पर हो सकता है'

युद्ध-स्थिति की दृष्टि से ग्रामोद्योगों का महत्व—वर्तमान काल मे युद्ध इस युग का सत्य बना हुआ है इसलिए अर्थव्यवस्था को सैनिक दृष्टि से भी सोचना जरूरी है. अगर हम जनता की प्राथमिक आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए यन्त्रोद्योगो या औद्योगिक केन्द्रो पर निर्भर रहेगे तो युद्धकालीन स्थिति की दृष्टि से हम अपने विनाश का मार्ग प्रशस्त करने वाले होगे जनता के जीवन को प्रचड हवाई तथा अन्य आधुनिक हमलो से सुरक्षित रखने का एक-मात्र उपाय यही है कि हमारे

उद्योग-धंधे केन्द्रित न हो, क्योंकि औद्योगिक केन्द्रों को एटम बम नष्ट-भ्रष्ट किया जा सकता है. ग्रामोद्योग ही, एटम बम के युग में, डटे रहने का साहस कर सकते हैं

ग्रामोद्योग और यंत्र—अकसर यह पूछा जाता है कि क्या ग्रामोद्योगों में बिजली या अन्य शक्ति से चलने वाले यंत्रों से काम लेकर उनमें लगने वाले श्रम और समय की बचत न की जाय इस सम्बन्ध में हम याद रखे कि ग्रामोद्योगो का लक्ष्य गाव वालो को स्वावलम्बी जीवन बिताने योग्य बनाना है. इसलिए किसी ग्रामोद्योग में कठोर श्रम बचाने वाले ऐसे साधारण छोटे यंत्र का उपयोग करने में हर्ज नहीं है, जो उसे चलाने वाले व्यक्ति या परिवार के अधिकार और स्वामित्व में हो, न कि स्वयं चलाने वाले पर हावी हो जाय, जो श्रमियों को बेकार करने वाला अथवा उन्हे आलसी या परमुखापेक्षी बनाने वाला न हो. इस प्रकार किसी गाव में बिजली से चलने वाले किसी यंत्र का उपयोग तभी करना ठीक होगा, जब उसका उत्पादन स्थानीय क्षेत्र में हो सके, और उसके लिए दूर-दूर के केन्द्रो पर निर्भर न होना पडे

यंत्रों के युग में ग्रामोद्योग क्यों? महगाई का विचार—ग्रामोद्योगों को लक्ष्य करके कहा जाता है कि 'पुराने जमाने की बातो में क्या धरा है ! अब विज्ञान और यंत्रो का युग है. जब कारखानो में बनी सस्ती चीजें मौजूद हैं तो ये महगी चीजें खरीदना बेवकूफी है' महगाई के सम्बन्ध में नीचे लिखी बातें विचारणीय हैं—

(१) मिलो को कई प्रकार से सरकार द्वारा सहायता मिलती है; जैसे रूई को साफ और सुन्दर बनाने के लिए सरकार द्वारा अन्वेषण किये जाते हैं, उनके खर्च का भार जनता पर ही

पड़ता है. रूई को उत्पत्ति-स्थान से मिलो तक पहुँचाने और फिर मिलों के बने कपड़े को जहां-तहा भेजने के लिए रेल (और डाक तार आदि) की व्यवस्था करने में जो खर्च पडता है, वह भी जनता से ही वसूल किया जाता है. मालिक तथा मजदूरो के झगड़े निपटाने के लिए भी सरकार काफी रुपया खर्च करती है. मिल-मालिकों को जमीन कम कीमत में, तथा पूजी कम सूद पर मिलती है ये सब सुविधाए ग्रामोद्योगो को मिले तो वे कितने सस्ते हो जायं!

(२) कारखानो मे तैयार होने वाले माल के लिए बाजार सुरक्षित रखने होते हैं, इसमें प्रतिस्पर्द्धा होने से युद्ध की तैयारी रखनी पडती है, अर्थात् संहारक अस्त्र बनाये जाते है यह सब खर्च कारखानो पर डाला जाय तो साफ मालूम हो जाय कि उनका माल सस्ता नहीं होता

(३) मिलो और कारखानो का सस्ता माल खरीद कर हम अपने अनेक भाई-बहनो का जीवन सस्ता बना देते है कितने ही आदमी बेकारी से निराश होकर अपनी तथा अपने परिवार वालो की हत्या करते है और कितनी ही औरते वेश्या-वृत्ति करने को मजबूर हो जाती हैं.

इस प्रकार यंत्रोद्योगो से बनी चीजो को सस्ती समझना गलत है, और उन्हे काम में लाना समाज-विध्वसक कार्य है

ग्रामोद्योगों से ग्राम-सुधार—गावो की आर्थिक तथा अन्य उन्नति के विषय मे नीचे लिखे तीन दृष्टिकोण है; इनमें से तीसरा ही, अर्थात् ग्रामोद्योग और ग्राम-स्वावलम्बन ही सब से उत्तम है—

(१) गावो को शहरो मे स्थित मिलो और कारखानो के लिए कच्चा माल पैदा करने वाला समझ कर उनकी सारी अर्थ-

व्यवस्था को नगर-निवासियों की आवश्यकताएं पूरी करने की दृष्टि से ही बनाना. इस तरीके को काम में लाने से गांवों को उन्नत करने की बात ही गौण पड़ जाती है, शहरों के हितों के लिए उनका बलिदान या शोषण होता है.

(२) गावों की आबादी को खासकर उपयोक्ता मान कर उन्हें नगरों के उत्पादन के लिए बाजार समझना अंगरेजों के शासन-काल में विदेशी कल-कारखाने वालों ने गांवों में अपना माल खपा कर भरसक नफा कमाया; अब उनकी जगह भारतीय कारखाने वाले ऐसा करें तो गांव वाले अपने उद्योग चला कर स्वावलम्बी होने के अवसर से पहले की ही तरह वंचित रहे

(३) गांव को अधिक से अधिक स्वावलम्बी इकाई मान कर वहां के निवासियों को अपनी आवश्यकताएं पूरी करने की सुविधाएं देना. गांव में खेती तो होती ही है, वे अपने पैदा किये हुए कच्चे माल का वहां ही उपयोग करते हुए तरह-तरह के उद्योग धंधे चलावें तो वहां वालों को आजीविका के साधन भी मिल जायें, और उनके मन से आर्थिक परावलम्बन की बात दूर होकर वे हीनता की भावना से छुटकारा पाएँ इस पद्धति से ही उनमें नये जीवन का संचार होगा, और वे स्वाभिमान-पूर्वक अपना मस्तक ऊंचा रख सकेंगे.

ग्रामोद्योगों का क्षेत्र—ग्रामोद्योगों की उन्नति के लिए इनका क्षेत्र निर्धारित और सुरक्षित होना आवश्यक है. ग्रामोद्योग का मूल सिद्धान्त यह है कि उसके द्वारा बनने वाली चीजें ऐसी ही हों, जिनकी गांव वालों को जरूरत हो, इसलिए ग्रामोद्योगों के वास्ते हमें जनता की प्रमुख या बुनियादी जरूरतों के विषय में विचार करना चाहिए उदाहरण के लिए खेती, धान कूटना, आटा पीसना, गुड़ बनाना, तेल पेरना आदि खाद्य पदार्थों के

लिए ग्रामोद्योगो को ही अपनाना और प्रोत्साहन देना चाहिए. उसी तरह कपड़ा भी चर्खे से कते और कर्घे से बुने सूत का बनाया जाना चाहिए यदि रोजमर्रा के उपयोग की चीजों के उत्पादन में बिजली आदि का उपयोग करना ही पड़े तो उसका उत्पादन और नियत्रण भी विकेन्द्रित ढंग से किया जाय इस प्रकार यह स्पष्ट है कि वे धधे गावों के लिए सुरक्षित कर दिये जाने चाहिए, जिनसे बनने वाली चीज मनुष्य की मूल आवश्यकताओ में से हो तथा जिनके लिए कच्चा माल गावों मे मौजूद हो.

ग्रामोद्योग का संरक्षण; मिल-उद्योग का बहिष्कार—ग्रामोद्योगो की उपयोगिता और महत्व का विचार कर कहीं-कहीं कुछ आदमी इनका प्रचार करते हैं, और सरकार भी इनकी सहायता करके इन्हे प्रोत्साहन देती है. परन्तु इससे इनका यथेष्ट सरक्षण नहीं होता इसके लिए तो लोक-हितैषी सज्जनो को दृढ़ निश्चय करना चाहिए कि कम से कम अपने खाने और कपड़े के मामले मे मिल-उद्योग का बहिष्कार कर केवल ग्रामोद्योग की चीजो का ही उपयोग करेंगे और देश भर की जनता मे ऐसा सकल्प करने का आन्दोलन चलाएगे जब तक देहाती जनता यत्रोद्योगों का बहिष्कार नहीं करेगी, उसका उत्थान नहीं होगा; कहीं-कहीं कुछ फुटकर कार्य भले ही हो, देश मे केन्द्रीय पूंजीवादी व्यवस्था को हटा कर विकेन्द्रित स्वावलम्बी समाज कायम करने की दिशा में विशेष प्रगति नहीं हो सकेगी इस लिए रचनात्मक कार्य करने वाले व्यक्तियो तथा सस्थाओ को अपने जीवन मे तथा जहां अपना अधिकार चलता है, वहा यंत्रोद्योगो के बहिष्कार की नीति अपनानी चाहिए उनके ऐसा करने पर स्थानीय संस्थाए तथा सरकार भी इधर ध्यान देने लगेगी और लक्ष्य की प्राप्ति मे सुविधा और शीघ्रता हो सकेगी.

विशेष वक्तव्य—ग्रामोद्योग के लाभ अमरीका और इंगलैंड आदि उद्योग-प्रधान देशों के विचारशील व्यक्ति उन देशों के लिए भी स्वीकार करने लगे हैं. भारत के लिए तो इसकी उपयोगिता और आवश्यकता में कोई सन्देह ही नहीं तो भी यहा के अधिकाश पढ़े लिखे आदमी इसे आशंका की दृष्टि से देखते हैं, और सरकार इसे स्थापित करने में बहुत हिचकती है. उन्हे श्री भारतन कुमारप्पा के निम्नलिखित लेखांश पर गम्भीरता-पूर्वक विचार करना चाहिए—

'ग्रामीण अर्थ व्यवस्था में, जहा उत्पादन की मात्रा स्थानीय आवश्यकताओं तक ही सीमित रहेगी, मनुष्य की इच्छा केवल उतना ही पाने की होगी, जितने की उसे आवश्यकता है. ऐसे प्राकृतिक जीवन में मनुष्य की बची हुई शक्ति और समय का मूल्यवान उपयोग होगा भौतिक दृष्टि से मनुष्य का जीवन-स्तर उद्योग-प्रधान देशों की अपेक्षा भले ही हलके दर्जे का दिखलाई दे; लेकिन मनुष्य की आत्मा का अधिक विकास होगा हिम्मत बढ़ेगी, विचार और आचार में वह स्वतन्त्रता अनुभव करेगा तथा उसमें सहकारिता, बन्धुत्वभाव और स्थानीय सुख-दुःख के प्रति प्रेम की मात्रा बढ़ेगी वास्तव में ये ही वे गुण हैं जिनसे मनुष्य को आत्मिक सुख मिलता है, न कि कल-कारखानो द्वारा उत्पादित तरह-तरह की वस्तुओ के ढेर से.' ['लोक-सेवक', १५ दिसम्बर १९५१]

बीसवां अध्याय

यंत्रोद्योग

मै ऐसी मशीन का स्वागत करूंगा जो झोपडों में रहने वाले करोडों मनुष्यों के बोझ को हलका करती है करोडो सजीव मशीनो के मुकाबले, जो भारत के सात लाख गॉवो मे हैं, निर्जीव मशीनों को स्थान नही दिया जा सकता. . ..अगर हिन्दुस्तान का अधाधुंध उद्योगीकरण हो जाता है तो हमे शोषण के लिए ससार के अन्य भू-खण्डों को खोजने के लिए एक नादिरशाह की जरूरत होगी

—गांधीजी

औजार जरूरत के लिए होते हैं और मशीन पैसा बनाने के लिए फेक्टरी का काम सिर्फ धन पैदा करना है; वह लोगों की जरूरतें पूरी करने के वजाय उन्हें वढाना ही चाहती है

—जी. रा. कृपलानी

पिछले अध्याय मे ग्रामोद्योगो के बारे में विचार कर चुकने पर अब यंत्रोद्योगो की बात लेते है आजकल यत्रो का प्रचार निरंतर बढ़ता जा रहा है, और इस जमाने को मशीनो या यत्रों का युग कहा जाता है.

यंत्र-युग की मुख्य बात ; उत्पत्ति का केन्द्रीकरण—यंत्रोद्योगो का होना कहां तक उचित या लोकहितकारी है, इसका विचार करने से पूर्व यंत्र-युग की कुछ मुख्य-मुख्य बातो को ध्यान मे रखना आवश्यक है. यंत्रो के कारण समाज मे एक ऐसे दल का निर्माण हो जाता है, जो मिलो या कल-कारखानो का

मालिक होता है. एक मिल आदि में हजारों मजदूर इकट्ठे काम करते हैं, ये भिन्न भिन्न स्थानों के होते हैं, इन्हें केवल इनकी मजदूरी दी जाती है. कारखाने में दूर-दूर से कच्चा माल आता है, और उसका तैयार माल बन कर पहले कुछ खास-खास स्थानों में और वहां से विविध स्थानों में जाता है इस प्रकार उत्पत्ति और व्यापार कुछ थोड़े से स्थानों में केन्द्रित हो जाता है; ये स्थान बड़े-बड़े शहर या कस्बे होते हैं

शहरों की वृद्धि और ग्राम-जीवन का ह्रास—यंत्रोद्योगों से उपज और व्यापार केन्द्रित हो जाने के कारण शहरी जीवन का विस्तार और इसकी समस्याओं की वृद्धि हो जाती है. शहरों की जन-संख्या उत्तरोत्तर बढती जाती है, जिसमें खासा हिस्सा बाहर गावों से आये लोगों का होता है. आबादी घनी होती जाती है. अनेक लोगों को रहने के लिए साधारण मकान मिलने भी कठिन होते हैं, स्वास्थ्य-प्रद और खुली हवा वाले होने की तो बात ही क्या! जनता में शौकीनी बढ जाती है, लोगों को शराब या सिनेमा आदि के कृत्रिम मनोरंजन, और साबुन, आइस-क्रीम, बर्फ, सोडावाटर, आदि की जरूरत होती है. लाटरी, बेकारी, भिक्षा-वृत्ति, छल-कपट, तरह-तरह की बीमारियां, वेश्यावृत्ति आदि शहरी जीवन के विस्तार का ही परिणाम हैं.

यह स्पष्ट ही है कि जिस सीमा तक कारखाने शहरों और कस्बों का निर्माण या वृद्धि करते हैं, गावों का ह्रास हो जाता है, वहां उत्पादन का क्षेत्र कम रह जाता है, उद्योग धंधे नष्ट हो जाते हैं वहां के आदमी अधिकाधिक खेती पर आश्रित रहने को बाध्य होते हैं, बेकारी के शिकार होते हैं, या गांव छोड कर शहरों में मजदूरी की तलाश में मारे-मारे फिरने लगते हैं. गांव में जो आदमी कुछ होशियार

या पैसे वाला होता है, वह अपनी बुद्धि और पैसे खर्च करने के लिए शहर मे जाकर रहना पसन्द करता है, वहां उसे मनोरजन और शौक पूरा करने के लिए विविध साधन मिलते हैं

यत्रोद्योगो के कारण कुछ देश तो प्राकृतिक ग्राम-जीवन से बहुत कुछ वंचित हो चुके हैं, और अन्य देश उसी मार्ग पर बढ़े जा रहे है भारत और चीन जैसे देश जिनमे अभी तक ग्राम-जीवन —बुरा-भला जैसा भी हो—कुछ बचा रह सका है, सोचे और आगे का कार्यक्रम गम्भीरता-पूर्वक निश्चित करे.

अन्य हानियां; आवश्यकताओं की वृद्धि— यत्रोद्योगो के केन्द्रीकरण के कारण बहुत सी अनावश्यक आवश्यकताए बढ़ जाती है, उदाहरण के लिए जगह-जगह पैदा होने वाले धान को किसी केन्द्रीय कारखाने मे कुटवा कर उसे फिर फैली हुई आबादी मे वितरण करने मे पैकिंग के सामान और यातायात के साधनो की जरूरत बढ जाती है. इसलिए लखो एकड धान की जमीन सन और पटसन की फसलो से घिरती जाती है. यातायात की समस्या से रेल और मोटर आदि की जरूरत इतनी बढ़ती जा रही है कि पूरी ही नहीं हो पाती.

हानिकारक 'उत्पादन'—यत्रोद्योगो के सचालक चीजो के उत्पादन मे जनता के जीवन-रक्षक पदार्थों को प्राथमिकता न देकर अपने नफे के लिए शौकीनी या विलासिता के पदार्थ तैयार करने मे लगे रहते है उदाहरण के लिए देश में अन्न की कमी होते हुए भी वे इसे बिस्कुट और मिठाइयां बनाने में खर्च करते रहते है, जिनमे अन्न के पोपक तत्व नष्ट हो जाते है एक विज्ञापन की बात लीजिए—

'पूर्व की सब से बडी और सब से ज्यादा आधुनिक बिस्कुट-फेक्टरी चालू हो गयी भारत की औद्योगिक प्रगति में एक बड़ा कदम, पूर्व की दुनिया में कोई दूसरी फेक्टरी उत्पादन

की क्षमता में इसका मुकाबला नहीं कर सकती प्रतिदिन ३० टन बिस्कुट और ६० टन 'मिठाइयां' एक भव्य प्रयास' ('हिन्दुस्तान टाइम्स', १६ जुलाई १६५१)

ऐसे कारखाने में अन्न और शक्कर का कितना खर्च होता है! और, यह लोगों की भूख मिटाने के काम में न आकर सिर्फ नाश्ते की तरह और जीभ के स्वाद के लिए होता है इसमें कितने ही आदमी अपनी एक मूलभूत आवश्यकता की पूर्ति से वंचित हो जाते हैं. इस दृष्टि से यह उत्पादन-कार्य न होकर विनाश-कार्य है देश के लिए गौरव की बात न होकर लज्जा की बात है, प्रगति के बजाय ह्रास का सूचक है

बेकारी—किसी मिल या कारखाने में एक ही जगह बहुत से आदमियों को काम करते देखकर साधारण बुद्धि का व्यक्ति यह कहे कि यन्त्रोद्योगों से अनेक आदमियों का काम मिलता है, तो कोई आश्चर्य नहीं आश्चर्य तो यह है कि बहुधा समझदार व्यक्ति भी ऐसी बातें कहा करते हैं यह भुला दिया जाता है कि एक यन्त्रोद्योग में यदि हजार आदमी काम करते हैं तो उनसे पहले जो लाखों आदमी उस काम को हाथ से करके अपनी आजीविका कमाते थे, अब बेकार हो जाते हैं बेकारों की संख्या उसी अनुपात में बढ़ती जाती है, जिसमें मशीनें अधिक बढ़िया और नये ढंग की होती हैं यन्त्रोद्योग की सफलता ही इस बात में मानी जाती है कि वह कम से कम आदमियों से काम चला ले.

आर्थिक विषमता, वर्ग विद्वेष आदि—यन्त्रोद्योगों में साधारण मजदूरों को जो कम मजदूरी में मिलती है उसकी अपेक्षा मेनेजर आदि का वेतन सैकड़ों गुना होता हैं, और मिल-मालिक की आमदनी तो हजारों गुना भी हो सकती है कितनी

आर्थिक विषमता है। समाज में दो परस्पर विरोधी वर्गों का निर्माण हो जाता है. पूंजीपति और मजदूर दोनो अपने-अपने स्वार्थ को देखते हैं मजदूर निर्धन होने के कारण प्रायः दबे रहते हैं कल कारखानो के मालिक उनसे अपनी शर्तें मनवाने के लिए समय-समय पर काम बन्द करने की धमकी देते हैं, और कभी-कभी द्वारावरोध या तालाबन्दी करके मजदूरो का काम पर आना रोक देते है. मजदूर अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए अपना सगठन करते है वे असंतुष्ट तो रहते ही हैं; जहां उन्हे कोई उकसाने वाले या उनका नेतृत्व करने वाला मिल जाता है, वे हडताल कर बैठते है, कभी-कभी तोड़-फोड़ करके कल-कारखाने को हानि पहुँचाते हैं. द्वारावरोध हो या हडताल, प्रत्येक दशा में उत्पादन घट जाता है और राष्ट्र को कष्ट और क्षति सहनी पडती है

रचनात्मक भावना और स्वाभिमान का लोप— यंत्रोद्योग पद्धति में आदमी की रचनात्मक शक्ति का विशेष उपयोग नहीं होता वह प्राय· यत्र के साथ और यत्र की तरह कुछ क्रियाएं करता रहता है, कभी वह कोई बटन दबाता है, कभी यत्र के किसी भाग पर पानी या तेल डालता है या उसे हिलाता है, ढीला या तग करता है, कभी कुछ चीजो को एक जगह से दूसरी जगह रखता है. इस प्रकार उसे बहुधा यह पता नहीं होता कि उसके श्रम से किस प्रकार कौनसी चीज बनेगी और वह क्या काम आयेगी.

अमरीका मे एक आदमी जमीन के नीचे एक कारखाने मे एक प्रकार के बटन को घिस घिस कर तैयार करता था. चालीस वर्ष बाद उसे मालूम हुआ कि वह बटन ऐसी राइफल मे लगाया जाता है, जिससे इसके दबाने से अनेक आदमी मारे जा सकते हैं ऐसे आदमी को अपनी कृति के लिए कुछ स्वाभिमान

नहीं होता उसका मानसिक और सांस्कृतिक विकास रुका रहता है.

चरित्र-ह्रास—यह कहा जाता है कि बड़े उद्योगों से उत्पादन जल्दी हो जाने से मनुष्य को आमोद-प्रमोद के लिए अधिक समय मिल जाता है, परन्तु कल-कारखानों में काम करने वालों का सिनेमा, जुआ, शराब और वेश्यालय से अधिकाधिक सम्बन्ध होना सर्व-विदित है इससे उनके चरित्र की हानि पर यथेष्ट प्रकाश पड़ता है. फिर यन्त्रोद्योगों में श्रमियों के बालकों और स्त्रियों से होने वाला दुर्व्यवहार भी छिपा नहीं. जब कि एक-एक व्यक्ति की अधीनता में सैकड़ों, हजारों आदमी काम करते हैं तो मनुष्य-मनुष्य के बीच भेद-भाव बढ़ना और चरित्र-नाश होना अनिवार्य है

उत्पादक और उपयोक्ता में पारस्परिक सम्पर्क का अभाव—यन्त्रोद्योगों में किसी वस्तु के उत्पादक और उपयोक्ता में सम्पर्क नहीं रहता कारखाने में बना जूता और मिल में बुना हुआ कपड़ा खरीदते समय हम दुकानदार को ही जानते हैं, जो क्रय विक्रय करने वाला मध्यस्थ या दलाल मात्र है, जिस पर वस्तु के अच्छी या बुरी होने की कोई जिम्मेवरी नहीं जो देश के उत्पादन में कोई भाग न लेकर केवल अपने नफे से मतलब रखता है यन्त्रोद्योग पद्धति में उत्पादकों से हमारा सीधा सम्बन्ध न होने से समाज में वह सगठन और स्नेह नहीं होता. जो ग्रामोद्योगों में होता है

सैनिक सगठन और विदेशी आक्रमण का खतरा—यन्त्रोद्योगों में केन्द्रीकरण के कारण सम्पत्ति थोड़े से मालदारों के पास इकट्ठी हो जाती है. उनके महलों, कोठियों और तिजो-रियों की चोरों और डकैतों से रक्षा करने के लिए जवान

चौकीदारो और सिपाहियो की ज़रूरत होती है. पुलिस और फौज का सगठन मजबूत करना होता है, जब कि मामूली हैसियत वाले नागरिको के साधारण घरो की रखवाली के लिए इसकी प्रायः कुछ भी चिन्ता नहीं करनी होती. फिर, यत्रोद्योगो से शहरो की वृद्धि होती है उनमे सम्पत्ति जितनी अधिक केन्द्रित होती है उतना ही वहा विदेशी आक्रमणकारियो को लूटमार और हमला करने का आकर्षण अधिक होता है उनमें फौजी और हवाई ताकतें कितनी ही क्यो न हो, उन्हे बिखरे हुए गांवों की अपेक्षा बहुत जल्दी नष्ट किया जा सकता है

साम्राज्यवाद और अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध—उद्योगो के केन्द्रीकरण से सैनिक संगठन होने की बात ऊपर कही गयी है. सैनिक मे स्वभाव से लड़ने की प्रवृत्ति रहती है, वह युद्ध का बहाना ढूंडता रहता है—कभी 'सभ्यता के प्रचार' की बात कही जाती है, कभी 'बढ़ी हुई आबादी के लिए रहने की ठौर' प्राप्त करने की आवाज उठायी जाती है, और नहीं तो 'युद्ध-समाप्ति के लिए युद्ध' का नारा लगाया जाता है. ये सब साम्राज्यवाद की प्रत्यक्ष या परोक्ष भूमिकाए है

फिर प्रत्येक राज्य के बड़े-बड़े उद्योगपति विदेशो से कच्चा माल मंगाने और अपना तैयार माल खपाने के लिए लालायित रहते है. इनका स्वार्थ आपस मे टकराता है और क्योकि प्रत्येक राष्ट्र की सरकार अपने यहां के कारखाने वालो के पक्ष का समर्थन करती है, इस लिए विविध राष्ट्रो की सरकारो का आपस में मनोमालिन्य हो जाता है और वह उत्तरोत्तर बढता रहता है. इससे थोड़े-बहुत समय मे बड़े-बडे राष्ट्रो का युद्ध होने की नौबत आती है. विविध राष्ट्रो के गुट बनने या दलबन्दी होने से वह युद्ध अन्तर्राष्ट्रीय महायुद्ध का रूप धारण करता है इस प्रकार विश्व-संकट की आशका हर दम बनी रहती है

अवकाश की समस्या—पहले बताया जा चुका है कि हाथ-उद्योगों में आदमी को आवश्यकतानुसार तथा उचित समय पर विश्राम करने की स्वतन्त्रता होती है उसके लिए अवकाश की समस्या नहीं होती. पर यन्त्रोद्योगो की बात दूसरी है इनमें तो आदमी को अपनी शारीरिक तथा मानसिक परिस्थिति के विचार को दूर रख कर मशीन के साथ चलना पड़ता है इनमे जब निर्धारित समय होगा, तब सब को एक साथ ही विश्राम करना होगा, भले ही किसी को उस समय उसकी जरूरत हो या न हो. परन्तु विश्राम प्रत्येक व्यक्ति की निजी आवश्यकता होती है, उसका सब के लिए एक ही समय निर्धारित करना अस्वाभाविक है अस्तु, कल-कारखानो मे सामूहिक अवकाश की बात रहनी है मजदूरो के लगातार सघर्ष से, अब काम के लिए प्राय· आठ घटे का दिन और छ दिन का सप्ताह माना जाने लगा है रूस में अवकाश का समय ससार के अन्य देशो से अधिक है. अवकाश का समय बढाने की माग का सामाजिक, आर्थिक तथा स्वास्थ्य आदि के आधार पर समर्थन किया जाता है, परन्तु सास्कृतिक पहलू की ओर ध्यान नहीं दिया जाता यदि कानून द्वारा अवकाश का समय बढ ही जाय तो श्रमी उस समय का उपयोग अपने हित के लिए ही करे, और उनका हित किन-किन बातो मे है—क्या यह भी कानून द्वारा निश्चित किया जाय ! अस्तु, यन्त्रोद्योगो मे अवकाश की समस्या बनी ही रहती है

अनिष्टकारी केन्द्रीकरण—यन्त्रोद्योगो का आधार केन्द्रीकरण है और इसका एक खास दोष है परावलम्बन. उत्पादको को कच्चे माल के लिए दूर-दूर के क्षेत्रो पर निर्भर रहना पडता है. फिर, वहा से माल लाने के लिए रेल आदि यातायात के बडे-बडे साधन चाहिए मशीनों की जरूरत होती ही है, और

भारत जैसे देशो में इनके लिए विदेशी कारखानो के आश्रित रहना पडता है गरीब देशो के लिए पूंजी की भी समस्या होती है. इसके अतिरिक्त यंत्रोद्योगो मे माल बड़े परिमाण में तैयार होने से उसे खपाने का सवाल आता है; इसके लिए दूर-दूर के बाजारो पर निर्भर रहना पड़ता है, तथा उन्हे हथियाने के प्रयत्न मे अन्य राष्ट्रो से सघर्ष होता है. इस प्रकार यन्त्रोद्योगो में होने वाला केन्द्रीकरण कितना अनिष्टकारी है, यह स्पष्ट है

यन्त्रोद्योगों की मर्यादा—तो क्या यन्त्रोद्योग बिलकुल न रहे ? यदि रहे, तो किन दशाओ मे ? पिछले अध्याय में यह बताया जा चुका है कि हमारी मूलभूत आवश्यकताओ के पदार्थों की उत्पत्ति ग्रामोद्योग पद्धति से होनी चाहिए. भोजन-वस्त्र आदि की वस्तुओ का उपयोग प्रत्येक व्यक्ति अलग-अलग करता है, इनके उत्पादन के लिए हाथ से चलने वाले उद्योग ही ठीक है. इनमे मशीनो या बड़े यन्त्रो की जरूरत नही, यदि कुछ विशेष दशाओ मे बिजली आदि का उपयोग करना ही हो तो वह ग्राम या नगर के स्वावलम्बन के आधार पर हो.

यन्त्रोद्योग पद्धति सामूहिक उपयोग के पदार्थों के उत्पादन के लिए ही उपयुक्त हो सकती है ये चीजे परिमित ही हैं इसलिए सामूहिक उत्पादन मर्यादित ही रहना चाहिए इसके दो भेद किये जा सकते हैं (१) बिजली, नल के पानी आदि का प्रबन्ध उस गांव या नगर की स्थानीय सस्था (पचायत या म्युनिसपेलटी) द्वारा होना चाहिए, जिससे इनका सम्बन्ध हो इनके उत्पादन तथा वितरण में किसी एक व्यक्ति या कुछ व्यक्तियो का अधिकार न रह कर, वहा की उक्त सस्था की प्रमुखता रहनी चाहिए, जिसमे उस बस्ती के सभी प्रौढ व्यक्ति भाग ले कुछ

दशाओं मे दो-चार गांव या कस्बे मिल कर भी व्यवस्था कर लें, पर ऐसा तभी होना चाहिए, जब इनकी पचायतों के लिए मिल कर सम्मिलित रूप से कार्य कर सकना व्यावहारिक हो; किसी एक स्थान की पचायत या म्युनिस्पेलटी का इनमें प्रभुत्व न हो (२) इन कार्यों के अतिरिक्त रेल, तार, डाक, कोयले आदि की खाने, सडक, हवाई जहाज, या नहर आदि जल-मार्गो का कार्य ऐसा होता है, जिसका किसी एक नगर या प्रान्त से ही सम्बन्ध नहीं होता इनका उपयोग राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय होता है ऐसी वस्तुओ के उत्पादन और वितरण में यन्त्रोद्योगो का उपयोग होना उचित है. इन का सचालन राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय पचायतो द्वारा होना चाहिए. श्री जवाहिरलाल जैन का मत है कि इस तरह के उद्योगो का सचालन अर्द्ध-स्वतत्र कारपोरेशनो के जरिये किया जाना चाहिए, जिन्हें सरकार द्वारा निश्चित पूजी दे दी जाय और जिनकी व्यवस्था सीधे सरकार के हाथ में न रह कर सरकार, उद्योग के कर्मचारियो और उपयोक्ताओ के प्रतिनिधियो द्वारा हो.

सर्वोदय व्यवस्था का अच्छी तरह प्रचार और उपयोग होने, तथा ससार भर में इसके अनुसार व्यवहार होने तक राज्यों की सुरक्षा की व्यवस्था करने की आवश्यकता रहेगी सैनिक उद्योग केन्द्रित और बडे पैमाने पर होंगे इनके लिए यन्त्रोद्योग पद्धति ही ठीक रह सकती है. इनका सचालन देश की केन्द्रीय सरकार द्वारा हो

क्या हाथ उद्योग-और यंत्र-उद्योग दोनों समानता के आधार पर नहीं चल सकते?—'कुछ खेतों में ट्रेक्टर चले और कुछ में हल. कुछ धान मिल से और कुछ ढेकी से छटे; इसी तरह जितना कपडा मिल से बन सके; बने, और बाकी चर्खे

से तैयार हो'—ऐसे कथन का उत्तर श्री धीरेन मजूमदार ने यह दिया है कि 'हमें मनुष्य की तात्कालिक मानसिक स्थिति का भी ध्यान रखना होगा. अगर बाजू के खेत में ट्रेक्टर चले तो जिसके पास साधन नहीं है, उसे हल चलाने में रुचि नहीं होगी, क्योंकि साधन-विहीन होने के साथ-साथ उसके मानस पर निराशा का असर पड़ेगा और इसलिए वह खाली रह कर भूखा रह सकता है पर हल नहीं चलाएगा. जिस गांव में हजार गज कपड़े की आवश्यकता है, उसमे मिल का सस्ता कपड़ा ५०० गज पहुँच जाय तो तामसी वृत्ति होने के कारण गांव वाले उनके पास खाली समय होते हुए भी अर्द्ध-नग्न हालत में रह कर बीसो साल तक अधिक तादाद में मिल का कपड़ा आने की इन्तजार मे बैठे रहेंगे, लेकिन श्रम कर के कपड़ा पैदा नहीं करेंगे' * यह बात भारत की परिस्थिति को ध्यान मे रख कर कही गयी है, पर कुछ कम-ज्यादा अन्य देशो पर भी लागू होती है.

अस्तु, भोजन-वस्त्र आदि मूल आवश्यकताओ की पूर्ति करने के लिए हमे हाथ-उद्योगो या ग्रामोद्योगो को प्राथमिकता देनी चाहिए. यंत्रोद्योगो को उनकी प्रतिस्पर्द्धा करने का अवसर न दिया जाना चाहिए. हमारे सामने ग्रामोद्योग और यंत्रोद्योग ये दो जुदा-जुदा रास्ते है; हमें प्रोफेसर वकील के शब्दो मे, इनमें से एक को पसन्द करना है, जितनी जल्दी हम यह तय कर ले, उतना बेहतर है. ढिलमुल नीति रखना ठीक नहीं.

---

* 'सर्वोदय', मार्च १९५१

इक्कीसवाँ अध्याय

जनसंख्या

ईश्वर की योजना ऐसी सुन्दर है कि एक मुंह के बढते ही उसके साथ दो हाथ भी पैदा होते हैं इसलिए संख्या-वृद्धि से न डरें. .....प्रजा अगर वीर्यवती, कर्मयोगी, दक्ष हो तो जो संतान पैदा होगी, उसका भार वहन करने के लिए यह वसुन्धरा तैयार है—ऐसा मेरा विश्वास है. —विनोबा

जो सरकार अपनी प्रजा से यह कहती है कि वह लोकहित वर्द्धक राज्य तब तक कायम नहीं कर सकती, जब तक कि जनसंख्या कम न हो जाय, वह शासन के लिए उतनी ही अयोग्य है, जितनी कि वह दूसरी जो युद्ध तथा अपनी अन्य साम्राज्यवादी आकांक्षाओं की सिद्धि के लिए जनता को जनसंख्या बढाने के लिए मजबूर करती है

—किशोरलाल मश्रूवाला

पिछले अध्यायो में इस बात का विचार किया गया है कि लोकहित की दृष्टि से विविध प्रकार की वस्तुओं के उत्पादन में जनता को किन-किन बातो का ध्यान रखना चाहिए उत्पत्ति के साथ जनसंख्या का घनिष्ठ सम्बन्ध है कल्पना करो एक देश में खाद्य पदार्थों आदि का उत्पादन जनता के लिए पर्याप्त है यदि कुछ समय बाद खाद्य पदार्थों के परिमाण मे दस प्रतिशत की वृद्धि भी हो जाय तो यदि इस समय तक जनसंख्या मे पन्द्रह प्रतिशत की वृद्धि हो गयी, तो उक्त बढ़े हुए खाद्य पदार्थ भी अब अपर्याप्त हो जायगे. इस प्रकार उत्पत्ति के प्रसग में जनसंख्या का विचार किया जाना आवश्यक है.

जनसंख्या की वृद्धि से चिन्ता—इस समय ससार की आबादी ढाई सौ करोड़ है और यह प्रति वर्ष एक प्रतिशत अर्थात् लगभग ढाई करोड़ के हिसाब से बढ़ रही है. आगे कुछ वर्षों के बाद जब आबादी अधिक हो जायगी तो वृद्धि का अक भी बढ़ जायगा, अर्थात् वह ढाई करोड़ से अधिक होने लगेगी. आबादी प्रायः सभी देशो मे बढ़ रही है. कुछ अर्थशास्त्रियो का मत है कि अगर यह वृद्धि रोकी न गयी तो दरिद्रता, बीमारी या महायुद्ध का सकट बढ़ेगा. इसलिए बहुत से आदमियो को आबादी की वृद्धि से बहुत चिन्ता है

दूसरा पहलू—पिछले वर्षों के अनुभव से यह सिद्ध हो गया कि उपर्युक्त अर्थशास्त्रियो ने खाद्य पदार्थों की कमी की जो आशका प्रकट की थी, वह सत्य साबित नहीं हुई. नयी भूमि मे खेती की जाने से, तथा उन्नत तरीको के काम में लाये जाने से खाद्य पदार्थों की पैदावार मे आशातीत वृद्धि हुई है ऐसा मालूम होता है कि बड़े-बड़े शहरो की घनी बस्तियो को देख कर यह अनुमान कर लिया गया था कि ससार मे जनसंख्या आवश्यकता से अधिक बढ़ रही है वास्तव मे पैदायश बहुत अधिक नहीं है; लोगो का भय व्यर्थ है

कुछ वैज्ञानिको ने समय-समय पर यह हिसाब लगाया है कि इस धरती की पैदावार कितनी जनसंख्या के लिए पर्याप्त हो सकती है. ऐसे हिसाब से अलग अलग परिणाम निकलने स्वाभाविक है, कारण, कुछ महत्वपूर्ण बातो की व्याख्या आदमी अपने-अपने ढग से करते है. कुछ का कथन है कि पृथ्वी की खेती-योग्य भूमि मे काश्त होने लग गयी है, और खेती के तरीको मे उन्नति करने की सीमा आ पहुँची है, दूसरे सज्जन बहुत आशावादी हैं. इनमे से कुछ के हिसाब से पृथ्वी की पैदावार कम से

कम ७०० करोड़ और अधिक से अधिक १६०० करोड जनसख्या होने तक काफी होगी अमरीकी स्टेट डिपार्टमेंट ने बहुत से तथ्यों और आकड़ों के आधार पर अनुमान लगाया है कि आज भी बिना किसी विस्मयकारी अन्वेषण के मानव इस स्थिति में है कि यदि आबादी तिगुनी हो जाय तो भी भूख का इस धरती से नाम-निशान मिटा सके और यदि उत्पादन में वैज्ञानिक तरीकों से वृद्धि की जाय और उपयोग की विधि में यथेष्ट सुधार हो तो इससे भी अधिक आबादी का निर्वाह हो सकेगा इस समय तो पूंजीवादी व्यवस्था में अनेक बार अन्नादि इसलिए नष्ट कर दिया जाता है कि उसके दाम न गिरने पाए, इसके अतिरिक्त अनेक आदमी कुछ उत्पादक कार्य न करते हुए भूमि पर भार बने हुए हैं. अस्तु पृथ्वी की उत्पादन-शक्ति के कम होने के विषय में चिन्ता का अवसर नहीं है.

यह ठीक है कि इस समय सारा ससार खाद्य पदार्थों आदि की समस्या पर एक इकाई की तरह विचार नहीं करता, विविध राज्यों मे गुटबन्दी और स्वार्थ का बोलबाला है इस लिए तमाम ससार की उपज के परिमाण के आधार पर यह अनुमान लगाना ठीक नहीं कि इससे इतनी जनसख्या का निर्वाह हो जायगा पर यह स्थिति बहुत समय रहने वाली नहीं और, यह तो स्पष्ट ही है कि मूल समस्या विशेषतया राजनैतिक है

सन्तान-वृद्धि की रोक—बहुत से आदमियो के लिए जन-सख्या की वृद्धि बहुत चिन्ता का विषय है यूरोप अमरीका के कुछ भागो में कृत्रिम उपायो द्वारा इस वृद्धि को रोका जाता है. इसके समर्थको की सख्या बढ़ती ही जा रही है. भारत में भी इसका जोर बढता जा रहा है इस में खासकर ये दोष हैं—

१—जब मनुष्य विषय-भोग के परिणाम अर्थात् सतान की ओर से निश्चिन्त हो जाता है तो उसका विषय-भोग में अधिक

फंसना स्वाभाविक ही है, इससे वह कमजोर हो जाता है, और भावी पीढी के भी निर्बल और तेजहीन होने की सम्भावना होती है.

२- कृत्रिम साधनो का विशेष उपयोग शिक्षित, शहरी और धनवान लोग करते है इनकी सन्तान तो वैसे ही कम होती है.

३- इससे पुरुष स्त्रियों का अनुचित सम्बन्ध अर्थात् नैतिक दुराचार बढता है.

अन्यान्य लेखको में गाधीजी ने इस विषय पर विस्तार से लिखा है आपका कथन है कि—

'कृत्रिम साधनो से नुकसान नही होता, ऐसी गवाही तो कोई भी नहीं देगा. ऐसा मै अपनी खोजो और अवलोकन के परिणाम-स्वरूप जोर देकर कह सकता हूं...... जानकार मनुष्य कहते हैं कि स्त्रियो को होनेवाले कैन्सर जैसे रोगो का मूल इन कृत्रिम साधनों के उपयोग मे है....इसमे भयकर बात तो यह है कि जहा एक बार ऐसे कृत्रिम साधनो का प्रचार बेधड़क होने लग गया कि फिर इस अत्यन्त हीन ज्ञान को रोकने का एक भी उपाय नही किया जाता और उसके प्रचार को रोकने की किसी में भी शक्ति नहीं रहेगी, और ये बातें सब से पहले प्रजा के युवाओं में पहुँचती हैं.'*

कृत्रिम निरोध की पद्धति ठीक नहीं है, पर सन्तान-वृद्धि को रोकने की जरूरत से इनकार नहीं किया जा सकता; हा, अन्न की कमी के कारण नहीं, बल्कि अन्य कारणो से. बात यह है कि बच्चे ज्यादा और जल्दी-जल्दी होने से एक तो मा का स्वास्थ्य गिरता है; दूसरे, बच्चो की सार-सभार, पालन-पोषण और शिक्षा-दीक्षा अच्छी तरह नहीं हो सकती

संयम का उपयोग—चाहे जनसख्या की वृद्धि को रोकना हो, या दूसरा लक्ष्य सामने हो संयम और इन्द्रिय-निग्रह की

* 'विवाह समस्या अर्थात् स्त्री-जीवन' से.

उपयोगिता हर दशा में है. इस विषय में श्री विनोबा की यह बात भुलाई नहीं जा सकती कि 'साल में एकाध बार स्त्री-पुरुष सम्बन्ध हो जाने से भी पुत्रोत्पत्ति हो सकती है. इसलिए ऐसे व्यक्ति को असयमी समझने का कारण नहीं है. इस दृष्टि से एकाध बीस बच्चों का बाप भी दो बच्चों के बाप से ज्यादा संयमी हो सकता है'

सयम की भावना बढ़ाने में सादा जीवन और लोकसेवा आदि के उच्च विचारों से बड़ी सहायता मिलती है. ऐसे विचार वाले व्यक्ति कम सन्तान से, या बिना सन्तान के भी सतुष्ट रहते हैं. आवश्यकता है कि मनुष्य कोई महान ध्येय रखे और उसकी प्राप्ति मे अपनी सारी शक्ति लगाने का दृढ निश्चय करे

जीवन पद्धति सुधारने की आवश्यकता—हम याद रखें कि सन्तान अच्छी होने के लिए जिन बातों की जरूरत होती हैं, उनसे ही सन्तान में कमी भी हो जाती है आवश्यकता है जीवन-पद्धति में सुधार करने की. इसके लिए निम्नलिखित तरीके काम में लाए जाने चाहिए :—

(१) जनता मे यह प्रचार किया जाय कि जीवन-स्तर ऊंचा करें; अच्छे मकान, तथा उत्तम भोजन वस्त्र आदि का उपयोग करें और सांस्कृतिक उन्नति की ओर ध्यान दें.

(२) नागरिकों की, अपना उत्तरदायित्व समझने और दूरदर्शी बनने की भावना विकसित की जाय. वे सन्तान के प्रति अपनी जिम्मेवरी का विचार रखें.

(३) सदाचार और सयम का वातावरण पैदा किया जाय. विवाह की उम्र बढायी जाय और बहुत अधिक आयु वालों के विवाह बन्द किये जायँ.

(४) निर्बल, दरिद्र, वंशानुगत रोगी, पागल या ऐसे शारीरिक या मानसिक विकार वाले आदमियो के विवाह-सम्बन्ध बन्द होने चाहिए,

(५) पुरुषो और स्त्रियो में ऐसी भावना भरी जानी चाहिए कि दूसरों के बालको से भी यथेष्ट प्रेम करें,इस प्रकार जिनके कोई सन्तान न हो वे दूसरे बालकों से प्रेम करते हुए उनके पालन-पोषण और शिक्षण में सहायक हों

(६) आदमी कृत्रिम, शहरी, आडम्बर-पूर्ण जीवन की अपेक्षा प्रकृति के अनुकूल चले, और ग्रामोद्योगो के मुक्त वायुमडल में रहे

विशेष वक्तव्य—परमात्मा ने मनुष्य को एक मुह या एक पेट के साथ दो हाथ दिये हैं. यदि हम ऐसी योजना बना कर अमल में लाए कि सारे हाथो का पूरा उपयोग हो सके तो जनसंख्या की समस्या कुछ कठिन न रहे. ऐसी योजना के लिए श्रम को बचाने वाले यत्रो को और दूसरो के श्रम को हड़पने वाली जीवन-प्रणाली को समाप्त करना होगा. मानव श्रम को केवल उपयोगी और उत्पादक कार्यों मे ही लगाना होगा, उत्पन्न सामग्री को फेशन या विलासिता मे नष्ट होने से बचा कर उसका लोकहित की दृष्टि से बहुत मितव्ययिता-पूर्वक उपयोग करना होगा. अगर प्रत्येक व्यक्ति परिश्रमी, सुशिक्षित, स्वावलम्बी, सदाचारी और लोकसेवी हो तो ऐसी जनसख्या से देश या संसार को डरने का कोई कारण नहीं. अस्तु, वास्तव मे समस्या आबादी की संख्या की नहीं, बल्कि उसके सही और पूरे उपयोग की है. माता-पिताओ को, शिक्षा-सस्थाओं को तथा राज्याधिकारियो को इस दिशा मे यथेष्ट कर्तव्य-पालन करना चाहिए.

चौथा खंड

विनिमय

व्यापारियो मे दूषित प्रतिस्पर्द्धा चल रही है और उसके फल-स्वरूप धोखेबाजी, दगा, फरेब, चोरी आदि अनीतिया बढ गयी हैं. दूसरी ओर जो माल तैयार होता है, वह खराब और सडा हुआ होता है. व्यापारी चाहता है कि मै खाऊं, मजदूर चाहता है कि मैं ठग लूँ और ग्राहक चाहता है कि मैं बीच से कमालूँ. इस प्रकार व्यवहार बिगड जाता है, लोगो में खटपट मची रहती है, गरीबी का जोर बढता है, हडतालें बढ जाती हैं, महाजन ठग बन जाते हैं, ग्राहक नीति का पालन नहीं करते. एक अन्याय से दूसरे अनेक अन्याय उत्पन्न होते हैं अन्त मे महाजन, व्यापारी और ग्राहक सभ दु ख भोगते हैं और नष्ट होते हैं.

—गांधीजी

बाइसवां अध्याय

विनिमय की उपयोगिता की सीमा

व्यापारी लोग अपने स्वार्थ के लिए लाखो रुपये खर्च करके जनता मे अनावश्यक चीजें चलाने की कोशिश करते हे. जब वे चल निकलती हे तो उनको माग का रूप दिया जाता है.

—श्रीकृष्णदास जाजू

शोषणहीन समाज स्थापित करने के लिए गावों मे शहरो के माल का वहिष्कार करना होगा, आवश्यकता हो तो सत्याग्रह और वरने की शरण लेनी होगी, दूसरी ओर प्रवन्धकों से भी असहयोग करना होगा.

—धीरेन्द्र मजूमदार

विनिमय की आवश्यकता; अदल-बदल और क्रय-विक्रय—किसी आदमी का काम केवल अपनी ही बनायी हुई वस्तुओ से नहीं चल सकता. उसे दूसरो की बनायी हुई वस्तुओं की आवश्यकता होती है, और इन्हे लेने के लिए उसे बदले दूसरों को ऐसी वस्तुए देनी होती हैं, जिनकी उन्हे जरूरत हो. इस प्रकार का व्यवहार बहुत प्राचीन समय से होता रहा है. इस समय भी खासकर गावो में इस का चलन है. इसे विनिमय कहते हैं, यह दो तरह का होता है—(१) जिसमें एक वस्तु के बदले दूसरी वस्तु दी जाती है, इसे अदल-बदल कहते हैं. (२) जिसमें वस्तु के बदले द्रव्य दिया जाता है; इस खरीद-बेच या क्रय-विक्रय पद्धति के लिए ही अब 'विनिमय' शब्द का प्रयोग होता है.

विनिमय का अनावश्यक विस्तार; भोजन में— ऊपर विनिमय की उपयोगिता बतायी गयी है, पर इसकी एक सीमा है आजकल विनिमय का क्षेत्र बेहद बढ़ा हुआ है. अनेक आदमी अपने गांव मे पैदा होने वाले अन्न का उपयोग न करके दूसरे प्रकार के अन्न खाने के इच्छुक रहते है, जो वहां पैदा नहीं होता. इसलिए वहां पैदा हुआ अन्न बहुधा दूर-दूर के स्थानो में बेचना होता है. यह अन्न बोरों में भर कर, और बैल गाड़ियो, मोटर और रेल द्वारा ले जाया जाता है और दूसरे स्थानो से दूसरा अन्न इसी प्रकार लाया जाता है. इस मे कितनी शक्ति और समय खर्च होता है तथा लाने-लेजाने या लादने-उतारने आदि में कितना अन्न नष्ट हो जाता है एक और उदाहरण ले. कुछ स्थानो में धान पैदा होता है, पर आदमी वहां ही उसे हाथ से कूट कर चावल तैयार नहीं करते वे उसे बेच देते हैं, और वह मिलो में ले जाया जाता है, वहां वह यंत्र से कूटा जाता है, और उस पर पालिश करके चमकीला किया जाया है इस चमकीले चावल का खासा अश उन गावो या कस्बो में जाता है जहां धान पैदा हुआ था, और बेचा गया था. मिल की उपर्युक्त क्रिया इसलिए की जाती है कि धान की अपेक्षा चावल को लाना-लेजाना आसान तथा कम व्यय-साध्य है, और पालिश किये बिना चावल जल्दी खराब हो जाता है मिल की क्रिया से चावल का बहुत सा पोषक तत्व नष्ट हो जाता है, और उसके खाने से बेरीबेरी' रोग पैदा होता है इस रोग को रोकने के लिए इस चावल पर पौष्टिक तत्वो का लेप चढ़ाने की दूसरी क्रिया निकाली गयी है. इससे उपयोक्ताओं पर दोहरे खर्च का भार पडता है. अस्तु, विनिमय के कारण होने वाली हानि स्पष्ट है

दूसरा उदाहरण लीजिए. भारत के बहुत से गांवो में गन्ना

पैदा होता है, और इसका आसानी से गुड बनाया जा सकता है जो बहुत स्वास्थ्यप्रद और पौष्टिक होता है पर अनेक गावो वाले गन्ने को दूर-दूर मिलों में ले जाकर बेचते है, वहा इसकी चीनी बनायी जाती है (जिसे स्वास्थ्य के लिए हानिकर होने के कारण गाधीजी ने 'सफेद जहर' कहा), इस चीनी को फिर विविध गावों मे ले जाया जाता है वहा इसे वे लोग भी खरीदते हैं, जिन्होंने गन्ना पैदा किया था गन्ने की खरीद-बेच से लेकर चीनी के क्रय-विक्रय तक लोगों को कितनी हानि और परेशानी होती है, इसका वर्णन करने की जरूरत नहीं भोजन के पदार्थों की बात छोड कर अब हम वस्त्र का विषय लेते हैं.

कपड़े की बात—आधुनिक काल में भारतवर्ष में समय-समय पर कपडे का सकट रहा है इस समय भी यहा कपडे की कमी की बहुत शिकायत है आश्चर्य और खेद है कि जहा कपास पैदा होती है, वहा भी कपडे का सकट हो अस्तु, यह सकट बहुत कुछ विनिमय की अनावश्यक वृद्धि के कारण ही है आदमी कपास को ओट कर तथा रुई का सूत कात कर अपने यहा ही कपडा बुनवा लिया करें तो उन्हे यथेष्ट वस्त्र सहज ही मिल जाया करे पर यहा तो कपास ओटने से लेकर उसका कपडा बनाने तक विनिमय और यातायात की अनेक क्रियाए होती है। (देखो पृष्ठ १५१) इन क्रियाओ से, कपडे का उपयोग करने वालो पर मध्यस्थो की दलाली और मुनाफे आदि का बहुत भार पडता है, और कपास पैदा करने वाले किसानो को अर्द्ध-नग्न रहना पडता है इसी प्रकार अन्य पदार्थों के विनिमय के हानिकारक प्रभाव का विचार किया जा सकता है.

विनिमय की वृद्धि से हानि—विनिमय से होने वाली पूरी हानि का अनुमान करने के लिए यह ध्यान में लाना होगा

कि इस समय एक स्थान से दूसरे स्थान पर माल लाने-लेजाने में कितनी शक्ति लग रही है. माल भरने के लिए एक छोटे से देश मे भी कितने बोरो, संदूकों या टाट आदि का खर्च हो जाता है। कितने बैल, घोड़े, खच्चर, गधे, ऊट, मोटर, रेल, जहाज और हवाई जहाज आदि इस काम में लगते है. उन्हे चलाने के लिए आदमियो की सेवा की भी कितनी जरूरत होती है उन चीजों का हिसाब-किताब रखने में कितने आदमियो का कितना समय लगता है. फिर, लाने-लेजाने मे इन चीजो का कितना हिस्सा बिगड़ जाता है, या बिलकुल ही अनुपयोगी हो जाता है. हम इन बातो के इतने अभ्यस्त हो गये है कि इन्हे ध्यान देने योग्य ही नहीं समझते. तथापि समय-समय पर कुछ घटनाएं ऐसी होती रहती हैं कि हमे इन बातो पर गम्भीरता पूर्वक सोचने को विवश हो जाना पड़ता है. कल्पना करो, हमे अपने देश के ही दूसरे प्रान्त से कोई वस्तु मगानी है, और वह प्रान्त हमें देने को तैयार भी हो जाता है, पर सयोग से रेल आदि की यथेष्ट व्यवस्था नहीं होती तो हमे उस वस्तु के अभाव मे कितना कष्ट सहना पड़ता है.

जो माल हमे दूसरे देशो से मगाना होता है, उसके लिए महीनो पहले लिखा-पढ़ी होती है, भाव तय किये जाते है. पर अनेक बार ऐन समय पर यातायात के साधनों की कमी हो जाती है, अथवा माल से भरा कोई जहाज आदि रास्ते में ही नष्ट हो जाता है. फिर, ससार मे युद्ध का वातावरण बुरी तरह से बना हुआ है न मालूम कब कौनसा देश युद्ध-ग्रस्त हो जाए, और उसका प्रभाव दूर-दूर तक फैल जाए. उसके कारण एक ओर तो वह देश हमें कुछ माल देने में असमर्थ हो जाए, दूसरी ओर अगर हम वह माल किसी अन्य देश से भी मगाना चाहे तो रास्ता सुरक्षित न होने की दशा मे वह देश उस माल को

हमारे यहाँ भेजने की जोखम न उठाए ऐसी दशा में यदि हम अन्न वस्त्रादि जीवन-रक्षक पदार्थ के लिए परावलम्बी रहते हों तो युद्ध-काल में हमारे संकट का क्या ठिकाना !

इससे बचने के उपाय—इस सकट से बचने के लिए मुख्य बात यह है कि भोजन-वस्त्र जैसी मूल आवश्यकताओं की पूर्ति तो यथा-सम्भव प्रत्येक गांव में ही हो जानी चाहिए, इस के लिए लोगो को विनिमय के दूषित चक्र से बचना चाहिए. अन्य वस्तुओ के सम्बन्ध मे भी प्रत्येक बडे गांव या ग्राम-समूह का स्वावलम्बी होना ही अच्छा है, पर यदि उनके सम्बन्ध मे ऐसा न भी हो तो इतना हानिकर नहीं: कारण, जब कभी ऐसा अवसर उपस्थित हो जाए कि दूसरे स्थान में वह पदार्थ अधिक पैदा या तैयार न हो अथवा वहा से आने में यातायात सम्बन्धी कोई बाधा उपस्थित हो जाए तो जनता का जीवन तो सकट में न पडेगा. साधारण परिस्थिति मे, रोजमर्रा के जीवन में खासकर मूल आवश्यकताओ के पदार्थों के सम्बन्ध मे भिन्न-भिन्न गावो या नगरो मे विनिमय-कार्य का बढ़ना परावलम्बन का बढाना है. इसका यथेष्ट नियत्रण होना चाहिए, और एक देश से दूसरे देश का व्यापार तो और भी कम, तथा केवल कुछ खास दशाओ में ही रहने देना चाहिए.

तेइसवां अध्याय

मुद्रा व्यवस्था के दोष

आज लेनदेन एक मुनाफे की चीज बन गयी है, और महज लेनदेन का काम करने वालो ने ससार की सम्पत्ति पर अधिकार जमा रखा है रुपये ने साधन को ही साध्य बना दिया है. —जो. का. कुमारप्पा

आजकल विनिमय के माध्यम के लिए खासकर सोने चांदी के सिक्के काम मे लाये जाते है नोट आदि कागजी मुद्रा का चलन बढ़ रहा है, उसका आधार धातु की मुद्रा ही है, और इसके एवजी या स्थानापन्न के रूप में ही उसका व्यवहार होता है मुद्रा-स्फीति या मुद्रा की अधिकता से क्या हानियां है, उन्हे पाठक जानते हैं, और बहुतो ने उनका अनुभव भी किया होगा परन्तु साधारण मुद्रा व्यवस्था ही कितनी हानिकर है, इस ओर लोगो का ध्यान कम जाता है इसलिए यहां उसका ही विचार किया जाता है.

मुद्रा-व्यवस्था से समाज के आर्थिक जीवन में अस्थिरता—पैसे का उपयोग वस्तुओ का मूल्य मानने वाली इकाई के रूप मे है यदि इस इकाई का ही मूल्य समय समय पर बदलता रहे तो यह दूसरी वस्तुओ का मूल्य स्थिर रखने मे सर्वथा असमर्थ होगी, यह स्पष्ट ही है जब पैसे के मूल्य मे अकस्मात या एक दम भारी उथल-पुथल हो जाती है तो जिस समाज का सारी अर्थव्यवस्था का आधार ही पैसा है, उसके जीवन मे भयंकर अस्थिरता उत्पन्न होना स्वाभाविक है.

मूल आवश्यकताओं की उपेक्षा और व्यापारिक वस्तुओं की भरमार—मुद्रा व्यवस्था के कारण हम प्राय ऐसी चीजों के उत्पादन की ओर अधिक ध्यान देते हैं, जिनसे मुनाफे आदि के रूप में हमें अधिक से अधिक पैसा मिले. इससे विविध देशों में व्यापारिक वस्तुओं का परिमाण तो बढ़ गया है पर लोगों की मूल आवश्यकताओं की चीजें कम रहती हैं व्यापारिक वस्तुओं को अनेक वार मध्यम श्रेणी के तथा निर्धन लोग भी खरीद लेते हैं, इससे उन्हें अपनी मूल आवश्यकताओं की पूर्ति में बहुत कष्ट उठाना पडता है इस प्रकार उनका जीवन सकटमय होने का एक मुख्य कारण व्यापारिक वस्तुओं की अधिकता है, जिसका मूल वर्तमान मुद्रा व्यवस्था है

मुद्रा व्यवस्था के चक्र में पडने से अब किसान केवल उपयोगी अनाज का उत्पादन नहीं करता, बल्कि वह कई ऐसी चीजों की खेती करने में लगा रहता है, जो समाज के लिए हानिकर हैं भूख से पीडित देश के लिए अन्न पैदा करने के बजाय वह तमाखू आदि बोता है साधारण जनता दूसरी चीजों के अभाव में कष्ट भोगती है और किसान ऊपरी वर्गों की माग पूरी करने वाली मिलों के लिए कच्चा माल पैदा करता है यह कैसी अनीति है।

आदमी अपने पैदा किये हुए पदार्थों से वञ्चित—मुद्रा-व्यवस्था से हमें समाज में पद-पद पर 'समुद्र में भी मीन प्यासी' के उदाहरण मिलते हैं. अन्नदाता किसान प्राय: घटिया अन्न पर निर्वाह करते हैं, और वह भी उन्हें अनेक दशाओं में काफी नहीं मिलता उनका बढ़िया अन्न उनके खाने की चीज नहीं होता, वह तो बिक्री के लिए होता है. किसान उसे बेच कर पैसा प्राप्त करने के लिए लालायित रहता है प्राय: देखने में

आता है कि गावो के जिन ग्वालो के यहा मनों दूध होता है, उनके बच्चो को दूध नसीब नही होता. वे लोग अपनी गाय भैंस का अधिक से अधिक दूध निकालते है; यहां तक कि बछिया, बछड़े और पड्डे को भी यथेष्ट दूध नहीं पीने देते. कुछ दशाओ मे तो वे गाय के बच्चो को थोड़े दिन का होने पर ही कसाई को बेच कर उसके दाम उठा लेते है, और फिर गाय को धोखा देने के लिए, उसका दूध निकालते समय उसके सामने एक नकली बच्चा खड़ा कर देते है, जिससे गाय दूध देने लगे इस प्रकार वे अधिक से अधिक दूध निकाल कर उसे बाजार मे लेजाकर हलवाइयो के हाथ बेच देते है, अथवा उसे अपने घरो मे जमा कर उससे घी निकाल कर पैसा प्राप्त करने की फिक्र मे रहते है उनके बच्चो को सिर्फ मट्ठा या छाछ मिलतीं है माली या बागवान अपने यहा की सब अच्छी बढ़िया साग-भाजी और फलो को बेच डालते है. उनके बालको को यह सिखाया जाता है कि ये चीजे हमारे खाने की नहीं हैं, ये वेचने की है, इनके दाम उठाने हैं. इस तरह के अनेक उदाहरण हमारे चारो ओर मोजूद है और मुद्रा-व्यवस्था के दोषो की घोषणा कर रहे हैं

मनुष्य मुद्रा-जीवी हो गया है—पहले आदमी खाने पहनने आदि के काम मे आने वाली चीजो का सग्रह रखता था. अन्न को धन मानने का प्रमाण 'धन-धान्य' शब्द के प्रयोग से मिलता है 'गो-धन' भी यहा बहुत प्रचलित रहा है, गौ को धन की इकाई माना जाता रहा है इस प्रकार मनुष्य पहले वस्तु-जीवी था. अब तो वह मुद्रा-जीवी है. धनवान कहे जाने वाले आदमियो के घरो मे व्यवहारोपयोगी वस्तुए बहुत मामूली परिमाण मे ही होती है. लखपति या करोड़पति के यहां बहुधा साल भर के गुजारे लायक भी सामान नही होता उसके यहां केवल

सिक्के (या नोट) होते हैं. सिक्कों से आदमी का पेट नहीं भरता न उसकी सर्दी गर्मी से रक्षा होती है. अनेक बार ऐसे अवसर आते हैं, जब सिक्का बहुत बड़े परिमाण में होते हुए भी आदमी अपनी मूल आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाता.

पाठकों ने एक राजा की कथा पढ़ी होगी. उसे ऐसा वरदान मिला था कि वह जो चीज छूता था, वह सोने की बन जाती थी. वह खुश था कि मैं अपना सोने का भंडार मनचाहा बढ़ा सकता हूँ. परन्तु जब उसका छुआ हुआ भोजन भी सोने में बदल गया और उसे भूखा रहना पड़ा तो उसे वरदान की तुच्छता मालूम हुई और वह उसे शाप समझने लगा. मुद्रा व्यवस्था ने अब व्यक्तियों तथा देशों को कुछ वैसी ही हालत में ला दिया है, धन के लोभ के कारण हम भोजन-वस्त्र आदि की सामग्री को सिक्कों में बदल कर कष्ट पा रहे हैं.

मानवता का ह्रास—यह नहीं, इससे भी अधिक चिन्ता और लज्जा की बात यह है कि हम आदमी का मूल्य मुद्रा या धन में आंक रहे हैं. जो जितना अधिक धनवान है, वह उतना ही अधिक गुणवान और योग्य समझा जाता है. हम यह नहीं सोचते कि उन धनवानों में मानवी गुण कहां तक हैं, उन्होंने अपने सामाजिक जीवन में लोकसेवा क्या की है, उनमें नैतिकता कितनी है. इसका परिणाम यह है कि आदमी नेकचलन और अच्छे गुणों वाला बनने की परवाह न करके, जैसे भी हो धनवान होना चाहते हैं, और इसके लिए भले-बुरे सभी उपायों को काम में लाते रहते हैं. ऐसी विचारधारा और ऐसे व्यवहार से व्यक्ति का तथा समाज का पतन होना स्वाभाविक ही है. इससे बचने के तरीकों का विचार इस खंड के आखरी अध्याय में किया जायगा.

चौबीसवां अध्याय

बैंक

पूजी या धन के कुछ लोगो के हाथ मे सचित हो जाने से भारत की आवश्यकता की पूर्ति न होगी, वह तो तभी होगी, जब उसका वितरण १६०० मील लम्बे और १५०० मील चौडे इस भूखड के सात लाख गावो मे इस प्रकार हो कि वह गाव वालों को सुलभ हो जाय.

—गाधीजी

आम तौर से धन चादी और सोने के सिक्कों के रूप मे ही जमा किया जाता है, और जमा करने का यही तरीका जहरीला है, हा बैंको मे जमा करना तो बेहद जहरीला है . सचमुच सुख पैसे के जमा करने मे नहीं है उसके छितराने और बिखराने मे ही है

भगवानदीनजी

मुद्रा तथा नोट आदि के बारे मे लिख चुकने पर अब हम इनसे सम्बन्ध रखने वाली सस्था अर्थात् बैंको के विषय मे विचार करते है अकसर हम बैंको के फायदो की बात किया करते हैं और बैंको के बढ़ने को देश की आर्थिक उन्नति का लक्षण समझते है इनसे होने वाली बुराइयो की ओर हमारा ध्यान बहुत कम जाता है.

बैंकों से हानि; पूजी का केन्द्रीकरण—बड़े-बडे यन्त्रोद्योगो और कल-कारखानो मे श्रम का केन्द्रीकरण होने की बुराइयां पहले बतायी जा चुकी है. बैकों मे पूजी का केन्द्रीकरण होता है. बैंको मे बहुत से आदमी अपनी-अपनी रकम जमा

करते हैं, इनसे जो पूंजी पहले बिखरी हुई होती है, वह एक-एक स्थान पर इकट्ठी हो जाती है और, यह तो साधारण अनुभव की बात है कि जितने आदमी बैंकों में रुपया जमा करते हैं, उनकी अपेक्षा बैंकों से उधार लेने वालों की संख्या बहुत कम होती है. इस प्रकार जिस पूंजी का उपयोग पहले बहुत से आदमी करते, बैंकों के कारण उसका केन्द्रीकरण हो जाता है, और उसका उपयोग थोड़े से आदमी करने लगते हैं ये लोग उसे ऐसे काम में लगाते हैं, जिससे इन्हें अधिक से अधिक आय हो; दूसरे शब्दों में यों कहा जा सकता है, कि इनके द्वारा पूंजी जनता का अधिक से अधिक शोषण करने में लगायी जाती है. इनके इस दुष्कर्म का साधन बैंक ही है

बैंकों की दूषित व्यवस्था—बात यह है कि आजकल बैंक मुख्यतया मुनाफा कमाने में लगे रहते हैं. जो भी व्यक्ति या संस्था इन्हें अधिक ब्याज दे सकती है, उसे ही ये रुपया उधार दे देते हैं, फिर चाहे वह आदमी या संस्था उस रुपये को किसी भी लोक-हित-विरोधी या जनता का शोषण करने वाले काम में लगाए प्राय प्रत्येक बैंक पर एक व्यक्ति अथवा कुछ इने-गिने व्यक्तियों का प्रभुत्व होता है, और वे ही उनके अधिकांश प्रबन्ध और मुनाफे के अधिकारी होते हैं वर्तमान काल में अनेक आदमी बैंकों में रुपया जमा करके सिर्फ उनके सूद से खूब मौज उड़ाते हैं और बेकारी का जीवन बिताते हैं सूद के बारे में खुलासा विचार अगले खंड में किया जायगा यहां तो खासकर इस बात की ओर ध्यान दिलाना है कि बैंक अपनी सफलता इसी में समझते हैं कि खूब रुपया जमा करके उनसे अधिक से अधिक लाभ उठाएं. अपनी आमदनी बढ़ाना ही वे अपना लक्ष्य मानते हैं, चाहे उनके द्वारा सर्वसाधारण का हित न हो कर, उलटा अहित ही क्यों न हो.

मिश्रित पूंजी के बैंकों का व्यवहार—उदाहरण के लिए मिश्रित पूजी के बैंको की बात लें, जो प्रायः परिमित देनदारी के होते है इनके अनेक हिस्सेदार बैंक के कारोबार की ओर असावधान हो जाते हैं, और सचालक अनाप-शनाप खर्च कर डालते है फिर, हिस्सेदारो (पूंजीपतियो) का श्रमियो से सम्पर्क नहीं रहता और वे उनके सुख दुःख का समुचित ध्यान नहीं रखते अमरीका आदि कुछ देशो में बड़ी-बड़ी बैंक-कम्पनियां राजकर्मचारियो और प्रभावशाली व्यक्तियो को अपने पक्ष में करके मनचाहे कानून बनवाने में सफल हो जाती है कुछ कम्पनियां अपने प्रतिद्वन्दियो को व्यवसाय-क्षेत्र से हटाकर, पदार्थों को घटिया बनाकर अथवा महंगा बेचकर मनमाना मुनाफा लेने की चिन्ता में रहा करती है. इन कम्पनियो में नैतिक आदर्श नही रहता सचालक प्रायः अपने मित्रो तथा रिश्तेदारो को बडे-बडे वेतन पर नियुक्त करा देते हैं, और अपने मिलने वालो से कच्चा माल महगे दामो मे लाकर उसे कम्पनी के नाम लिखा देते है बनावटी हिसाब के द्वारा वे मुनाफा अधिक दिखा देते है और इस प्रकार हिस्सो की कीमत बढ़ जाने पर अपने हिस्से बेचकर लाभ उठाते है सचालकों की ऐसी बेईमानी तथा छल-कपट से सर्वसाधारण को बहुत धोखा और हानि होती है राज्य के कानूनो द्वारा उन पर कुछ नियन्त्रण किया जाता है, पर वे बहुधा कानून से बचने के नये-नये उपाय निकाल लेते है.

बैंकों के कारण अमनुषिक व्यवहार—प्राचीन काल मे जब मुद्रा का विशेष चलन नही था, और इसलिए बैंको की पद्धति भी प्रचलित न थी, लोगो मे परिग्रह की इतनी कामना नही थी, बहुत परिग्रह हो भी नहीं सकता था. एक आदमी अनाज, कपास आदि का सग्रह आखिर कहा तक करता! पर अब

आदमी लाखों करोड़ों रुपये आसानी से बैंक में जमा कर सकता है लोभी व्यक्ति अपनी बैंक की जमा बढ़ाने में लगा होता है उसके लोभ की कहीं सीमा नहीं. दस हजार रुपये जमा हो गये तो ग्यारह हजार करने की इच्छा है अगर दस लाख हो जाए तो ग्यारहवे लाख के लिए प्रयत्न जारी रहेगा, चाहे उसके पास पड़ोस के आदमी या रिश्तेदार आदि घोर आर्थिक कष्ट सहते हो. पहले जब आदमी के पास अन्न का भंडार होता था तो वह जब दूसरो को भूखा-नगा देखता तो उसका हृदय सहज ही पिघल जाता और वह उनकी सहायता के लिए अपना भंडार खोल देता पर अब आदमी अपनी बैंक की जमा में सहज ही कमी करना नहीं चाहता उसे हमेशा यह फिक्र लगी रहती है कि अगर वह करोड़पति है तो लखपति न रह जाए

बैंकों का उद्देश्य क्या हो ?—बैंकों को चाहिए कि जन-साधारण की रोजमर्रा की आर्थिक समस्याएं हल करने में सहायक हो, खेती और उद्योग धंधों की उन्नति के लिए आवश्यक सुविधाएं प्रदान करें, खासकर गांवों की जनता के मार्ग में आने वाली कठिनाइयां दूर करें पहले कहा जा चुका है कि किसी देश की आर्थिक उन्नति का माप यह नहीं है कि उसकी नकदी या पूंजी का परिमाण बहुत अधिक हो, वरन यह है कि उसके आम निवासियों की मूल आवश्यकताएं पूरी हो और उन्हें अपने सांस्कृतिक विकास का अवसर मिले बैंकों को इस दिशा में महत्वपूर्ण भाग लेनेवाला होना चाहिए उपर्युक्त कार्यों की समुचित व्यवस्था के लिए देश भर में स्थान-स्थान पर सहकारी समितियों द्वारा संचालित सहकारी बैंकों का संगठन होना चाहिए. आगे हम इनके विषय में विशेषतया भारत की परिस्थिति को लक्ष्य में रखकर लिखते हैं.

सहकारी समितियाँ—प्रत्येक बड़े गांव में या ग्राम-समूह में बहु-उद्देश्य सहकारी समिति स्थापित होनी चाहिए, जिसके कुछ कार्य ये हो—

१—वह गांव वालो के लिए आवश्यक और अच्छे अन्न का, तथा ग्रामोद्योगो के वास्ते कच्चे पदार्थो का यथेष्ट संग्रह करे.

२—वह गांव की अतिरिक्त पैदावार की बिक्री का प्रबन्ध करे, तथा उसके बदले मे गाववालो की अन्य आवश्यकताओं का सामान मगाने और उसे गावो मे वितरण करने की व्यवस्था करे.

३—वह खेती के लिए बढ़िया बीज तथा कुदरती खाद आदि का सग्रह रखे और किसानो को आवश्यकतानुसार दे इसी प्रकार वह उद्योग धधो मे काम आने वाले औजार आदि उपकरणो की समुचित व्यवस्था करे

४—वह सरकार और जनता के बीच मे मध्यस्थ रूप से रहती हुई सरकारी मालगुजारी वसूल करने का प्रबन्ध करे

आजकल फसल के दिनो मे अनाज दूर-दूर की केन्द्रीय मडियो में बिक्री के लिए ले जाया जाता है, और पीछे जब गाव वालो को जरूरत होती है तो वे उन मडियो से ही बहुत मंहगे भाव से लाने के लिए बाध्य होते है इसे लाने-लेजाने मे काफी खर्च पड़ता और बहुत बर्बादी होती है सहकारी समितियो के प्रयत्न से अनाज-बैंक खोले जाकर इसमे रोक-थाम होनी चाहिए.

अनाज-बैंक—इस समय बैंक प्राय. नकद रुपया ही जमा करते है. इस से किसानो को बहुत असुविधा और हानि होती है कल्पना करो किसी किसान को फसल के समय तीन मन अनाज बेचना है, जिसका भाव तीन सेर फी रुपया है. तो उसे

उसके चालीस रुपये मिलते है, इसमे से किराया, चुगी, दस्तूरी, दलाली आदि के दो-तीन रुपये और निकल जाते हैं. पीछे किसान जब इस रुपये से अन्न खरीदना चाहता है तो अन्न का भाव चढा हुआ होता है, सम्भव है, वह दो सेर का ही हो, फिर, उसे मडी से लाने मे खर्च भी पड़ेगा इस प्रकार उसे पौने दो मन से भी कम अन्न मिल पाएगा इससे किसान को होने वाली हानि स्पष्ट है पहले की अपेक्षा उसकी क्रय-शक्ति लगभग आधी ही रह गयी सहकारी समितियो का काम है कि अन्न आदि वस्तुओ के वैंको की पद्धति चला कर किसानो को इस अपार हानि से बचाए ऐसे वेंक मे किसान फसल के समय अपना अतिरिक्त अन्न जमा कर सकते हैं इस अन्न-कोष मे से कोई किसान आवश्यकता होने पर निर्धारित नियमो के अनुसार अन्न ले सकता है यह कार्य मुनाफे के लिए नहीं होगा, वरन् किसानो मे सहकारिता की भावना बढाने और उन्हे एक-दूसरे को सहायता करने की क्रियात्मक शिक्षा देने के लिए होगा कुछ स्थानो पर इस तरह की योजना अमल मे आ रही है आवश्यकता है, स्थान-स्थान पर ऐसी व्यवस्था हो हा, अनाज को अच्छी दशा मे रखना और समय समय पर बदलते रहना चाहिए.

वस्तु-विनिमय वैंक—अनाज-बंको के अतिरिक्त, जगह-जगह वस्तु-विनिमय वैको की भी व्यवस्था होनी चाहिए इन वैंको में मनुष्य के काम आने वाली प्रमुख वस्तुओ का सग्रह रहे, और आदमियो को एक वस्तु जमा करके, उसके बदले में दूसरी वस्तु लेने की सुविधा हो एक गाव या ग्राम समूह के आदमियों को अपनी पैदावार बेचने तथा अपनी अन्य मूल आवश्यकताओ के पदार्थों को खरीदने के लिए दूर-दूर जाने की जरूरत न हो. उनका काम वहा का वहा ही हो जाय• और

वे क्रय-विक्रय की जटिलता से तथा इससे होने वाली आर्थिक हानि से बचे

श्रम-बैंक—ऐसी भी व्यवस्था होनी चाहिए कि आदमी अपने श्रम के बदले भी जीवन की प्रमुख आवश्यकताओं के पदार्थ प्राप्त कर सके श्रम करने का इच्छुक कोई व्यक्ति अपनी आजीविका की खोज में इधर-उधर भटकता फिरे, यह हमारे सामाजिक जीवन की दूषित पद्धति का जीता-जागता प्रमाण है इस का अन्त होना ही चाहिए और, इसका उपाय उपर्युक्त श्रम-बैंक ही है. प्रत्येक ग्राम या ग्राम-समूह की पचायत को यह जानते रहना चाहिए कि वहा किस प्रकार के कैसे-कैसे काम की आवश्यकता है, और कौन-कौन व्यक्ति उसे पूरा करने योग्य हैं इस प्रकार वह व्यक्ति और श्रम का सामजस्य बैठाए. ऐसा होने से लोगो को पैसे की वर्तमान दासता से छुटकारा मिलेगा और वे अपने स्वाभिमान की रक्षा करते हुए अच्छा नागरिक जीवन बिता सकेंगे

राष्ट्रीय बैंक—प्रत्येक राज्य में एक राष्ट्रीय बैंक होना चाहिए, जिसकी शाखाएं देश के खास-खास केन्द्रो मे हों इस बैंक का कार्य बडे पैमाने पर हो, यह अन्य बैंको को आवश्यक होने पर सहायता दे साधारणतया ऐसी सहायता का अवसर कम ही आएगा, जब कि देश भर मे सहकारी बैंक, अनाज-बैंक और वस्तु-विनिमय बैंको का जाल सा बिछा हुआ होगा और ये सब बैंक एक दूसरे के सहायक होगे. हा, कभी सयोग से किसी बड़े क्षेत्र मे अकाल आदि पड जाय तो राष्ट्रीय बैंक उसका कष्ट-निवारण करेगा. यह बैंक किसी ऐसी फसल की खेती को या ऐसे उद्योग धधे को कोई सहायता न देगा, जिसके द्वारा केवल मुट्ठी भर लोगो को खूब मुनाफा, और थोड़े से

आदमियों को आजीविका मिले, परन्तु बहुसंख्यक श्रमी बेकार हो जाय.

सर्वोदय अर्थव्यवस्था में प्रत्येक ग्राम या ग्राम-समूह अपनी मूल आवश्यकताओं के सम्बन्ध में स्वावलम्बी होगा तो देश के स्वावलम्बी होने में कोई शंका ही नहीं है. तथापि विशेष परिस्थितियों में ऐसा सम्भव है कि किसी खास वस्तु की आवश्यकता हो और वह दूसरे देश से लेनी पडे इस प्रकार कुछ विनिमय की आवश्यकता होगी, यह कार्य राष्ट्रीय बैंक द्वारा किया जायगा, और जैसा आगे बताया जायगा, अनेक दशाओं में वस्तु-विनिमय द्वारा ही हो सकेगा

विशेष वक्तव्य—भारतवर्ष में तथा और भी बहुत से स्थानों में बैंक जनता की संस्था नहीं हैं. इनका अधिकांश कारोबार कुछ धनी लोगों तक सीमित होता है, उन्हें ये और अधिक धनवान बनाने में सहायक होते हैं इनका आधार पूंजी होती है, श्रम या जिन्स नहीं भारत के बंक यहां के रिजर्व बैंक से सम्बन्धित और उसके मुखापेक्षी हैं और रिजर्व बैंक इंगलैंड के द्रव्य-बाजार से प्रभावित होता है आवश्यकता है यहां के बैंक पूंजी के आश्रित न होकर श्रम के आधार पर काम चलाए, तभी लोकहित होगा

सहकारिता की वर्तमान पद्धति भारत में लोकप्रिय नहीं हुई यह यहां अंग्रेजो की चलायी हुई है; उन्होंने इसे शासन-यन्त्र के अधीन रखा, और अब भी यह प्रायः वैसी ही है जब यह अधिकारियों के प्रभाव से मुक्त होगी, तभी जनता में जड पकड सकेगी और उसके उत्थान में सहायक होगी.

पच्चीसवां अध्याय

सही कीमत

जीवन के लिए ज्यादा महत्व की चीजो की कीमत ज्यादा आकी जाए और कम महत्व की चीजो की कीमत कम

—किशोरलाल मश्रूवाला

सामाजिक आवश्यकता से ही किसी चीज की कीमत आकी जानी चाहिए. आज हमारी शिक्षा तो हमे हर चीज को पैसे से तोलने का सबक सिखा रही है.

जो का कुमारप्पा

अर्थशास्त्र मे मूल्य या कीमत का वडा महत्व है, यहां तक कि इसे अर्थशास्त्र का केन्द्र-बिन्दु कहा जा सकता है. वास्तव मे हमारे जीवन मे मूल्याकन का विषय बहुत विचारणीय है

मूल्य के दो भेद—जब हम यह कहते है कि अमुक वस्तु बहुत मूल्यवान या कीमती है तो इसके आगे दिये दो अर्थो मे से कोई एक या दोनो ही हो सकते है—(१) इसकी उपादेयता बहुत है, यह बहुत उपयोगी है, और (२) इससे दूसरी वस्तुएं बड़े परिमाण मे खरीदी जा सकती है या इसके खरीदने के लिए दूसरी वस्तुओ की काफी परिमाण मे आवश्यकता है. इस तरह मूल्य के दो भेद हुए—उपयोग-मूल्य और विनिमय-मूल्य. बहुत सी चीजो का उपयोग-मूल्य अपेक्षाकृत बहुत अधिक होने पर भी उनका विनिमय-मूल्य नहीं के बराबर होता है.

उपयोग-मूल्य और विनिमय-मूल्य में अन्तर—कितनी ही चीजों के उपयोग-मूल्य और विनिमय-मूल्य में आकाश पाताल का अन्तर होता है. इसका एक मुख्य कारण यह है कि कुछ चीजें (जिनमें मनुष्य के जीवन-रक्षक पदार्थ भी हैं) बहुत बड़ी मात्रा में मिल जाती हैं, वे प्रकृति-दत्त हैं और प्रकृति ने उन्हें खूब उदारता से दिया है आदमी उनका नित्य काफी परिमाण में उपयोग करता है, और उपयोग करते-करते वह एक तरह से यह भूल सा गया है कि उनकी उपयोगिता कितनी अधिक है इसके विपरीत, दूसरी कुछ चीजें ऐसी हैं जो बहुत परिमित परिमाण में ही मिल पाती हैं. यद्यपि मनुष्य के लिए उनकी उपयोगिता विशेष नहीं है. पर उसके मन में उनके वास्ते खास आकर्षण है, वह उनको संग्रह करके रखना चाहता है वर्तमान अर्थशास्त्रियों की भाषा में उनकी माग बहुत है, और पूर्ति कम है लोगों में उन्हें लेने के लिए प्रतिस्पर्द्धा या चढाऊपरी है इस से उनके दाम अस्वाभाविक रूप से बढ जाते हैं एक हीरे आदि का उपयोग-मूल्य नहीं के बराबर होने पर भी उसका विनिमय-मूल्य हजारों और लाखों रुपये होता है.

कीमत सम्बन्धी वर्तमान धारणा से अनिष्ट—आजकल सेर भर रोटी की अपेक्षा पाव भर लोहा और पाव भर लोहे की अपेक्षा एक तोला सोना, तथा सेर भर दूध की अपेक्षा छटाक भर शराब अधिक कीमती मानी जाती है हम 'कीमती' चीजों के संग्रह और संचय में लगे हैं धनी कहे जाने वाले आदमियों के घरों में उनके उपयोग के विविध सामान के अलावा जो धन होता है, वह सोना, चादी, सिक्के या नोट आदि के रूप में होता है, जिसे वे अपने दूसरे भाइयों की सहायता के लिए खर्च करने में काफी कजूस होते हैं हमारा धनवान होना दूसरों के क्या काम का! अनेक बार हमारा गाव या नगर अर्थशास्त्रियों

के हिसाब से धनी गिना जाते हुए भी भूखे मरने वालों का निर्दय साक्षी होता है

आमूल परिवर्तन की आवश्यकता ; सर्वोदय की दृष्टि— कीमत सम्बन्धी वर्तमान विचार-धारा को आमूल बदलने से ही नीति और मानवता की रक्षा होगी. हमारा व्यवहार ऐसा होने की आवश्यकता है कि जीवन के लिए जो चीज़ जितने अधिक महत्व की हो, उतनी ही उसकी कीमत अधिक मानी जाय. इस विषय मे श्री किशोरलाल मश्रूवाला के कुछ सुझाव ये है*—

१—प्राणों की, खासकर के मनुष्य के प्राणों की, कीमत सबसे ज्यादा आकी जानी चाहिए. किसी भी जड पदार्थ और स्थान की प्राप्ति को मनुष्यों के प्राणो से ज्यादा महत्व नही देना चाहिए

२—अन्न, जलाशय, कपडे, घर, सफाई व तन्दुरुस्ती वगैरा से सम्बन्ध रखने वाली चीजे और उन्हे सिद्ध करने वाले धधे दूसरी सब चीजो और धधो की अपेक्षा पैसे के रूप मे ज्यादा कीमत उपजाने वाले होने चाहिए

३—देश की महत्व की सम्पत्ति उसकी अन्न पैदा करने की शक्ति और मानव सख्या के आधार पर निश्चित की जानी चाहिए, उसकी खनिज सामग्री, विरल सम्पत्ति या यत्रो के आधार पर नही अगर एक आदमी के पास सोना या पेट्रोल पैदा करने वाली पाच एकड जमीन हो और अन्न पैदा करने वाली पाच सौ एकड की खेती हो और उसे इन दोनो मे से एक को छोडना पडे तो आज के अर्थशास्त्र के मुताबिक वह पाच सौ एकड की खेती को छोड देगा सच्ची कीमत-गणित के मुताबिक उसे पॉच एकड की खदान छोडने के लिए तैयार रहना चाहिए यानी ऐसा तरीका काम मे लाना चाहिए जिससे सम्पत्ति की कीमत स्वर्णदृष्टी से नहीं अन्नदृष्टी से और उपयोगिता की शक्ति से ऑकी जाए

---

* 'जड-मूल से क्रान्ति' पुस्तक से.

४—एक रुपया या एक रुपये का नोट कहीं रखे हुए एक ग्रेन सोने या चाँदी का प्रमाण-पत्र नहीं, बल्कि अमुक सेर या तोले अनाज का प्रमाण-पत्र होना चाहिए

५—'सोनेका भाव अमुक रुपये तोला है और चावल का भाव अमुक रुपये मन है'—इस भाषा में अब कोई अर्थ नहीं रह जाना चाहिए मन पूछा जाय तो इसमें कोई अर्थ रहा भी नहीं, क्योंकि रुपया खुद ही स्थिर माप नहीं है सोने का भाव फी तोला अमुक मन गेहूँ या चावल है, ऐसी भाषा काम में लानी चाहिए (बेशक तोले तथा मन दोनों के वजन पहले से निश्चित हो जाने चाहिए)

६—नोट या सिक्के द्वारा ही कर्ज चुकाना लाजमी नहीं होना चाहिए अनाज के मालिक को यह अधिकार होना चाहिए कि वह नोट या सिक्के के पीछे रहने वाले निश्चित अनाज द्वारा अपना कर्ज चुकाए

सर्वोदय की दृष्टि से ये बातें बहुत विचारणीय तथा व्यवहार में लाने योग्य हैं

छब्बीसवां अध्याय

व्यापार और उसके साधन

आपके गाव मे सब तरह की शक्ति है, तो भी आप भिखारी है . . . आप अपनी चीजो को बेचना चाहते हैं और बेचते क्यो हैं ? पैसे के लिए और पैसा क्यो चाहिए ? बाहर से सारा पक्का माल खरीदने के लिए. अपना कच्चा माल आप बेचते हैं और पक्का माल मोल लेते है. इस तरह से आप लोग स्वराज्य का अनुभव नहीं कर सकेंगे. —विनोबा

समाज की अर्थ-व्यवस्था में व्यापार का स्थान— आरम्भ मे आदमी का मुख्य कार्य उत्पादन था. अदल-बदल, पदार्थ-विनिमय या व्यापार पीछे जाकर शुरू हुआ समाज की अर्थ व्यवस्था मे उसका स्थान बहुत समय तक गौण था

उत्पत्ति मे तो सब आदमी भाग लेते थे और व्यापार मे थोड़े से ही; और जो आदमी व्यापार करते थे, वे अकेले इसी काम मे न लगे रहकर उत्पादक-कार्य अवश्य करते थे समाज का कोई वर्ग ऐसा न था, जो केवल व्यापार ही करे. अब तो व्यापारियो का एक अलग और बहुत बडा वर्ग है वे उत्पादक न होकर केवल खरीद-बेच करने वाले रह गये हैं. वे उत्पादको और उपयोक्ताओ के बीच मे मध्यस्थ बने हुए है, इसलिए ये समाज के उक्त दोनो वर्गो को अधिक से अधिक दूर रखने मे अपना हित मानते हैं वे उत्पादको के आश्रित हैं, अगर उनसे उन्हे कुछ माल मिल जाता है तो वे उसे उपयोक्ताओ के पास पहुॅचा देते है, अन्यथा उन्हे कुछ काम नहीं रहता.

इसलिए वे चाहते हैं कि उत्पादक ऐसा माल बनावे जिसकी उपयोक्ताओं में अधिक से अधिक और जल्दी से जल्दी खपत हो और वे (व्यापारी) खूब मुनाफा ले सकें

व्यापार एक सेवा-कार्य है—असल में व्यापार वह है जिसमें आदमियों की ऐसी चीजों को, जो उनकी जरूरत से ज्यादा हो, उन आदमियों के पास पहुँचाया जाय, जिन्हें उनकी अनिवार्य आवश्यकता हो इस प्रकार व्यापार का अर्थ केवल अतिरिक्त वस्तुओं का ही विनिमय है, अपने मुनाफे के लिए लोगों को उनके लिए आवश्यक भोजन-वस्त्र से वंचित करके उन्हें कुछ फैशन, शृंगार, भोगविलास की वस्तुएं देना नहीं इस प्रकार असली व्यापार के एक सेवा-कार्य होने में कोई सन्देह नहीं है व्यापारियों को जानना चाहिए कि स्थानीय जनता की मूल आवश्यकताओं की कौन कौनसी वस्तुओं की कमी है, और कौनसी वस्तुएं ऐसी हैं जो उसकी आवश्यकता से अधिक हैं. फिर उन्हें मालूम करना चाहिए कि ऐसे स्थान कौनसे हैं जहां वे अपने यहां की अतिरिक्त वस्तुओं को लेजाकर या भेजकर वहां से ऐसी वस्तुएं ला सकते हैं या मंगा सकते हैं, जिनका वहां तो उपयोग न होता हो, पर जो यहां (व्यापारियों के स्थान में) बहुत आवश्यक हो इस प्रकार व्यापारी दोनों स्थानों के निवासियों का हित-साधन कर सकते हैं. पदार्थों को एक स्थान से दूसरे स्थान लाने-लेजाने में जो खर्च हो, उसे तो व्यापारी अपने ग्राहकों से लेगा ही, इसके अतिरिक्त वह अपने श्रम का उचित प्रतिफल या मेहनताना भी ग्राहकों से ले सकता है. इस प्रकार पदार्थों को खरीदने की कीमत से एक निर्धारित सीमा तक ऊंचे भाव से बेचने में कोई हर्ज नहीं है हां, उसका कार्य जनता को सुविधाएं पहुंचाना है, और सेवा-भाव से ही किया जाना चाहिए

इस समय व्यापार कैसा होता है, और उसमे क्या नीति वर्ती जाती है, तथा सर्वोदय की दृष्टि से उसमें क्या परिवर्तन होना चाहिए, इन बातो का विचार अगले अध्याय में किया जायगा; यहां व्यापार के मार्ग और साधनो के सम्बन्ध मे लिखा जाता है.

व्यापार के मार्ग और साधन—व्यापार के तीन मार्ग है—स्थल-मार्ग, जल-मार्ग और वायु-मार्ग. स्थल-मार्ग मे कच्ची या पक्की सड़को पर ठेलो, पशुओ, मोटरो (मोटर-लारियो) आदि से या लोहे की पटरी पर रेल से माल ढोया जाता है. कहीं-कहीं रेले जमीन के नीचे भी जाती हैं. जल-मार्ग मे नदियो, नहरो और समुद्र की गिनती होती है, इनमे नाव, स्टीमर और जहाज आदि चलते हैं. पनडुब्बियों से भी माल ढोया जाता है. वायु-मार्ग से हवाई जहाजो द्वारा माल लाया-लेजाया जाता है. सभी प्रकार के व्यापार मे डाक, तार, टेलीफोन, वेतार का तार आदि सहायक होते है.

इनके उपयोग में ध्यान देने की बात— वर्तमान अर्थ-व्यवस्था में व्यापार को बहुत अधिक महत्व दिया जाने के कारण प्रत्येक देश उपर्युक्त साधनो की उन्नति और वृद्धि की ओर खूब ध्यान देता है और इस मद मे काफी खर्च करता है हम पहले कह आए है कि आधुनिक व्यापार अधिकाश मे निजी मुनाफे के लिए किया जाता है सर्वोदय अर्थ-व्यवस्था की दृष्टि से यह सेवा के लिए किया जाना चाहिए; उस दशा मे इसका रूप स्वभावतः बहुत कम रह जाएगा फिर इन साधनो के उपयोग की भी इतनी आवश्यकता न रहेगी. तथापि कुछ तो रहेगी ही. इसके अतिरिक्त यातायात के वास्ते भी ये साधन जरूरी है और, ससार के विविध देशो के आदमी एक दूसरे से सम्पर्क बढाए और भ्रातृभाव स्थापित करे—यह आवश्यक और

उपयोगी है, इसलिए इन साधनों की उन्नति और वृद्धि होना भी उचित है. परन्तु इसमें एक बात का ध्यान रखना बहुत जरूरी है; इन साधनो का निर्माण तथा उपयोग इस प्रकार होना चाहिए कि ये कुछ थोड़े से आदमियों के लिए न रह कर सबके काम आए, खासकर जनता के उस हिस्से के लिए उपयोगी हो, जो नीचे स्तर वाला माना जाता है; साथ ही इसमें समाज का व्यापक हित अर्थात् भावी पीढियो की भलाई की उपेक्षा न की जानी चाहिए हम यहां प्रत्येक साधन के सम्बन्ध मे अलग-अलग न लिखकर, केवल ऊपर कही हुई बात को साफ करने के वास्ते उदाहरण-स्वरूप सडक, मोटर और रेल के बारे में ही विचार करते हैं.

सड़कें—प्राय: गावो मे जाने वाली सडको की ओर बहुत कम ध्यान दिया जाता है बड़े बडे शहरो की सडकों पर, मोटरों की सुविधा का ख्याल करके सडके कितनी बढिया बनायी जाती है, और उन पर कितना अधिक व्यय किया जाता है! फिर, उन पर बहुधा बैलगाडियो को चलने का निषेध रहता है, वैसे भी इन तारकोल या सिमेंट की सडको पर बैलो को चलने मे बहुत कठिनाई होती है, उन पर उनके पांव रपट जाते हैं हम सोचें कि शहरो की इन बढिया सडको का उपयोग कितने थोड़े से व्यक्तियो के हित के लिए होता है, हमारी अधिकाश जनता गावो में रहती हैं. उन्हें माल ढोने के लिए बैलगाडी, टट्टू, खच्चर, गधे, ऊंट, भैंसे आदि का उपयोग करना होता है. हमारी सडको में यह बात ध्यान मे रखी जानी चाहिए. वर्तमान अवस्था में तो अनेक गावो मे किसी भी प्रकार की सडकें नहीं है, केवल कुछ रास्ता या गली सी बनी रहती है, जो कहीं ऊंची, कहीं बहुत नीची होती है, जिस में जगह-जगह गढ्ढे होते हैं, और जो बरसात के मौसम मे बिलकुल बेकाम हो जाती हैं अनेक स्थानो मे

आदमियों को गांवो मे जाने के लिए खेतो के बीच में से जैसे-तैसे रास्ता निकालना होता है. इसमें बहुत परेशानी उठानी पड़ती है बैलगाडियो आदि का जाना-आना प्रायः बन्द ही होता है यह ठीक है कि हम गावो के एक दूसरे से बहुत व्यापार करने के पक्ष में नहीं हैं, हम उन्हे अधिक से अधिक स्वावलम्बी देखना चाहते है, पर यातायात की समुचित सुविधा रहना आवश्यक है तो उसके लिए सडको की यथेष्ट उन्नति होनी चाहिए. प्रत्येक गाव को देश के दूसरे गांवो से जोडने वाली ऐसी सडको का जाल होना आवश्यक है, जो खासकर बैलो के लिए सुविधा-जनक हो.

मोटर—आजकल मोटरो (मोटर लारियो या ट्रको) का प्रचार बढ़ता जा रहा है. शहरो और कस्बो मे ही नहीं गावो से माल लाने-लेजाने के लिए भी, और अनेक दशाओ मे तो आधी चौथाई मील के वास्ते भी, आदमी इनसे ही काम लेते है अथवा लेना चाहते हैं. इस प्रकार बैलों का काम छीना जा रहा है. अब सवाल यह है कि क्या हम अपनी अर्थव्यवस्था मे, खासकर ग्राम्य क्षेत्र मे, इन दोनों को बनाये रख सकते हैं यदि दोनो को नहीं और केवल एक को ही रखना है तो किस को यह स्पष्ट है कि खेती आदि की दृष्टि से हमारा काम बैल के बिना नहीं चल सकता, बैल रखना ज़रूरी है. फिर उसके साथ यदि मोटर रहे तो बैल के लिए काफी काम नहीं रहता और किसान के लिए उसे रखना भार हो जाता है. ऐसी दशा मे बैल का निर्वाह नहीं हो सकता. गावो में माल-ढुलाई के लिए मोटरो का उपयोग करना परोक्ष रूप से बैल की आजीविका छीनना और उसे भूखा मारना है इसलिए ग्रामीण क्षेत्रो मे मोटरे साधारणतया न चलायी जानी चाहिए केवल ऐसे ही अवसर पर इनका उपयोग होना चाहिए, जब लोकहित की दृष्टि

से ऐसा करना बहुत ही जरूरी हो; जैसे कि अकाल, महामारी, बाढ, भूकम्प आदि की दशा में लोगो को जल्दी ही राहत पहुँचाने के लिए

यह भी ध्यान रखा जाना जरूरी है कि मोटर चलाने के लिए पेट्रोल की जरूरत होती है, और भारत में यह पदार्थ बाहर से मगाना होता है, इस प्रकार इसमें परावलम्बन है यदि यह प्रश्न न भी हो तो भूमि मेइस पदार्थ का भडार सीमित है, इसका उपयोग बहुत सोच-समझ कर किफायत से ही होना चाहिए, जिससे भावी पीढ़ियो के हित की अवहेलना न हो इस प्रकार मोटर का चलन नियत्रित ही रहना ठीक है.

रेल—रेले हमारी सभ्यता और प्रगति की सूचक मानी जाती हैं. इनके द्वारा हजारो आदमियो की एक-साथ दूर-दूर की यात्रा जल्दी हो जाती है, और देश मे लाखो मन अन्न आदि प्रति दिन एक स्थान से दूसरे स्थान भेजा जाता है. यह सोचकर हम इन पर इतने मुग्ध है कि इनके दोषो की ओर हमारा ध्यान ही नही जाता हम इनके कारण केन्द्रित सत्ता पर निर्भर रहने वाले तो होते ही हैं इसके अतिरिक्त हमारी यात्रा आज हमारे सामाजिक ज्ञान मे बहुत कम सहायक होती हैं, और हम अपने भाइयो के सम्पर्क मे भी बहुत कम आते हैं हम कई-कई बार रेल से अपने देश की यात्रा करने का अभिमान करते हुए भी अनेक दशाओ मे यह नहीं जान पाते कि हमारे से थोडो ही दूर रहनेवाले आदमियो के आचार-विचार, रहन-सहन आदि कैसा है, उन्हे किन आवश्यक वस्तुओ का अभाव है, उनके क्या कष्ट हैं, और हम उनकी किस प्रकार या कहा तक सेवा-सहायता कर सकते हैं ये बाते तो पैदल-यात्रा से ही मालूम हो सकती हैं. पर हम तो, अगर हमारा वश चले, तो पाच-सात मील की भी यात्रा के लिए रेल का आसरा लेते है इस दशा मे हम अपने बैलों,

घोड़ो आदि का यथेष्ट उपयोग नहीं कर पाते, और वे बहुधा हमारे लिए भार होते है अच्छा हो, हम कम से कम पाच-सात मील-की यात्रा के लिए तो रेलो के उपयोग की बात न सोचें, पर इस बात के लिए हमे किसी कानून के बनने की प्रतीक्षा न कर, स्वयं अपने ऊपर प्रतिबन्ध लगाना बेहतर है.

विकेन्द्रीकरण और स्वावलम्बनयुक्त अर्थव्यवस्था में रेलो के लिए विशेष काम नहीं रहता ये केवल आपत्कालीन साधन के रूप मे ही बनायी और रखी जा सकती हैं देश के बहुत बड़े भाग मे अकाल पड रहा हो तो खाने के पदार्थ दूसरी जगह से जहां वे अधिक हो, जल्दी ही लाये जाकर बहुत से आदमियो को भूखा मरने से बचाया जा सकता है परन्तु इसका दुरुपयोग भी बहुत हो सकता है, और वर्तमान अवस्था मे हो ही रहा है आज रेलो से जितनी माल-ढुलाई होती है, इसमें बहुत सी अनावश्यक है व्यापारी लोग अपने फायदे के लिए यह काम कर रहे हैं; इसमे लोकहित की भावना नहीं, गावो का स्वावलम्बन नष्ट किया जारहा है इस समय हमारे नगरो और कस्बो मे ही नहीं, गावो तक मे कितना ही फैशन या शौकीनी आदि का सामान पहुँच रहा है. यद्यपि मूल आवश्यकताओ के पदार्थ भोजन और कपड़ा वहा पर्याप्त मात्रा मे नहीं है इस शोचनीय परिस्थिति के निर्माण मे रेलो का बडा हाथ है. इस प्रकार रेलो के उपयोग के सम्बन्ध मे हमे बहुत सतर्क रहने की जरूरत है हमे तेज गति वाले यातायात के ऐसे साधनो पर कम से कम निर्भर रहना चाहिए, जो केन्द्रीय सत्ता के हाथ मे हो, और जो सर्वसाधारण के शोषण मे सहायक हो.

मोटर और रेलो के उपयोग में जो दृष्टि रहना हमने आवश्यक बताया है, वह व्यापार और यातायात के सभी साधनो में रहनी चाहिए.

सत्ताइसवां अध्याय

व्यापार-नीति

व्यापारी सेवा का भाव रखें व्यापार एक धर्म है, धर्म का मतलब लूटना नहीं होता, बल्कि सेवा करना होता है

—विनोबा

एक चतुर विक्रेता ने मुझे कहा था कि ग्राहक को जो चीज चाहिए वह मेरी दुकान में न हो तो भी उसे मेरी दूसरी कोई न कोई चीज खरीदने को लगाये बिना मुझे चैन नहीं पटती .... . बड़े पैमाने के उत्पादक और विक्रेता दोनों का स्वार्थ इसी में है कि ग्राहक को जरूरत हो या न हो, उसके पल्ले चीज बांध दी जाय.

—श्रीकृष्णदास जाजू

व्यापार की दूषित पद्धति—पिछले अध्याय में बताया गया है कि व्यापार एक सेवा-कार्य होना चाहिए. पर वर्तमान दशा में आदमी इस बात को व्यवहार में प्राय. भूल जाते हैं. वे जैसे भी बने इस कार्य से अधिक से अधिक धन प्राप्त करना चाहते है, इस लिए खूब मुनाफेखोरी करते हैं, जुदा-जुदा ग्राहकों से वस्तुओं के दाम जुदा-जुदा लेते हैं, अनजान ग्राहकों के अज्ञान से अनुचित लाभ उठाते हैं, अपना माल खपाने के लिए भले-बुरे उपायों को काम में लाने से संकोच नहीं करते, यहां तक कि अनेक बार सरकारी नियमों की भी अवज्ञा करते हैं, अथवा उस सीमा तक ही उनका पालन करते हैं, जहां तक कानून की पकड में न आए इस प्रकार व्यापार एक सेवा-कार्य न रहकर लूट, शोषण और धोखा-धड़ी का काम रह गया है

कृत्रिम मांग पैदा करना और बढ़ाना—व्यापारी जानते है कि किसी वस्तु की मांग जितनी अधिक होती है, उतनी ही उसकी कीमत अधिक हो जाती है, और उन्हे उसके बेचने मे लाभ अधिक रहता है. इसलिए व्यापारी इस प्रयत्न में रहते है कि लोगो में उनकी वस्तु के लिए अधिक से अधिक मांग हो. माल का तरह-तरह का आकर्पक और झूठा-सच्चा तथा जनता को धोखे में डालने वाला विज्ञापन दिया जाता है इसके अतिरिक्त चतुर चालाक व्यापारी आरम्भ मे अपनी चीजो को मुफ्त मे बांट कर और पीछे कुछ समय तक नाममात्र के मूल्य पर देकर भी जनता मे उन चीजो की मांग बढा देते है. क्रमशः वे चीजे चल निकलती है. लोगो मे उनकी 'माग' पैदा हो जाती है पर यह मांग उनकी स्वाभाविक मांग न होकर कृत्रिम रूप से बढ़ाई हुई होती है हमने देखा है कि चाय-कम्पनियो के एजन्ट गांवो मे गये हैं, जहां पहले एक भी आदमी को चाय का नाम या 'गुण' ज्ञात न थे, और इस प्रकार उनमे इस चीज की मांग का कोई प्रश्न ही नही था. इन एजन्टो ने ग्रामोफोन सुना कर और मुफ्त मे गर्मागर्म चाय पिला कर लोगो को चाय पीने की लत लगा दी. जब उनकी चाय पीने की आदत पड गयी तो चाय की पुड़िया कुछ कीमत से दी जाने लगी पीछे तो चाय की 'मांग' इतनी बढ़ गयी कि आदमी उसकी पूरी कीमत देकर खरीदने लगे. बीड़ी-सिग्रेट आदि के लिए ऐसा ही प्रचार किया जाकर जनता मे 'मांग' पैदा की गयी और बढ़ायी गयी है.

मंहगे-सस्ते का विचार—अनेक आदमी अपने माल को अधिक से अधिक महगा बेचने और दूसरे के माल को सस्ते से सस्ता खरीदने को बड़ी चतुराई समझते है ज़रा सोचिए, इसका परिणाम ! मिल का सस्ता कपडा पहनने से कत्तिनो

और जुलाहो का रोजगार मारा जाता है, कारखानो में बने सस्ते जूते पहनने से चमारो में बेकारी आ रही है, मिल में सस्ते दर पर पिसा हुआ आटा काम में लाने से पिसनहारियो का काम मारा गया है, जनता की स्वास्थ्य-हानि की बात रही अलग इस तरह सस्ती चीजें खरीदने की हमारी आदत गरीबो का कष्ट बढाती रहती है इस विषय पर एक दूसरी दृष्टि से भी विचार होना चाहिए गाव का जुलाहा यदि उसी गाव के चमार का बनाया जूता पहनता है, और चमार जुलाहे का बुना कपड़ा काम में लाता है तो जुलाहे का पैसा चमार के घर, और चमार का पैसा जुलाहे के घर जाता है. इस प्रकार गाव का पैसा गाव में ही रहता है परन्तु यदि जुलाहा चमार के जूते को महगा समझे और चमार जुलाहे के कपडे को महगा समझे और वे एक-दूसरे का माल न ले तो दोनो का पैसा बाहर जाए हम यह तो चाहते हैं कि हाथ-कारीगर हमारा माल खरीदे और हमारा कारोबार बढ़े, परन्तु हम कारीगरो का माल महगा समझ कर उसे खरीदते नहीं इस दशा मे कारीगरो का गरीब होना और उनमे हमारे माल को खरीदने की शक्ति न होना स्पष्ट ही है इससे हमारी भी हानि होती है, पर इसका दायित्व हम पर ही है इस प्रकार महगे-सस्ते की हमारी विचार-धारा बहुत अनिष्टकारी है.

मानवीय दृष्टिकोण की आवश्यकता—वर्तमान अर्थ-शास्त्री मानवीय मूल्यो की उपेक्षा करते हुए आर्थिक मूल्यो को प्रधानता देते हैं, इसी लिए महगा बेचने और सस्ता खरीदने की बात कहते हैं. परन्तु यह भौतिकवाद बहुत अनिष्टकारी है. रस्किन ने इसकी आलोचना करते हुए लिखा है—

'सब से सस्ते बाजार मे खरीदो ?—ठीक है, लेकिन तुम्हारा बाजार सस्ता किससे बना. आग लगने के बाद छत की शहतीरों का कोयला

सस्ता हो सकता है और भूचाल के बाद आपकी सड़कों पर पड़ी ईंटे भी सस्ती हो सकती हैं—किन्तु इसीलिए ही तो अग्निकाण्ड और भूकंप राष्ट्रीय लाभ नहीं बन सकते. बेचो सबसे मॅंहगे बाजार में ?—हां, बिल्कुल ठीक, लेकिन तुम्हारा बाजार महगा किससे बना ? तुमने आज रोटी बहुत अच्छी बेची. क्या यह एक मरते हुए आदमी को दी, जिसने उसके लिए अपना रहा-सहा सब पैसा दे डाला और जिसको अब फिर कभी रोटी की जरूरत ही नहीं रहेगी'.

आवश्यकता है, हम यह समझें कि धन मनुष्य से बढ़ कर नहीं; धन के कुछ लाभ के बदले यदि हमें चरित्र की हानि उठानी पड़ती है तो असल में हम घाटे में ही रहते है. हमारा कारोबार, हमारा व्यापार सब ऐसा होना चाहिए, जिससे हमारा विकास हो; समाज का, देश का, मनुष्यमात्र का हित हो.

मुनाफेखोरी रोकी जाय—वर्तमान व्यापार में जो अनीति है, उसका मूल कारण मुनाफेखोरी की भावना है इसे रोकने की बहुत ही ज़रूरत है इसके लिए पहले तो माल का जहा उत्पादन हो, वहां ही उसका उपयोग करके, व्यापार-कार्य को ही कम कर दिया जाए. इसके विषय मे पहले लिखा जा चुका है. दूसरा उपाय यह कि समाज मे ऐसा वातावरण पैदा किया जाए कि व्यापारी अपनी आजीविका के लिए कोई उत्पादक कार्य करें. ऐसा होने पर वे व्यापार से होने वाली आय या मुनाफे पर निर्भर न रहेगे, और इस कार्य को सेवा-भाव से कर सकेंगे कुछ लोग सोचते हैं कि मुनाफेखोरी रोकना सरकार का काम है, परन्तु सरकारी कार्यवाही का परिणाम अकसर बहुत हानि-कर होता है वास्तविक सफलता पाने के लिए ग्राहकों को सयम, त्याग और दृढ़ता रखने की जरूरत है; जब दुकानदार न्याय-नीति छोड़ कर मनमाने दाम लेने लगे तो ग्राहकों को उनके

माल का बहिष्कार करने, और कुछ समय उस माल के अभाव में कष्ट सहने के वास्ते तैयार रहना चाहिए आखिर, व्यापारी को झुकना और रास्ते पर आना ही पडेगा, क्योंकि उसे माल बेचना तो है ही

स्थानीय व्यापार निजी रहे; अन्तर्प्रान्तीय और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पचायती या राष्ट्रीय हो—यह भी आवश्यक है कि व्यापारी एक गाव या एक कस्बे के भीतर होने वाले स्थानीय व्यापार को ही निजी तौर पर कर सके इसे छोड कर शेष व्यापार के लिए ऐसी व्यवस्था की जाए कि उस पर समाज का यथेष्ट नियन्त्रण रहे और उसका लाभ भी समाज को मिले अर्थात् कोई व्यक्ति उसे अपनी स्वार्थ सिद्धि का साधन न बना सके इस प्रकार एक गाव या नगर के दूसरे गाव या नगर से (जो चाहे उसी प्रान्त में हो, या किसी दूसरे मे, अथवा देश से बाहर, किसी दूसरे राज्य में हो) होने वाले व्यापार से कोई व्यक्ति मालामाल न हो सकेगा

इस अन्तर्प्रान्तीय और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के सम्बन्ध मे श्री जवाहरलाल जैन का विचार इस प्रकार है—

(१) छोटे गाव और कस्बो मे यह काम गाव-पचायतो की सहकारी व्यापार समिति को करना होगा, इसमें स्थानीय इकाई के उत्पादक, व्यापारी और उपयोक्ता तीनो के प्रतिनिधि तथा सरकार के प्रतिनिधि के रूप मे गांव-पचायत के तिनिधि शामिल होंगे यह समिति खरीदी और बेची वस्तुओं का मूल्य तय करेगी और गाव के छोटे व्यापारियो के जरिये या सीधे गांव वालो को बेचने की व्यवस्था करेगी. इस कार्य मे जो भी बचत होगी, वह गांव या कस्बे की सार्वजनिक सुविधा के काम में खर्च की जाएगी.

(२) बड़े कस्बो या शहरो मे यह व्यापार सहकारिता के आधार पर सगठित व्यापार-मंडलो द्वारा किया जायगा और इसमे उत्पादको, छोटे व्यापारियो और म्युनिसिपल कौसिलों के प्रतिनिधि शामिल होगे. इनके अलावा जिलो, प्रान्तो और केन्द्र की व्यापार-समितियां भी होगी, जिनका काम नीति-निर्देशन होगा जिला-व्यापार-मडलो का मार्ग-निर्देश प्रान्तीय सरकार के प्रतिनिधि करेगे, और प्रान्तीय व्यापार मडलो और केन्द्रीय सरकार को एक दूसरे के दृष्टिकोण समझने का मौका मिलेगा. केन्द्रीय व्यापार मंडल एक तरफ तो प्रान्तीय इकाइयो की आवश्यकता और कठिनाइयो को समझेगा साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय सस्थाओ और सगठनो के दृष्टिकोण और परिस्थिति को भी सामने रखेगा और इस तरह अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार नीति इस देश मे क्या रहेगी—इसका निर्णय करेगा. *

विदेशी व्यापार की वर्तमान नीति—आजकल विदेशी व्यापार नीति के खासकर दो भेद किये जाते है:—(१) मुक्त या बेरोक-टोक व्यापार करने की नीति और (२) संरक्षण नीति इनके सम्बन्ध मे विविध ब्योरेवार बातो मे न जाकर हमे यही विचार करना है कि इस समय विदेशो से व्यापार करने मे खासकर क्या लक्ष्य रखा जाता है और क्या रखा जाना चाहिए.

प्रायः आज कल जब हमे अपना व्यापार बढ़ाना होता है तो मुक्त द्वार व्यापार का नारा लगाते है, लेकिन अगर हमारे देश को दूसरे देश के व्यापार से हानि की आशका हो तो हम सरक्षणवादी बन जाते है, और लोगो को स्वदेशी की भावना अपनाने, अपने यहां की चीजे महगी होने पर भी खरीदने, और विलायती (दूसरे देशो का.) माल सस्ता होने पर भी उसका बहिष्कार

* 'सर्वोदय अर्थ व्यवस्था' से

करने का उपदेश देने लगते हैं हमारी कोई निश्चित नीति या सिद्धान्त नहीं होता

व्यापार-वृद्धि का भ्रम—आजकल प्रायः जब किसी देश के निवासी यह देखते हैं कि पहले की अपेक्षा हमारा व्यापार अब बढ़ रहा है तो उन्हे बहुत हर्ष और अभिमान होता है परन्तु असल में आयात-निर्यात के अंको के बढने से किसी देश की सुख-समृद्धि साबित नहीं होती कुछ दशाओ मे उससे उसकी माली हालत का गिरना ही जाहिर होता है. उदाहरण के लिए भारत की बात लें अब से सौ वर्ष पहले भारत का विदेशी व्यापार (आयात तथा निर्यात) कुल मिला कर लगभग पच्चीस करोड रुपये के माल का होता था. विगत वर्षो मे इसके मूल्य का परिमाण छः सौ करोड़ रुपये अर्थात् चौबीस गुने से ऊपर पहुँच चुका है इसे अनेक आदमी भारत की आर्थिक उन्नति और ससार के अन्य भागो से सम्पर्क की वृद्धि के रूप मे देखते हैं और बहुत खुश होते है पर कौन यह कहने का दुस्साहस करेगा कि आज दिन भारतवासी पहले से इतने गुने अधिक सुखी हैं !

तैयार माल के निर्यात की प्रतियोगिता और ससार-संकट—आज कल औद्योगिक कहे जाने वाले देशों मे हरेक की यह इच्छा रहती है कि वह अन्य देशो मे अपना तैयार माल अधिक-से-अधिक भेजे. इस प्रकार औद्योगिक देशो मे आपस में इस बात की होड लगी रहती है कि किस क्षेत्र में किस का माल अधिक खपता है बात यह है कि तैयार माल अधिकांश में यन्त्रों द्वारा बनाया जाता है और इसमे वर्तमान अर्थव्यवस्था के अनुसार मिल-मालिको और कारखानेदारो को खूब मुनाफा होता है और ये अपने यहा की सरकारो को प्रभावित करके औद्योगिक दृष्टि से पिछडे हुए देशो को अपना बाजार बनाने और

उनका शोषण करने के प्रयत्न में लगे रहते हैं. इस प्रकार विविध औद्योगिक देशों की सरकारों का आपस में मनोमालिन्य और तनाव बना रहता है, और गुटबन्दी के कारण इनका संघर्ष बढ़कर विश्वव्यापी होने की सम्भावना रहती है. इस तरह संसार पर हर दम महायुद्ध का संकट छाया रहता है.

आयात-निर्यात-नीति में सुधार की आवश्यकता— इस संकट को हटाने का उपाय यही है कि हरेक देश आयात तथा निर्यात करने में स्वार्थ या खुदगर्जी की बात न सोचे, बल्कि सब के हित की दृष्टि रखे. निर्यात के सम्बन्ध में प्रत्येक देश की नीति यह होनी चाहिए कि अपना माल खपाने के लिए वह कोई जोर-जबरदस्ती छल-कपट, प्रलोभन आदि से काम न ले और न दूसरे देशों में विलासिता की वस्तुएं भेज कर मुनाफा कमाने की इच्छा रखे हम निर्यात् उसी वस्तु की करें जो दूसरों के लिए बहुत हितकर हो, जिससे उनका शोषण न हो.

अब आयात की बात लें जैसा पहले कहा गया है, खासकर भोजन-वस्त्रादि रोजमर्रा की जरूरतों के लिए हमें स्वावलम्बी होना चाहिए और शरीर-श्रम को प्रतिष्ठा देते हुए अपनी कृषि तथा ग्रामोद्योगों की उन्नति करनी चाहिए, जिससे हमें अपनी मूल आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विदेशों से आयात न करनी पड़े. फैशन या विलासिता आदि की वस्तुओं की आवश्यकता हमें हो ही नहीं इस प्रकार हमारी आयात-निर्यात का परिमाण कुछ थोड़े से अनिवार्य पदार्थों तक सीमित रहने में ही संसार का कल्याण है

विशेष वक्तव्य—विदेशी व्यापार सरकार की देख-रेख और नियंत्रण में होगा, उसके बारे में विशेष विचार छठे खंड में किया जाएगा. यहां इस बात की ओर ध्यान दिलाना है कि उसमें भी

व्यपारियो को मानवता की भावना रखनी चाहिए दूसरे देशो से जैसे भी बने धन कमाकर लाने की नीति गलत है इतिहास मे अनेकबार देशभक्ति आदि के नाम पर इसे अपनाया गया पर अब हम ऐसी गलतियो को न दोहरावें हमें किसी देश में अपनी उन्हीं अतिरिक्त वस्तुओ की, और उतने ही परिमाण मे निर्यात करनी चाहिए, जिनकी और जितनी उस देश के निवासियो के लिए हितकर हो इसी प्रकार बाहर से माल मगाने मे हमारी नीति दोनो देशो का हित करने की हो अपने-पराये का भेद छूटता है, इसे तिलाजलि दी जानी चाहिए

अट्ठाइसवां अध्याय

पैसे की प्रभुता से मुक्ति

आज रुपये के एक सेर चावल, कल डेढ सेर, दस साल पहले १२ सेर थे कौन जाने कब और कितना होगा. इस तरह इस झूठे पैसे को हम सिर्फ निबाह नही रहे हैं, हमारा कारोबार ही बना चुके है अगर लफंगे को हम कारोबारी बनाए तो हम धोखे मे नही आएँगे तो और क्या होगा।

—विनोबा

जिसके पास जितना ही अधिक पैसा है, वह उतना ही बडा शोषक है आज की रुपये की आर्थिक व्यवस्था मनुष्य को अधा बनाकर उसे असत्य, शोषण और हिन्सा की ओर ले जाती है तथा झूठ, फरेब और ठगाई का बाजार गर्म करती है

—जो का कुमारप्पा

पहले बताया जा चुका है कि मुद्रा का चलन होने और पीछे बैंको की परिपाटी चल निकलने से आदमी उपयोग के पदार्थों की अपेक्षा मुद्रा के पीछे पड़ गया है एक प्रकार से वह मुद्राजीवी हो गया है इससे समाज को कैसी क्षति पहुँची है, इसका कुछ परिचय 'मुद्रा-व्यवस्था' अध्याय मे दिया गया है अब इससे राहत पाने के विषय मे विचार करना है.

विनिमय का माध्यम; सोने चांदी की जगह श्रम—विनिमय के माध्यम के लिए खासकर सोने चांदी की मुद्रा काम मे लायी जाती है. परन्तु प्रथम तो सर्वसाधारण के रोजमर्रा के जीवन

में इन धातुओं का कोई महत्व नहीं है, इनका उपयोग-मूल्य नहीं के बराबर है; फिर इनका जो विनिमय-मूल्य है, वह इनके खान से निकालने और साफ करने के श्रम के ही आधार पर नहीं है. उसमें अन्य व्यय और कर आदि मिले हुए हैं, जिनका हिसाब बडा जटिल है इस प्रकार धातुओं को या इनके सिक्कों को विनिमय का माध्यम बनाना अनुचित है. इनकी जगह श्रम को ही माध्यम मानना ठीक है· हां, वह श्रम ऐसा ही होना चाहिए, जिससे सब परिचित हों, जिसके परिमाण का हिसाब आसानी से लग सके ऐसे श्रम का स्थूल रूप कोई जीवनोपयोगी वस्तु ही हो सकती है कहा किस वस्तु को प्राथमिकता दी जाय, यह देश-काल का विचार करके निश्चय किया जा सकता है.

इस प्रसग में गाधीजी का कथन है कि—

'धातु के सिक्के या कागज के नोट मूल्य का सच्चा माप नहीं है, क्योंकि उनकी कीमत कृत्रिम है फिर भी बडे पैमाने पर व्यापार करने के लिए यह माप आवश्यक है ग्रामोद्योग के पीछे उलटी कल्पना है हम बडे पैमाने का व्यापार नहीं चाहते हम देहात की स्वतन्त्रता और स्वावलम्बन चाहते हैं देहातों में पारस्परिक व्यवहार के लिए धातु की या अन्य किसी कृत्रिम माप की आवश्यकता नहीं हो सकती हमारा माप तो कोई ऐसी देहाती चीज होनी चाहिए, जिसे हर कोई बना सकता है, जिसका आसानी से सग्रह हो सकता है, और जिसका दाम हर रोज बदलता नहीं है. ऐसी वस्तु क्या हो सकती है? साबुन नहीं, तेल नहीं, तरकारी नहीं इस तरह गिनते-गिनते खाली सूत रह जाता है इसे सब उत्पन्न कर सकते हैं उसकी हमेशा जरूरत रहती है अगर सूत-माप हम देहात में दाखिल कर सकें तो देहात की बहुत उन्नति कर सकेंगे, और शीघ्रता से स्वावलम्बी बन सकेंगे

'इस योजना में प्रत्येक घर टकसाल बन जाता है, और जितने चाहिए उतने पैसे (सूत) बना सकता है. साफ है कि ऐसी दुकानों से सादा

पदार्थ, विदेशी पदार्थ, नुकसान-कारक पदार्थ आदि नहीं बिक सकते, इसलिए सूत का सम्बन्ध जहाँ तक बन सके, पवित्र रहेगा.'

मूल्य-माप के लिए सूत की गुंडी; इसकी विशेषता— सूत के द्वारा मूल्य-माप किस प्रकार हो और उसकी क्या विशेषता होगी, यह आगे स्पष्ट किया जाता है. कल्पना करो, १० के अंक की ६४० तार की (प्रति तार ४ फीट लंबा) एक गुण्डी कातने का श्रम मापदंड माना जाए यह माना जाए कि एक औसतन कुशल व्यक्ति दो घंटे में एक गुंडी कात सकता है एक कताई-श्रमिक का काम आठ घंटे के दिन का चार गुंडी श्रम हुआ. आज की पैसे की परिभाषा में मान लीजिए, यह आठ आना हुआ इसका अर्थ यह हुआ कि आज आप जिस-वस्तु के मूल्य का माप एक रुपया कहते हैं, उसका इस नये सिक्के के अनुसार ८ गुंडी-श्रम होगा

सूत की गुंडी को विनिमय का माध्यम मानने से आर्थिक जीवन की सारी दिशा और गति ही बदल जाती है. आज रुपया, पौंड, डालर सोने या चांदी के सिक्के के प्रतीक है जो भारत इंगलैन्ड या अमरीका के खजाने मे सुरक्षित है, जबकि गुंडी-श्रम उस सामान्य गांव मे रहने वाले कतवारी भाई या बहिन के श्रम का प्रतीक है, जो करोडो की सख्या में सारे देश में, देश के गांव-गांव मे, फैले हुए है हम अपनी सारी आवश्यकता और सुविधा की चीजो को उससे नापकर उसके साथ समरस होते हैं. गुंडी का विचार करने से हमारे सामने जो तसवीर आती है, वह हमारे ही जैसे हाडमांस वाले गरीब ग्रामवासी की होती है जो चरखे के सरल और सामान्य साधन के जरिये सभवत. अपने खेत मे पैदा हुई रूई को कातता है और उसके कपड़े से अपनी लज्जा निवारण करता है, और सर्दी से बचता है.

गुण्डी-श्रम को विनिमय का माध्यम स्वीकार कर लेने से स्पष्ट है कि लोगो में इसके प्रचलन की शुरूआत होगी, गुंडियो की कताई स्वतः बढ़ेगी, उससे रूई के उत्पादन में स्वत. वृद्धि होगी और कपड़े की आवश्यकता की पूर्ति जनता स्वयं अपने श्रम से कर लेगी. इसका प्रभाव यह भी होगा कि सोने-चादी के सिक्कों का महत्व घट जायगा और श्रम तथा वस्तुओ का ही विनिमय होने की परपरा बढ़ेगी. श्रम और वस्तुओं का सग्रह सोने-चादी के सिक्को की तरह बड़े परिमाण में तथा पीढ़ी-दर-पीढी नहीं किया जा सकता इसलिए आज की धन-लिप्सा में कमी होगी श्रम की प्रतिष्ठा होने पर श्रम का शोषण भी नहीं हो पाएगा †

सूत की गुंडी का चलन; इससे लाभ—सूत माप की बात केवल कहने की नहीं है; इसका चलन, कुछ परिमित क्षेत्रों में ही सही, समय-समय पर हुआ है और उसमें खासी सफलता भी मिली है. 'गरीबों की टकसाल' शीर्षक, श्री कृष्णदास गांधी के लेख से (जो 'सर्वोदय' अक्तूबर १९४९ में प्रकाशित हुआ) स्पष्ट है कि नालवाडी (वर्धा) में सूत-चलन की दुकान का प्रयोग ग्राम-सेवा-मडल की ओर से सन १९४२ के आन्दोलन से भी पहले चल रहा था. उसे देख कर बाबा लाभसिंह जी ने जालंधर मे सेंट्रल रिलीफ कमेटी की ओर से सूत-चलन की दुकान चलायी. इसमे ग्राहको के साथ पैसे से कोई व्यवहार नहीं किया गया; सब चीजें—पूनी, चर्खा, सरजाम, खादी, निर्वासितों के केन्द्र में बना हुआ हाथ-बुनाई का कपडा, चप्पल, साबुन और अनाज आदि—केवल सूत के ही बदले बेची गयीं दुकान के साथ स्त्रियो और लडकियो का तालीम-वर्ग भी चलाया गया जिसकी फीस भी सूत के रूप में ही ली गयी.

† श्री जवाहिरलाल जैन की 'सर्वोदय अर्थ व्यवस्था' से सकलित

इसी लेख में कहा गया कि 'पहले जो स्त्रिया रिलीफ-केन्द्र' से मुफ्त सहायता चाहती थीं, वे अब सूत कात कर अपने परिश्रम के बदले मे चीजे खरीदने लगी है उनमे भिक्षा-वृत्ति की भावना बढ़ रही थी, वह रफा होकर कताई के रूप मे ज्यादा से ज्यादा परिश्रम करने का हौसला बिना किसी उपदेश के इस दुकान ने उनमे पैदा कर दिया है यह दुकान केवल निर्वासितो की न रहकर आम जनता के लिए खुली रखी गयी है. अब ऐसी ही और दो दुकाने लुधियाना और अम्बाला मे भी सेन्ट्रल रिलीफ कमेटी की ओर से खोल दी गयी है जालधर मे रोजाना करीब ३०० और अम्बाला मे इससे कुछ बेशी गुडियो का माल बिकता है अब इस सूत से बनी खादी भी इन ग्राहको को सूत-गुडी लेकर दी जाने लगी है, सूत-दुकान का यह तरीका पुरानी 'बदलौत' (अदल-बदल) पद्धति का स्मरण दिलाता है निर्वासितो मे परिश्रम-प्रेम बढ़ाने का काम तो इसने किया ही है, पर इसने गरीबो की टकसाल का भी काम किया है. †

पैसे की प्रभुता से मुक्ति पाने के उपाय—यदि हम यह निश्चय कर लेगे कि हमे पैसे की प्रभुता से होने वाली भयकर हानियो से अपना पिड छुडाना है तो हमे इसका रास्ता भी मिल जायगा, और वह रास्ता क्रमशः सुगम भी हो जाएगा. मुख्य बात यह है कि जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओ के सम्बन्ध मे लोगो का, खासकर गाव वालो का स्वावलम्बन हो. भोजन, वस्त्र और मकान की सामग्री के लिए बाहर वालो के

---

† 'प्रलोभन के कारण हाथ-सूत के नाम पर मिल सूत न लाया जाए, यह देखना होगा जो सूत आए, उसकी खादी बेचने का ठीक इन्तजाम करना होगा और खासकर पैसे के हिसाब से सूत मे हिसाब रखने के लिए विशेष प्रामाणिक और कुशल कार्यकर्ता लगेंगे

आश्रित न रहा जाय भारत मे बहुत से ऐसे भागो के आदमी चावल खाने लग गये है, जहा धान पैदा नही होता, कुछ लोग दूसरे स्थानो से बिस्कुट और चीनी आदि मगाते है तथा अपने यहा की मोटी रुई बेचकर दूर-दूर से महीन रुई या उसका कपडा खरीदते है इस खरीद-बेच से पैसे के चक्र मे पडना ठीक नही है इससे बचने के वास्ते हमे सयम और सादगी से काम लेना चाहिए हॉ, इसके लिए अनाज-बैंक, वस्तु-विनिमय-बैंक और श्रम-बैंको की जरूरत होती है इनके बारे मे पहले लिखा जा चुका है

कुछ उदाहरण—पैसे की प्रभुता मिटाने की बात बहुत से पाठको को अजीब और हसी-मजाक की सी लगेगी• पर यह गम्भीरता से विचार करने की है विविध स्थानो पर इनका प्रयोग हो रहा है, भले ही वह अभी छोटे-छोटे पैमाने पर हो आचार्य विनोबा अपने साथियो सहित परधाम आश्रम (वर्धा) मे यह प्रयोग सफलता पूर्वक कर रहे है पिछले दिनो आपने हैदराबाद को, पीछे तैलगाना प्रदेश और उसके बाद मध्यप्रदेश, उत्तर-भारत, विंध्य-प्रदेश आदि की यात्रा भी पैदल ही की, जिससे पैसे के तत्र से मुक्त रहते हुए जनता से सम्पर्क भी बढे

मई १९५१ से श्री कुमारप्पा वर्धा के पास सेलडोह नामक गाव मे पैसे के तत्र से मुक्ति का प्रयोग कर रहे है यह गाव वर्धा-नागपुर सडक पर ७८० आदमियो की बस्ती का है यह गरीब और गिरी हुई हालत मे है यहाँ पन्नाई आश्रम खोला गया है पन्नाई का अर्थ है, खेती आश्रम का मुख्य काम सतुलित खेती होगी, साथ म खेती के साथ चलने वाले दूसरे धन्धे भी होंगे, इनके द्वारा ही आश्रम अपने परिवार का निर्वाह करेगा आश्रम गाव के जीवन से पूरा मेल रखेगा और गाव के पुनर्निर्माण मे गाव के लोगो की सहायता लेगा गाव मे एक बाल-मदिर, एक

बुनियादी पाठशाला, एक आरोग्य-मंदिर और एक गांव-हितकारी केन्द्र की आवश्यकता है. इन सब कामो में गांव के लोग पूरी मदद करेगे.

देश मे जहां-तहां ऐसे प्रयोग और भी चल रहे हैं हम इन उदाहरणो से उत्साहित होकर इस दिशा मे आगे बढ़ें तो पैसे से पूरा छुटकारा भले ही न हो हम इसकी वर्तमान दूषित प्रभुता से बहुत-कुछ बच सकते है.

पैसे का सीमित और निर्दोष उपयोग — इस समय पैसा मनुष्य का साध्य बना हुआ है. वह जोड़ कर रखा जाता है, और दूसरो का शोषण करने में लगाया जाता है, वह मनुष्य-मनुष्य में भेद भाव पैदा करता है. यदि इसके ये दुर्गण न रहे तो वह अब भी उपयोगी हो सकता है. उदाहरण के लिए छोटे सिक्के (भारत मे पैसे, इकन्नी, दुअन्नी, चवन्नी, अठन्नी आदि; इंग्लैंड मे पेंस या अर्द्ध-शिलिंग आदि) अधिकतर रोजमर्रा के ही काम मे आते हैं; इन्हें कोई जमा करके नहीं रखता, और इनके द्वारा व्यापार व्यवसाय में एक दम उथल-पुथल नहीं मचती फिर, इन सिक्कों से छोटा-छोटा भुगतान भी आसानी से हो सकता है कल्पना करो कि एक आदमी ने पन्द्रह मिनट या आधा घंटा हमारे लिए श्रम किया, इसके लिए उपर्युक्त सिक्को में उसका हिसाब तुरन्त ही चुकाया जा सकता है.

कुछ लोगो का मत है कि रेल-किराया, मोटर किराया, डाक महसूल आदि के चुकाने के लिए रुपये या नोट की ज़रूरत है * इन्हे जमा करने के लिए लोगो में आकर्षण या प्रलोभन न हो, इसके लिए ह्रासमान मूल्य वाले नोटो

* ऐसी भी व्यवस्था की जा सकती है कि ये कार्य उसी तरह निश्शुल्क हों, जैसे शिक्षा और चिकित्सा आदि.

का प्रस्ताव किया जाता है इसका अर्थ यह है कि एक या दो-तीन माह आदि की निर्धारित अवधि के बाद रुपये को अथवा एक रुपये के नोट को चलाना हो तो वह एक आना कम कीमत में चले. इस प्रकार हर बार उपर्युक्त अवधि बीतने पर उसकी कीमत एक एक आना कम होती जाए, अथवा इतने मूल्य का टिकट लगाने पर नोट पूरी कीमत का माना जाए. इस योजना से प्रत्येक व्यक्ति अपने नोट को जल्दी से जल्दी खर्च करेगा, नोट चलते रहेंगे, कहीं जोड़कर न रखे जाएंगे नोटों के मूल्य में जो कमी होगी, अथवा उन पर जो टिकट लगाये जाएंगे. उनसे होने वाली आय सार्वजनिक हित में लगायी जाए या उससे सरकारी मुद्रा विभाग का खर्च चले. इस प्रस्ताव के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए नोट एक-एक रुपये तथा दस-दस रुपये के ही हो, अधिक कीमत के नहीं

श्री विनोबा के विचार—पैसे से मुक्ति के सम्बन्ध में श्री विनोबा के कुछ मुख्य विचार इस प्रकार हैं—

'देहातों को हम पैसे से प्रथम छुडा देना चाहते हैं, और शहर अगर पूरी तरह न बदलें, लेकिन ग्रामों के साथ सहकार करें, पूरी तरह उनके अनुकूल बन जाए, तो भी बहुत है. तो इस तरह यह समाज-रचना बदलने का काम हम शीघ्र करना चाहते है. उसी तरह से पैसे पर आधारित समाज-रचना बदलना चाहते हैं और श्रम के आधार पर समाज-रचना करना चाहते हैं जब हम ऐसा कहते हैं, तब लोग समझते हैं कि हम पुरानी 'बारटर' (वस्तु-विनिमय) की व्यवस्था लाना चाहते हैं लेकिन मुझे 'बारटर' की व्यवस्था मकसूद नहीं है 'बारटर' की व्यवस्था एक बहुत प्रथम अवस्था में हुई थी उसमें कई अड़चनें हैं. मैं उसे फिर से लाना नहीं चाहता, बल्कि मैं तो पेपर-करेन्सी (कागजी सिक्का) ही पसन्द करता हूं.

'गाव के लिए मै ऐसी करेन्सी नहीं चाहता, जिस पर आज की तरह पैसे के अंक छपे हों, बल्कि ऐसी जिस पर श्रम के घटों के अक लिखे हो; और वह करेन्सी किसी सुलतान या बादशाह की मर्जी से नासिक के प्रेस मे नही छपी हुई होगी, बल्कि जितने घटे प्रत्यक्ष परिश्रम किया होगा, उसको नोट करने वाली करेन्सी होगी, और उस कागज पर जो नकद परिश्रम हुआ होगा, वह लिखा जाएगा. जो उधार परिश्रम होगा, वह नही लिखा जाएगा. इस तरह का चलन चलेगा; और वाकी गाव की उपयोग की चीजें, जिनका कच्चा माल गाव मे ही उपलब्ध है, गाव मे ही बनेंगी. यह हमारी योजना है' ['हरिजन सेवक', २६ दिसम्बर १९५१]

पाँचवाँ खंड

वितरण

धनवानों से

तुम कहते हो, हम धनवान् हैं, हमने अपने पराक्रम से धन पैदा किया है. पर यह समझ रखो कि अगर रात न होती, तो दिन न होता सैकडो दरिद्र हैं, इसी लिए तुम धनवान् हो. तुम्हारे पास दो रुपये हैं, तो समझलो कि तुम्हारे किसी पडौसी की जेब दो रुपयों से खाली है. उसे रुपयों की जरूरत है, इसलिए तुम्हारे रुपये का मूल्य है. बिना हजारों को दरिद्र बनाये तुम धनवान् नही हो सकते. अगर वे दरिद्र न हो तो तुम धनवान् हो ही नहीं सकते. धन की उपयोगिता सिर्फ इतनी है कि उसके द्वारा मनुष्य अपने परिश्रम के लिए जीविका प्राप्त करता है. जीवन की हानि से धन का सग्रह होता है

गरीबों से

तुम्हें रोटी पाने का हक है, पर तुम्हारे दूसरे भी हक हैं, जिन पर तुम्हे पहले ध्यान देना चाहिए. अगर तुम चाहते हो, तो रोटी के टुकडे माँगो. पर कुत्ते की तरह मत माँगो माँगो तो बच्चे की तरह. तुम अपने उदर-भरण के लिए लडो, पर उससे अधिक इस बात के लिए लड़ो कि सच्चरित्र और पवित्र जीवन व्यतीत करने का भी तुम को अधिकार है.

—रस्किन

उन्तीसवां अध्याय

वितरण की समस्या

उत्पादन-कार्य में हरेक मनुष्य का योग उसकी शक्ति के अनुसार होना चाहिए और उपज का वितरण उसकी आवश्यकता के अनुसार उत्पादन और उपयोग में बराबरी होनी चाहिए, कोई भेद-भाव नहीं होना चाहिए एक ग्वाले को उतना ही मिलेगा, जितना कि पंचायत के मुखिया को. ऐसा भी हो सकता है कि अगर पंचायत का मुखिया घर में अकेला है, तो उसे ग्वाले से कम मिले.

—जो. का. कुमारप्पा

उत्पन्न पदार्थ के वितरण में दो प्रकार से विचार होता है—उपयोग की दृष्टि से, और उत्पादन की दृष्टि से. उपयोग की दृष्टि से यह विचार करना होता है कि जो माल पैदा या तैयार किया गया है उसे उपयोक्ता तक किस प्रकार पहुँचाया जाए, उसकी खरीद-बेच किस तरह हो, इस कार्य में किस तरह अधिक से अधिक सुविधाएं की जाएं और यह कार्य जल्दी-से-जल्दी, तथा कम खर्च से हो जाए. इन बातों का विचार पिछले ('विनिमय') खंड में किया जा चुका है यहां उत्पादन की दृष्टि से ही विचार करना है.

वितरण की जटिलता—उत्पादन की दृष्टि से वितरण का रूप बहुत जटिल है. इसमें उत्पत्ति के साधनों (भूमि, श्रम, पूंजी, और व्यवस्था) के प्रतिफल दिये जाने का विचार किया जाता है आजकल भूमि वाले को लगान, श्रमी को मजदूरी, पूंजी वाले को सूद और व्यवस्थापक को मुनाफा दिया जाता है.

यद्यपि कई देशो से अब जमींदारी प्रथा उठ गयी तथा उठ रही है, तथापि कुछ स्थानो मे अब भी बनी हुई है. ऐसी अवस्था मे सरकार और किसान के बीच मे मध्यस्थ रूप जमींदार के होने से मालगुजारी के अतिरिक्त लगान की कितनी कठिनाइयाँ और मुसीबते रहती है, इसका भारतवासियो को काफी कटु अनुभव है भारतवर्ष की भाति अन्य कई देशो मे भी लगान की यह जटिलता प्रत्यक्ष रूप से विद्यमान रही है.

लगान के अतिरिक्त वितरण की समस्या का एक भाग मजदूरी का है मजदूरो और पूंजीपतियो का संघर्ष आधुनिक अर्थव्यवस्था का नित्य-कर्म है विविध देशो की सरकारो ने इसे मिटाने के नही, तो कम करने के विविध प्रयत्न किये, पर वे कभी कुछ विशेप समय के लिए सतोषप्रद नही हुए; वे प्रायः अपर्याप्त ही रहे अस्तु मजदूरी और पूजी के सघर्ष से आधुनिक जगत बहुत अशान्त और पीडित है

इसी प्रकार सूद की समस्या भी काफी उलझन-भरी है. पहले तो यही विचारणीय है कि सूद लिया जाना कहां तक उचित है. फिर, सूद की दर के सम्बन्ध मे भी देश-काल के अनुसार अलग-अलग विचार रहे है; और व्यवहार-जगत मे अनेक बार उन सब विचारो को तिलांजली दे ऋण लेने वालो से मनमाना बर्ताव होता रहा है. ऋणग्रस्तो की रक्षा के लिए कानून प्रायः कभी भी यथेष्ट शक्तिमान या प्रभावशाली नहीं हुआ है.

वितरण की समस्या का एक भाग मुनाफा है उत्पादन और विनिमय का लक्ष्य आज दिन सेवा न होकर मुनाफा हो रहा है अकसर किसान, कारीगर, दुकानदार, कल-कारखाने वाले तथा व्यापारी--सब मुनाफे के पीछे पड़े हुए है, और अपनी आत्मा

को बेच कर धन जोड़ने में लगे हैं. मानवता का भयंकर ह्रास हो रहा है; उसकी रक्षा के लिए मुनाफेखोरी का, और इसलिए वितरण का नियंत्रण होना चाहिए.

समस्या हल करने की आवश्यकता—इस प्रकार लगान मजदूरी, सूद और मुनाफा—प्रत्येक की दृष्टि से गम्भीर विचार की आवश्यकता है यदि विविध परिवार यथासम्भव स्वावलम्बी जीवन बिताए; अपनी भूमि पर अपने श्रम तथा अपनी ही पूंजी से खासकर भोजन-वस्त्रादि का उत्पादन करलें (और अपनी अन्य आवश्यकताओं पर नियंत्रण रखें) तो लगान, मजदूरी, सूद और मुनाफे की समस्या बहुत-कुछ पैदा ही न हो. निदान, वितरण के वर्तमान विशाल रूप को बहुत घटाया जा सकता है और घटाया जाना चाहिए. इनमें से प्रत्येक के बारे में खुलासा विचार अगले अध्यायों में किया जायगा.

तीसवां अध्याय

लगान

पृथ्वी के मालिक जमींदार नहीं, बल्कि ईश्वर है, इसलिए उससे उत्पन्न अन्न के स्वामी वे लोग हैं, जो उसमे मेहतन कर अन्न उत्पन्न करते है. —गांधीजी

अपनी भूमि पर खेती करने वाला किसान सरकार को जो द्रव्य देता है, वह मालगुजारी है. यदि कोई व्यक्ति दूसरे की भूमि का उपयोग करता है ता इस उपयोग के बदले वह जो द्रव्य दूसरे व्यक्ति को देता है, यह लगान है भारत मे किसान से जमींदार को मिलने वाली रकम लगान कही जाती है, यद्यपि इस रकम में लगान और मालगुजारी दोनो मिली रहती है.

लगान का विरोध—बहुत से देशों में जमींदारी प्रथा उठ गयी है, और कुछ मे उठ रही है या उठने वाली है जमींदारी हटाने की विधि या शर्तों की ब्यौरेवार बातो मे भले ही कुछ लोगो मे मतभेद हो, प्रगतिशील व्यक्ति इस विषय मे एकमत है कि अपने आप कुछ परिश्रम न करने वाले जमींदार वर्ग को लगान के रूप मे आय प्राप्त होना नीति-सम्मत नहीं. जमीन की पैदावार पर अधिकार उसी व्यक्ति का होना चाहिए, जो उसे जोत-बोकर उस पर खेती करता है; उसके सिवा किसी दूसरे का नहीं, चाहे उसे जमींदार, जागीरदार या तालुकेदार आदि कुछ ही कहा जाता हो.

भूमि वैयक्तिक सम्पत्ति नहीं, सामाजिक है—अब एक विचारणीय प्रश्न यह है कि भूमि पर (जिसके अन्तर्गत खान,

समुद्र-तट नदी-तट, जंगल आदि भी सम्मिलित हैं) अधिकार किसका माना जाय.इस पर किसी व्यक्ति विशेष का स्वामित्व होना कहां तक उचित है ? आज कल अनेक स्थानों मे एक-एक आदमी के पास कई-कई सौ एकड़ जमीन या बड़े-बड़े जगल आदि हैं. वह इनके लिए कोई श्रम नहीं करता; खाली बैठे इनका किराया या लगान वसूल करता है; दूसरे सहस्रों आदमी ऐसे है, जिन बेचारों के पास उनकी कही जा सकने वाली एक वर्ग गज भी भूमि नहीं है यह स्थिति नितान्त अन्याय पूर्ण है

भूमि के किसी हिस्से का विचार करें तो वह प्रकृति की देन का ही, उस पर रहने वाली अब तक की अनेक पीढियो के श्रम द्वारा तैयार किया हुआ, रूप है अर्थात् हमें जो भूमि मिली है, उसे वर्तमान अवस्था में लाने का श्रेय समाज को है इससे स्पष्ट है कि भूमि का वर्तमान विभाजन अनुचित है किसी व्यक्ति का उतनी ही भूमि का तथा उतने ही समय तक उपयोग करने का अधिकार होना चाहिए, जितनी भूमि पर और जब तक वह अधिकार सामाजिक न्यायकी दृष्टि से उचित हो

विशेष वक्तव्य—जब भूमि पर किसी व्यक्ति का स्वामित्व या मिलकियत नहीं, तो उसका लगान लेने के अधिकार का प्रश्न ही नहीं रहता. इस प्रकार सर्वोदय अर्थव्यवस्था मे लगान की बात ही समाप्त हो जाती है. हा, जब कि समाज में राज्य-व्यवस्था है, उसके सचालनादि के लिए धन की जरूरत रहेगी, जिसकी पूर्ति में सभी नागरिक भाग लेंगे इस स्थिति में किसान अपना हिस्सा मालगुजारी के रूप मे देगा इसका विचार आगे किया जाएगा

इकत्तीसवां अध्याय

मजदूरी

सब के भले मे अपना भला है वकील और नाई दोनों के काम की कीमत एकसी होनी चाहिए, क्योंकि आजीविका का हक दोनो का एकसा है. सादा मजदूर का और किसान का जीवन ही सच्चा जीवन है.

—गाधीजी

पैसे के दर ऊपर नीचे होते हैं आप मजदूरों को निश्चित परिमाण मे ज्वार क्यो नही देते ! मेरा सुझाव है कि यह परिमाण रोजाना कम से कम पचास तोला हो स्त्री हो. चाहे पुरुष, ज्वार मे फरक न किया जाय. मजदूरी मे जो फरक करना है, वह पैसे मे किया जाए

—विनोबा

श्रम या मेहनत करने वाले को उसके श्रम के बदले जो धन दिया जाता है, उसे 'मजदूरी' कहते हैं मासिक मजदूरी प्रायः वेतन या तनख्वाह कहलाती है सर्वसाधारण में मजदूरी की अपेक्षा 'वेतन' शब्द अधिक आदर-सूचक है, परन्तु अर्थशास्त्र में ऐसा कोई भेद नहीं माना जाता

मजदूरी की विषमता—वर्तमान अर्थव्यवस्था में मजदूरी की समस्या बिकराल रूप में उपस्थित है बहुत थोडे देशो में ऐसा कानून है कि चाहे जिस प्रकार का मजदूर हो उसे इतनी मजदूरी अवश्य मिले कि उसका और उसके परिवार का भरण-

पोषण अच्छी तरह हो सके अनेक देशों में ऊंचे और नीचे वेतनों में बेहद अन्तर है भारत की ही बात लीजिए. यहा राष्ट्रपति का मासिक वेतन दस हजार रुपये और दूसरे कितने ही अधिकारियों का तीन हजार से साढ़े पाच हजार रुपये मासिक तक है (भत्ता विविध आदि की रकमें अलग रहीं). इसके विपरीत, अनेक निम्न कर्मचारियों को तीस-पैंतीस रुपये महीने में सतोप करना पडता है. इस प्रकार यहा एक अधिकारी दूसरे की अपेक्षा सौ गुने से लेकर तीन सौ गुने तक वेतन पाता है

अच्छा, शासन के अतिरिक्त अन्य क्षेत्र की बात सोचे मिल का मेनेजर चार-चार पाच-पाच हजार रुपये मासिक वेतन क्यो पाता है, जब कि यहां दिन भर सख्त मेहनत करने वाले अनेक मजदूरो को तीस-पैंतीस रुपये महीना या इससे भी कम मिलता है। यह ठीक है कि मेनेजर की योग्यता वाले व्यक्तियों की संख्या बहुत कम होती है, इसके विपरीत, मजदूर तो अनेक मिल सकते हैं. मांग और पूर्ति के नियम के अनुसार मेनेजर को वेतन बहुत अधिक, और मजदूर को बहुत-कम होती है किन्तु क्या वेतन की इतनी विषमता उचित है? और, क्या दो व्यक्तियो की, भोजन-वस्त्र आदि की मूल अर्थात् प्राकृतिक आवश्यकताओं में इतना अन्तर होता है?

बौद्धिक श्रम और शरीर-श्रम करने वालो में ऐसा भेद माना जाता है कि पहले को साल में कम दिन और प्रति दिन कम घटे काम करने पर भी शरीर-श्रमी की अपेक्षा कहीं अधिक सुविधाए तथा बहुत अधिक वेतन मिलता है स्त्री-पुरुष के श्रम में भी अनुचित अन्तर है. भगी या मेहतर को जो वेतन दिया जाता है, उस पर दूसरा व्यक्ति उसका काम करने को तैयार नहीं होता. हमें मजदूरी के इन विविध पहलुओं पर सर्वोदय-दृष्टि से विचार करना है; पहले नकद और असली मजदूरी की बात समझलें

नकद और असली मजदूरी—आजकल श्रमजीवियों को उनके श्रम का प्रतिफल प्राय. रुपये-पैसे मे चुकाया जाता है. इसे नकद मजदूरी कहते है यदि मजदूरी अन्न-वस्त्र आदि पदार्थों मे दी जाए, तो उसे मजदूरो की असली मजदूरी कहा जाता है इसमे मकान, शिक्षा, या मनोरजन आदि, वे विशेष सुविधाएं भी मिली होती हैं, जो मजदूरो को उनके मालिको की ओर से प्राप्त होती हैं नकद मजदूरी से श्रमजीवियो की दशा का ठीक अनुमान नहीं होता यह स्पष्ट है कि दो श्रमजीवियो मे से, जिसे पदार्थ और सुविधाएं अधिक मिलती हैं, उसकी दशा दूसरे से अच्छी होगी.

भारतवर्ष मे पहले अधिकतर मजदूरी अन्न में चुकायी जाती थी आचार्य कौटल्य ने अपने अर्थशास्त्र मे नकद और असल दोनो प्रकार के वेतन की व्यवस्था की है वह साधारण तौर से प्रत्येक ऐसे श्रमी के लिए जो एक ही व्यक्ति या संस्था का कार्य करे, कुछ नकद वेतन निश्चित करता है, तो साथ ही कुछ भोजन आदि भी ठहराता है उसकी व्यवस्था के अनुसार, श्रमी अपने खाने-पीने की आवश्यकता से वेफिक्र रहता था, और नकद वेतन से अपनी दूसरी जरूरतें पूरी कर सकता था इस दशा मे, पदार्थों के मूल्य के घटने-बढने का श्रमजीवियो की आय पर बहुत कम प्रभाव पड़ता था बहुत से देहातो मे अब भी यही दशा है; कृषि-श्रमजीवी अपनी मजदूरी अन्न के रूप मे ही पाते हैं परन्तु आधुनिक 'सभ्यता' के विकास से, नगरो या औद्योगिक गांवों मे मजदूरी नकद रुपये-पैसे के रूप मे ही दी जाती है. इससे श्रमजीवियो पर जीवन-रक्षक पदार्थों की तेजी-मदी का बहुत प्रभाव पडता है

नकद वेतन मे प्रायः न तो इस बात का विचार किया जाता है कि वह श्रमजीवी के गुजारे के लिए पर्याप्त है या नहीं, और

न इसी बात का कुछ नियन्त्रण रहता है कि वह उससे भोजन-वस्त्र खरीदता है या विलासिता की वस्तुएं. अनेक मजदूर सवेरे से शाम तक मजदूरी करके अपने मालिक से कुछ गिने-गिनाये पैसे पाते हैं, जो उनके निर्वाह के लिए काफी नहीं होते; फिर, वे उन में से भी काफी पैसे शराब आदि में खर्च कर डालते हैं.

अधिकांश मजदूरी अन्न और वस्त्र के रूप में मिलनी चाहिए—इसका हल यही है कि श्रमियों को वेतन नकदी में न मिल कर अन्न-वस्त्र के रूप में मिला करे, जिससे वह अपने जीवन की इन प्रधान आवश्यकताओं की पूर्ति की ओर से निश्चिंत हो जाए. उसे भोजन वस्त्र के अतिरिक्त जो अन्य आवश्यकताएं हों, उनकी पूर्ति का सामान वह इन पदार्थों के अतिरिक्त अंश के विनिमय से प्राप्त कर ले. यदि कहीं कुल वेतन अन्न-वस्त्र के रूप में देने की व्यवस्था न हो तो इतना वेतन तो इस रूप में दिया ही जाए कि वह इन चीजों के लिए किसी के आश्रित न हो. मनुष्य को साधारणतया अन्न वस्त्र की आवश्यकता कितनी होती है, इसका अनुमान करना कुछ कठिन नहीं है; उतना प्रत्येक व्यक्ति को मिलना ही चाहिए. इसमें भिन्नता न होनी चाहिए; हाँ, अन्न के बारे में यह ध्यान में रखना ठीक होगा कि जिस प्रदेश में जो पदार्थ पैदा होता है, वही दिया जाय. यदि दो-तीन तरह का अन्न पैदा होता है तो ये अन्न निर्धारित अनुपात में दिये जा सकते हैं. अन्न-वस्त्र के अतिरिक्त जो वेतन नकदी में दिया जाय, उसमें विविध प्रकार के श्रमियों में कुछ अन्तर रह सकता है, पर वह भी एक सीमा तक ही होना चाहिए, जिससे यथा-सम्भव समता का व्यवहार हो. नकदी में दिये जाने वाले वेतन से आदमी अपनी अन्य जरूरतें पूरी कर सकते हैं. पैसे की दूषित अर्थ-व्यवस्था से मुक्ति पाने के लिए आवश्यक है कि नकद वेतन क्रमशः घटाकर असली वेतन बढ़ाया जाय.

बौद्धिक कार्य और शरीर-श्रम के प्रतिफल में भेद-भाव मिटाया जाय—चाहिए तो यह कि आदमी अपनी बुद्धि का उपयोग लोकसेवा मे करे और अपनी आजीविका प्राप्त करने के लिए शरीर-श्रम करें; जिससे उनमे और शरीर-श्रमियो मे समानता की भावना हो. पर इस समय उलटी हवा बह रही है. उदाहरण के लिए विश्वविद्यालयो मे प्रोफेसर साल मे कुल मिला कर प्राय. छः माह से भी अधिक की छुट्टी मनाते हैं तो भी वेतन बारह महीने का पाते है. जिन दिनो वे काम करते हैं उनमें औसत दो-तीन घंटे ही काम होता है. फिर भी उनका वेतन साधारण शरीर-श्रमी की अपेक्षा कई-कई गुना होता है. यही बात न्यायाधीशो, राज्यपालो, मन्त्रियो तथा अन्य अनेक सरकारी पदाधिकारियो की है कितने ही व्यक्ति तो औसतन दो घटे भी हर रोज काम नहीं करते और उनका काम भी बहुधा उन कागजो पर हस्ताक्षर कर देने का होता है, जो उनके अधीन कर्मचारी तैयार करते है. समाज में इन लोगो को कितना आदर-प्रतिष्ठा और कितना अधिक वेतन मिलता है! यह सब अन्याय-मूलक है इसका अन्त होना आवश्यक है इस आदर्श को प्राप्त करने के लिए हमे यह निश्चय कर ही लेना चाहिए कि देश मे एक श्रमी को दूसरे की अपेक्षा अधिक से अधिक कितने गुना तक वेतन दिया जाय. आरम्भ मे तीन या चार गुने तक की मर्यादा रख कर काम चलाया जा सकता है; लक्ष्य तो यही रहना चाहिए कि एक स्थान के सब प्रकार के श्रमियो का वेतन समान हो.

कहीं-कहीं ऐसा किया जाने लगा है सेवाग्राम (वर्धा) आदि की सार्वजनिक सस्थाएं आर्थिक समानता के कार्य-क्रम को अमल में ला रही हैं. वहा आश्रम के प्रत्येक व्यक्ति को चाहे वह

अध्यापक हो, चाहे हरिजन मजदूर, उसे रोजी के दो आना प्रति घंटे के हिसाब से समान रूप में मिलेंगे इसके अतिरिक्त प्रत्येक आश्रमवासी को उसके पुत्र के समग्र व्यय के लिए एक आना प्रति घंटा मिलता है. इस भांति आश्रम के प्रत्येक व्यक्ति को तीन आना प्रति घंटे के हिसाब से ८ घंटे के काम का करीब १॥ रुपया प्रतिदिन मिलता है. यद्यपि वर्धा में मजदूरी सस्ती है, किन्तु यदि आश्रम के किसी काम के लिए मजदूर की जरूरत हो तो उसे भी आश्रमवासियों के समान ही वेतन मिलेगा. वर्तमान स्थिति में यह एक क्रान्तिकारी कदम है इसका जगह-जगह अनुकरण होना चाहिए.

मिल-मजदूरों और हाथ-मजदूरों की वेतन एकसी हो— वेतन सम्बन्धी एक दूसरा अन्याय आज कल यह हो रहा है कि मिलों और कारखानों में काम करने वालों को हाथ-मजदूरों की अपेक्षा बहुत अधिक वेतन दिया जाता है, इसका परिणाम यह है कि हाथ-उद्योगों में काम करने वालों के लिए निरंतर अपना काम छोड़ने और कल-कारखानों में जाने का प्रलोभन बना रहता है हाथ-उद्योग नष्ट हो रहे हैं, जिससे होने वाली विविध हानियों का विचार पहले किया जा चुका है. वास्तव में, जैसा कि श्री मश्रूवाला ने लिखा है—

'हाथ-मजदूरों का मेहनताना उनके माल का परिमाण और गुण देख-कर नहीं ठहराया जा सकता, उनके काम का समय देख कर ही तय करना पड़ेगा मिल का तकुआ एक दिन में एक पौंड सूत कात सकता है, और एक ही मजदूर एक साथ चल रहे ऐसे कई तकुओं की देख-रेख कर सकता है ऊपरी तौर पर यह दिखेगा कि मिल-मजदूर ने एक दिन में कई पौंड सूत काता है, जबकि हाथ-कताई के द्वारा हमारे चरखा चलाने वाले ने सिर्फ आधा पौंड काता है लेकिन मिल-मजदूर के अधिक उत्पादन का कारण उसका अतिरिक्त कौशल या मेहनत नहीं है. वह तो उनके नये

औजारों का फल है. हाथ-कताई की और हाथ-कताई करने वालों की रक्षा राष्ट्र के हित में जरूरी है, इसलिए तथा जिन कठिन परिस्थितियों में हाथ-कत्तिन की जिन्दगी बसर होती है, उनमे उसके ठीक निर्वाह के लिए, हमे मानना चाहिए कि हाथ-कताई का यह आधा पौंड सूत उतना ही कीमती है जितना मिल-मजदूर का कई पौंड. इसलिए पूरे काम की समान घंटों की मजदूरी दोनों मजदूरों को एकसी देनी चाहिए *

प्राथमिक आवश्यकताओं की चीजों के उत्पादकों को अधिक वेतन मिलना चाहिए—वर्तमान अर्थव्यवस्था में वेतन के विषय मे कितनी अंधेरगर्दी हो रही है, इसका एक ज्वलत उदाहरण यह है कि जो किसान सारी जनता के लिए भोजन वस्त्र जैसी प्राथमिक आवश्यकताओ की चीजें पैदा करता है, उसे तो बहुधा अपने जीवन-निर्वाह के साधनो की प्राप्ति नहीं होती, और जो आदमी लोगो के लिए नशे, उत्तेजना, विलासिता या मारकाट आदि का सामान तैयार करता है, उसे किसान की तुलना मे खूब ऊचा वेतन मिलता है. क्या आश्चर्य कि चतुर चालाक आदमी खेती के 'गवारू' काम से घृणा करे और बीड़ी, सीमेंट, शराब, लेमन-ज्यूस, आइस-क्रीम, तथा युद्धोपयोगी हिन्सक अस्त्र-शस्त्र बनाने की ओर आकर्षित हो. जरूरत है कि जो चीजे मनुष्य का स्वास्थ्य, तथा चरित्र बिगाड़ने वाली हों, वे पैदा ही न की जाए. यदि इस लक्ष्य को प्राप्त करने में कुछ देर लगे और बीच के समय में ऐसी चीजें क्रमशः कम करने की योजना अमल मे लायी जाय, तो जब तक ये चीजे थोड़े-बहुत परिमाण मे बनती रहे, लोगो में यह सोचने और समझने का विवेक तो होना ही चाहिए कि प्राथमिक

---

* 'हरिजन सेवक', २४ मार्च १९५१.

आवश्यकता की चीजों के उत्पादकों को जो वेतन मिले, इसकी अपेक्षा गौण 'आवश्यकता' की चीजें बनाने वालों को बहुत कम दिया जाय.

स्त्री-पुरुष के वेतन में भेद रखना अनुचित है—पश्चिमी देशों में अधिकाधिक स्त्रियां अपनी आजीविका के लिए काम-धंधा करती जा रही हैं. उन्होंने प्रायः सभी प्रकार की संस्थाओं तथा क्षेत्रों में प्रवेश कर लिया है इस बात का प्रयत्न हो रहा है कि उनका वेतन उसी काम में लगे पुरुषों के समान हो रूस में इस समानता को प्राय पूरी तरह अमल में लाया जा रहा है भारतवर्ष में स्त्रियों का कार्य-क्षेत्र विशेषतया सन्तान-पालन और घर का कार्य माना ज ता है, कुछ स्त्रियों को आर्थिक आवश्यकताओं अथवा स्वाभिमान की भावना से अपनी आजीविका के लिए कोई काम करना आवश्यक होता है. प्राय. उन्हें कई बाधाओं का सामना करना पड़ता है 'समान काम के लिए समान वेतन'—यह तत्व अब व्यापक रूप से अमल में आना चाहिए इनमें स्त्री-पुरुष का भेद रखना अनुचित है यही नहीं, मानवता और समाज-हित की दृष्टि से स्त्रियों को वे सुविधाए भी दी जानी चाहिए, जो उनके मातृत्व सम्बन्धी कर्तव्य पालन करने के लिए जरूरी हो.

न्यूनतम मजदूरी या निर्वाह-वेतन—यूरोप, अमरीका के कुछ भागों में, खासकर जहा भिन्न-भिन्न प्रकार के धंधों में काम करनेवालों के संघ बन गये हैं, और निश्चित नियमों के अनुसार काम होता है, एक धन्धे के मजदूर एक नियत वेतन से कम पर मिल ही नहीं सकते कुछ देशों में तो कानून द्वारा यह तय हो गया है कि मजदूर को इतनी मजदूरी अवश्य ही मिले, जिससे उसका और उसके आश्रितों का निर्वाह हो सके. इसे

न्यूनतम मजदूरी या निर्वाह-वेतन कहा जाता है इसकी कुछ आधार भूत बाते ये है—

१—प्राय: यह माना जाता है कि प्रत्येक कुटुम्ब मे औसतन एक पुरुष, एक स्त्री और तीन बालक होते है

२—मजदूर को मजदूरी इतनी मिलनी चाहिए कि वह उससे अपने कुटुम्ब का साधारण रीति से पालन-पोपण कर सके [कुछ सज्जन स्त्री और बच्चो की मजदूरी कुटुम्ब की आमदनी मे शामिल नहीं करते उनका मत है कि कुटुम्ब के बढने पर स्त्रियो को अपने घरो का काम करने के बाद न तो समय ही रहता है और न शक्ति ही. इस लिए उनसे मजदूरी नहीं करायी जानी चाहिए. और, लड़को से तो स्कूलों मे पढ़ने के अलावा मजदूरी कराना ही अनुचित है.]

३—मजदूरो का निवास-स्थान काफी और हवादार होना चाहिए.

४—मजदूरो के घर-खर्च के अतिरिक्त उनकी अन्य आवश्यकताओ का भी विचार किया जाना चाहिए

इस प्रसंग में तीन बातों का ध्यान रखना जरूरी है—(१) न्यूनतम मजदूरी जुदा-जुदा स्थानो मे जुदा-जुदा हो सकती है, पर एक ही स्थान मे अलग-अलग धंधो के लिए भिन्न-भिन्न नहीं होनी चाहिए. (२) न्यूनतम मजदूरी की दृष्टि से खेती और उद्योग-धंधो के मजदूरो मे कोई अन्तर नहीं मानना चाहिए. दोनों को ही इसकी आवश्यकता है. (३) यदि वास्तव में कोई उद्योग ऐसा है जो अपने मजदूरों को निर्वाह-वेतन नहीं दे सकता तो साधारण तौर पर ऐसे उद्योग को चलने का अधिकार नहीं है. हां, कुछ उद्योग ऐसे हो सकते हैं कि राष्ट्र-हित की

दृष्टि से आवश्यक हो, पर उनसे मजदूरों को निर्वाह-वेतन न दिया जा सके. ऐसे उद्योगों की सरकार को ऐसी सहायता करनी चाहिए, जिससे मजदूरों को न्यूनतम वेतन अवश्य ही दिया जा सके. अस्तु, किसी दशा में मजदूर के न्यूनतम वेतन में कमी न होने देनी चाहिए

कृषि-श्रमियों की न्यूनतम मज़दूरी ; बेकारी के समय का प्रश्न—यह तो स्पष्ट ही है कि खेतीहर साल में कई माह बेकार रहते हैं और इस समय भी उन्हें भोजन-वस्त्र आदि की आवश्यकता होती है अगर उन्हें इस समय का वेतन न मिले तो उनका निर्वाह किस तरह हो दूसरी ओर यह भी बात है कि बेकारी का वेतन हर साल कई-कई माह देने से कोई अर्थ-व्यवस्था सुचारू रूप से नहीं चल सकती इस का हल यही है कि ऐसी व्यवस्था की जाय कि किसानों और खेत-मजदूरों को बेकार रहने का अवसर ही न आए. प्रत्येक ग्राम या ग्राम-समूह के व्यक्तियों के श्रम का उचित संयोजन किया जाए, जिससे वे अपने खाली समय में ग्रामोद्योगों का काम कर सकें.

भारत में न्यूनतम मजदूरी—भारत में प्राचीन काल में मजदूरी निश्चित करने में उसकी जीवन-निर्वाह की आवश्यकताओं का ध्यान रखा जाता था, इसका उल्लेख पहले किया जा चुका है. पीछे इस विषय की प्राय. उपेक्षा ही रही आधुनिक काल में सर्व-प्रथम सन् १९३५ में गांधीजी की प्रेरणा से अ भा ग्राम उद्योग संघ ने इस विषय को हाथ में लेने का साहस किया. उसने प्रस्ताव किया कि

'संघ की संरक्षता में तैयार होने या बेची जाने वाली तमाम चीजों के लिए हर कार्यकर्ता को आठ घंटे के पूरे

काम के हिसाब पर कम-से-कम इतनी मजदूरी तो मिलनी ही चाहिए जो उसकी शास्त्रीय (वैज्ञानिक) खुराक के लिए काफी हो·· जैसे-जैसे और जब परिस्थिति अनुकूल हो, तब मजदूरी की दर में उस दर्जे तक वृद्धि होती जानी चाहिए, जिससे कुटुम्ब के कार्यक्षम व्यक्तियो की कमाई से सारे कुटुम्ब की ठीक तरह से गुजर हो सके [१]

इसी आशय का प्रस्ताव अ. भा. चर्खा - सघ ने कत्तिनो के सम्बन्ध में स्वीकार किया.

इस योजना के अनुसार काम करने के लिए पहले यह मालूम किया गया कि कताई-क्षेत्र मे रहने वाली जनता को किस प्रकार का भोजन अनुकूल होगा फिर, इसके आधार पर योग्य डाक्टरो से सलाह-मशवरा करके, कम-से-कम आवश्यक भोजन का परिमाण निश्चित किया गया. एक आदमी के साधारण आवश्यक दैनिक भोजन के मूल्य का, आहार की वस्तुओ के स्थानीय मूल्य के अनुसार, हिसाब लगाया गया, और इसे आवश्यक खादी की कीमत के साथ जोड़कर दैनिक आठ घटे के सतोषजनक कार्य की कम-से-कम मजदूरी निश्चित की गयी. यद्यपि देश के विविध हिस्सों के रहने वाले लोगो के आवश्यकीय आहारो मे काफी अन्तर है तो भी यह मालूम हुआ कि उक्त आधार पर हिसाब करके कम-से-कम दैनिक मजदूरी ≈) से ≡) तक होनी चाहिए पहले कताई की रोजना मजदूरी छः सात पैसे ही थी; नये आधार पर गिने हुए कताई-दर २५ से ७५ फी सदी तक बढ़ गये. पिछले वर्षों में कताई की दैनिक मजदूरी प्रायः छः आने से आठ आने तक रही है. परन्तु यह कुटुम्ब के निर्वाह-योग्य नहीं थी. इससे स्पष्ट है कि उपर्युक्त प्रस्ताव पूरे तौर से अमल में नहीं आया.

विशेष वक्तव्य—जो सर्वोदय समाज हमारा आदर्श है, उसमें कोई व्यक्ति किसी भी आवश्यक कार्य से बचने का विचार नहीं करेगा, शरीर-श्रम करने की सब को इच्छा होगी, कोई कार्य घटिया दर्जे का नहीं माना जाएगा. उस दशा में आदमी, परिवार या गाव अधिक से अधिक स्वावलम्बी होगा, यदि किसी को दूसरे की सहायता और सहयोग की जरूरत होगी तो वह सहर्ष सेवा-भाव से दी जाएगी, इसमें किसी तरह के स्वार्थ सिद्ध करने की भावना न होगी मालिक और नौकर, हजूर और मजूर आदि का भेद न होगा; सभी मालिक होंगे, और सभी नौकर भी. इस प्रकार मजदूरी की विषमता या कमी न होगी और इससे सम्बन्धित विविध प्रश्न भी उपस्थित न होंगे

बत्तीसवां अध्याय

सूद

प्रत्येक उद्यमी पुरुष को आजीविका पाने का अधिकार है, मगर धनोपार्जन का अधिकार किसी को नही. सच कहे तो धनोपार्जन स्तेय है, चोरी है जो आजीविका से अधिक धन लेता है, वह जान मे हो या अनजान मे दूसरो की आजीविका छीनता है.

—गाधीजी

सूद एक ऐसी बला है, जिसने समाज मे कही टीले खडे कर दिये हैं और कही पोखर खोद दिये हैं. सूद समता के लिए बहुत कडवा विष है.

—भगवानदीनजी

रुपये का कोई व्याज न होना चाहिए, क्योकि रुपया स्वय कुछ उत्पन्न नही कर सकता. रुपया औद्योगिकता को प्रोत्साहन देने का एक-मात्र अथवा मुख्य साधन नही है, और न ही उसे बनाया जाना चाहिए.

—किशोरलाल मश्रूवाला

पूजी का व्यवहार करने-देने के बदले मे पूजी वाले को पूंजी के अतिरिक्त जो द्रव्य दिया जाता है, उसे सूद या व्याज कहते हैं इस अध्याय में हमे यह विचार करना है कि वर्तमान काल मे यह क्यो लिया या दिया जाता है, तथा इस पद्धति में क्या दोष है, और क्या सर्वोदय समाज-व्यवस्था मे भी इसका कोई स्थान होगा.

सूद का विचार; पूंजी का विश्लेषण—आजकल अ दमी प्रायः सूद लेते हैं; इसलिए प्रायः उसके उचित होने में कोई शंका नहीं की जाती. तथापि समय-समय पर कुछ सज्जनों ने ऐसा मत प्रकट किया है कि सूद लेना उचित नहीं है मुसलमानों के यहा तो इसकी बिल्कुल मनाही है. सूद के प्रश्न पर विचार करने के लिए हमें याद रखना चाहिए कि पूंजी में तीन चीजों का समावेश होता है—शोषित या अपहृत श्रम, विशेष सुविधाओं के कारण होने वाला अतिरिक्त उत्पादन, और विविध उपकरण या औजार आदि. अब इनमें प्रत्येक के सम्बन्ध में अलग अलग विचार करें.

(१) यदि पूंजीपतियों के पास जो पूंजी है, वह उन्होंने मजदूरों को कम मजदूरी देकर, अर्थात् उनके हिस्से की कुछ-कुछ सम्पत्ति अपने लिए बचा कर संग्रह की है, तो यह उनके द्वारा मजदूरों का शोषण किये जाने से जमा हुई है इस पर वास्तव में उनका कोई अधिकार नहीं है. इस प्रकार इस पूंजी को उधार देकर उस पर सूद लिया जाना ठीक नहीं है

(२) यदि पूंजी विशेष सुविधाओं के कारण उत्पन्न हुई है तो उसका लाभ किसी खास व्यक्ति या संस्था को न मिल कर समाज को मिलना चाहिए कारण विशेष सुविधाओं का श्रेय किसी एक को नहीं इस प्रकार किसी का अपनी पूंजी के लिए दूसरों से ब्याज चाहना अनुचित है

(३) उपकरण या औजारों की बात लीजिए यदि किसी उपकरण का हम उपयोग नहीं कर रहे हैं. और वह हमारे किसी दूसरे भाई के काम आ सकता है. तो हमें उसको उससे काम लेने की सुविधा सहर्ष और स्वेच्छा-पूर्वक दे देनी चाहिए. गावों में इस समय भी अनेक आदमी परस्पर में ऐसा व्यवहार करते

है इस में कुछ प्रतिफल (सूद) लेने की बात बहुत क्षुद्रता और संकीर्ण स्वार्थपरता की सूचक है.

धन तो श्रम से ही पैदा होता है—पहले कहा जा चुका है कि आजकल आदमी अपने धन को टिकाऊ बनाने तथा उसे सुविधा-पूर्वक रखने के लिए सोना चादी या सिक्को के रूप में बदलते रहते है. वे इसकी सुरक्षा और वृद्धि के वास्ते चिन्तित रहते हैं, और तरह-तरह के उपाय काम मे लाते हैं अगर यह द्रव्य जमीन मे गड़ा रहे, या अलमारी में बन्द रहे और इससे खेती या उद्योग-धधे का उत्पादक कार्य न किया जाय तो इसमें कोई वृद्धि न हो तथापि इस द्रव्य का स्वामी जब इसे दूसरों को उधार देता है तो वह इसे एक मेहरबानी का काम समझता है और ब्याज लेने की शर्त पर ही उधार देता है परन्तु उधार लेने वाला भी अगर इसे कहीं बन्द करके रख छोडे तो भी इस से कुछ द्रव्य पैदा न होगा इसलिए वह इस द्रव्य से उत्पादक कार्य करने के लिए आवश्यक साधन जुटाता है और श्रम करता है इस श्रम के कारण ही वह इस द्रव्य को इतना बढा लेता है कि ऋणदाता को उसकी रकम ब्याज सहित लौटाने पर स्वय अपने लिए भी कुछ बचा सकता है इससे स्पष्ट है कि रुपया पैदा करने का काम द्रव्य नहीं करता, श्रम करता है. बिना श्रम के रुपये की कुछ वृद्धि नहीं हो सकती

ब्याज नहीं रहना चाहिए—विचार करने की बात है. रुपया-पैसा हमारे पास पडा-पड़ा (बिना हमारे श्रम के) कोई धन पैदा नहीं करता वह व्यर्थ मे जगह घेरे रहता है हमें चिन्ता रहती है कि कोई इसे चुरा न ले जाए और इसको ले जाने के लिए हमारी जान का ही ग्राहक न बन जाए. क्या यह अच्छा नही है कि कोई पुरुषार्थी श्रमजीवी उसका उपयोग करे. और

पीछे हमारी जरूरत के समय हमें लौटा दे ? ऐसा आदमी रुपये की सुरक्षा के लिए हम से कुछ मेहनताना मांगे तो क्या बुरा है ! पहले ऐसा होता भी था बडे-बड़े महाजन या सेठ दूसरों की अमानतें अपने यहां रखते थे तो वे उनका ब्याज देने के बदले, उनकी रखवाली का शुल्क लेते थे अब भी बहुत से बैंक आदि छोटी-छोटी रकमों पर ब्याज नहीं देते, बल्कि उन्हें (तथा जेवर आदि) जमा रखने की फीस लेते हैं

अब साधारण अर्थव्यवस्था दूसरी ही है जो आदमी हमारी चीज की रखवाली करता है, और उसकी चिन्ता से हमें मुक्त रखता है, उसका हम कुछ उपकार नहीं मानते, उलटा यह समझते हैं कि हम उस पर उपकार कर रहे हैं, और उस अजीब धारणा के आधार पर हम उससे ब्याज मांगते हैं. हमारे लोभ, तृष्णा और परिग्रह की भी कुछ सीमा है ! हम अपने पास की बेकार चीज का भी दूसरों को, अस्थायी रूप में भी उपयोग करने देना नहीं चाहते मानवता का तकाजा है कि हम कुछ त्याग करके, कष्ट सह कर भी, दूसरों का हित साधन करें निदान, सामाजिक परम्परा, दूसरों की लाचारी आदि किसी भी कारण से रुपये का ब्याज लेना अनुचित है.

श्री किशोरलाल मश्रूवाला ने अपनी 'जड-मूल से क्रान्ति' पुस्तक में लिखा है—

'ब्याज जैसी चीज रहने ही नहीं देनी चाहिए, बल्कि धन-संग्रह पर उलटे कटौती होनी चाहिए जिस तरह बेकार पड़ा हुआ अनाज बिगड़ कर या सड़कर कम हो जाता है, उसी तरह बेकार पड़ा हुआ धन कम होना चाहिए वह बिगड़ कर कम भले न हो, फिर भी उसे सम्हाल कर रखने की मेहनत तो पडती ही है अगर सोने-चांदी को धन समझने की आदत न हो तो यह बात आसानी से समझ में आ सकती है. सोना-चांदी धन नहीं है, बल्कि

विरलता, तेजस्विता वगैरा गुणों की बदौलत प्रतिष्ठा प्राप्त आकर्षक पदार्थ मात्र हैं. वे पडे-पडे बिगडते नहीं हैं, इतना ही इनके मालिक को इनका लाभ है इस लाभ के लिए इन पर दूसरा कोई लाभ या व्याज लेने का कारण नही है'

सूद क्यों दिया जाता है?—वर्तमान अवस्था में लोगों को सूद पर रुपया उधार लेने की जरूरत निम्नलिखित कारणो से होती है—

१—अपने जीवन-निर्वाह का कार्य करने के लिए.

२—विवाह-शादी, जन्म-मरण, तीज त्योहार आदि सामाजिक आवश्यकताओ या रीति-रसम और विलासिता के लिए

३—बहुत से मजदूरो द्वारा बड़ा-बडा उत्पादन काय करके मुनाफा कमाने के लिए.

सर्वोदय अर्थव्यवस्था में सूद का स्थान नहीं—सर्वोदय व्यवस्था मे ऊपर बतायी हुई वह स्थिति न रहेगी, जिसमे अब सूद दिया और लिया जाता है—

(१) जीवन-निर्वाह के लिए रुपया उधार लेने की आवश्यकता बहुत ही निर्धन और दीन दुखी आदमी को होती है समाज मे ऐसे व्यक्ति तभी होते है जब जनता में पारस्परिक स्नेह, सहयोग, सहानुभूति और बंधुत्व नहीं होता, एक दूसरे का शोषण करता है, और दूसरो की अज्ञानता और लाचारी का लाभ उठाता है. जब प्रत्येक व्यक्ति यथा-शक्ति श्रम करेगा, और श्रम का यथेष्ट मान होगा, कोई भी श्रम-साध्य कार्य घटिया दर्जे का न माना जाएगा, और प्रत्येक श्रमी को निर्वाह-वेतन या न्यूनतम वेतन मिलने की व्यवस्था होगी तो किसी को अपने निर्वाह-कार्य के लिए रुपया उधार लेने की आवश्यकता न होगी,

और यदि किसी व्यक्ति को आवश्यकता भी हुई, तो वह अपेक्षाकृत धनवान व्यक्तियों से सहज ही मिल जाएगा, जो अपने धन को समाज-सेवा का साधन मानते हुए उसे एक ट्रस्टी के तौर पर रखेंगे.

(२) जनता में यथेष्ट ज्ञान का प्रचार होने से सामाजिक रीति-रस्मों या विलासिता में अनावश्यक धन व्यय करने की बात नहीं रहती ऐसे ज्ञान का प्रचार करने की व्यवस्था सामाजिक शिक्षा द्वारा तथा लोकसेवी सज्जनों के व्यावहारिक जीवन के उदाहरणों द्वारा की जाएगी.

(३) आजकल कुछ आदमी बड़े पैमाने की उत्पत्ति के कार्य प्रायः इसलिए करते हैं कि उनसे बहुत आय होती है, और सब खर्च निकालकर भी उन्हें बहुत मुनाफा होता है. ये लोग अपनी बौद्धिक योग्यता का उपयोग स्वार्थ-साधन अर्थात धनोपार्जन में करते हैं, जब कि असल में वह लोकसेवा के लिए होना चाहिए. सर्वोदय व्यवस्था में बड़े पैमाने की केन्द्रित उत्पत्ति बन्द हो जाने से लोगों को उसमें लगने वाली बड़ी पूंजी की भी जरूरत न हुआ करेगी. यदि कुछ खास कार्य केन्द्रित उत्पादन पद्धति से करने आवश्यक ही हुए तो वे सरकार द्वारा किये जा सकते हैं शोषणहीन, सर्वोदय समाज में सरकार को ऐसे कार्यों के लिए यथेष्ट पूंजी बिना व्याज के मिलने में कोई बाधा नहीं होगी, खास कर जब कि जनता में धन की विशेष प्रतिष्ठा न हो, और वह लोकसेवा का एक साधन मात्र माना जाए

विशेष वक्तव्य—सर्वोदय अर्थव्यवस्था में सूद का स्थान नहीं ऐसी व्यवस्था कब प्रचलित होगी. इसकी चिन्ता में न पड़ कर, हम अपनी-अपनी शक्ति भर इस दिशा में आगे बढ़ने का

प्रयत्न करते रहे. ऐसा लोकमत तैयार किया जाना चाहिए कि सूद लेना अनुचित है. जो ऋणदाता अपने कर्जदारो से (मूलधन तथा व्याज के मद्दे) मूलधन के बराबर या उससे कुछ अधिक रकम ले चुके है, वे उनका पूरा ऋण चुका हुआ समझें. अन्य ऋणदाता भी उदारता और मानवता का व्यवहार करें. जो कर्जदार अपना और अपने परिवार का निर्वाह करने मे भी असमर्थ है, उस पर कर्जा चुकाने के लिए जोर देना या कानूनी कार्रवाई करना इन्सानियत के खिलाफ है. कानून से भी ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि कोई ऋणदाता अपने कर्जदार के जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं के साधनो मे कमी न कर सके एक अच्छे संस्कृत समाज मे जिस प्रकार सूद लेना अनुचित है, उसी प्रकार किसी का कर्जदार होना भी शोभा नहीं देता. इन दोनो बातो को बन्द करने के लिए सब को अपना-अपना कर्तव्य पालन करना चाहिए.

तैंतीसवाँ अध्याय

मुनाफा

पानी बाढ़ो नाव में, घर में बाढ़ो दाम।
दोनों हाथ उलीचिए, यही सयानो काम॥

—कबीर

मालिकों को चाहिए कि वे अपने धन को समाज के कल्याण के लिए प्राप्त धरोहर मानें, जो कुछ मुनाफा साल भर में हो, उसका एक भाग कारखाने के विकास में लगे और एक भाग मजदूरों में बांटा जाए और एक छोटा भाग मालिक को जाना चाहिए लेकिन लगायी गयी रकम के व्याज और मुनाफे के रूप में नहीं, बल्कि उसकी सेवाओं, व्यवस्था-कौशल और योग्यता के वेतन के रूप में उसे मिलना चाहिए और उसका यह भाग आपस के समझौते से तय होना चाहिए.

—विनोबा

मुनाफे का अर्थ—किसी पदार्थ के कुल उत्पादन-व्यय और उसकी कीमत में जो अन्तर होता है, वह मुनाफा कहलाता है. आजकल उत्पादन-व्यय में उस पदार्थ के कच्चे माल के मूल्य के अतिरिक्त लगान, मजदूरी और सूद तो शामिल होते ही हैं. इनके अतिरिक्त उसमें औजारों और यन्त्रों की घिसाई, विज्ञापन, बीमा-खर्च, उसे लाने-लेजाने का यातायात खर्च भी गिना जाता है अगर वह पदार्थ बिजली या भाप आदि की चालक शक्ति से बनाया जाता है तो उसका खर्च भी उत्पादन-व्यय का अंग है. इन सब खर्चों में कच्चे पदार्थ तथा लगान, मजदूरी और सूद का खर्च मुख्य और अनिवार्य होता है अन्य खर्च ऐच्छिक हैं.

उदाहरण के लिए यदि उसका बीमा नहीं कराया गया तो बीमा खर्च नहीं होगा. यदि उस वस्तु को उत्पादन-स्थान में ही बेच दिया गया तो यातायात खर्च न होगा, और अगर उसमें किसी चालक शक्ति का उपयोग नहीं हुआ तो उससे सम्बन्धित खर्च का भी प्रसग नहीं आएगा. इस प्रकार किसी वस्तु की कीमत मे कच्चे पदार्थ, लगान, मजदूरी और सूद सम्बन्धी खर्च निकाल देने पर जो शेष रहता है, वह मुनाफा है.

मुनाफा, बौद्धिक कार्य का फल—मुनाफे को व्यवस्था का प्रतिफल कहा जाता है व्यवस्था मे प्रबन्ध और साहस का समावेश माना जाता है ये दोनो ही बौद्धिक कार्य हैं प्रायः प्रबन्धक को निर्धारित वेतन या पुरस्कार दिया जाता है, जिसे वर्तमान अर्थशास्त्र मे प्रबन्धक की कमाई कहते हैं इस प्रकार वास्तव मे मुनाफा केवल साहस का फल रह जाता है. साहस का अर्थ 'हानि-लाभ की जोखम उठाना' किया जाता है, पर व्यवहार में यह लाभ या मुनाफे की आशा ही है

शोषण पर निर्भर—साहसी अपने लाभ और स्वार्थ को दृष्टि मे रख कर काम करता है वह उत्पादन-व्यय मे अधिक से अधिक बचत करना चाहता है वर्तमान अवस्था मे वह जमीन वाले के लगान (किराया) और पूंजी वाले के सूद मे विशेप कमी नहीं कर सकता पर मजदूरो को अपना श्रम बेच डालने की जल्दी होती है, उनकी इस कमजोरी से साहसी परिचित होता है; इसलिए वह, जहां तक हो सकता है, कम मजदूरी देता है. जितना वह इन्हे कम देता है, उतना ही उसका मुनाफा अधिक होता है सार यह है कि अन्य बाते समान होते हुए, श्रम का शोषण जितना अधिक होगा, मुनाफा उतना ही अधिक होगा

मुनाफे की मर्यादा—वर्तमान व्यवस्था मे हरेक उत्पादक तथा व्यापारी अधिक से अधिक मुनाफा लेना चाहता

है; वह अपने मुनाफे की कोई सीमा रखने का विचार ही नहीं करता. एक मजदूर को आठ घंटे तथा इससे भी अधिक समय काम करने से क्या मिलता है, इससे उसे कुछ मतलब नहीं होता वह तो अपने धन का परिमाण बढाने की फिक्र में रहता है. वास्तव में यह कार्य सेवा की दृष्टि से, कर्तव्य या धर्म मान कर किया जाना चाहिए. इसमें मुनाफे का सवाल नहीं उठता, हां, वाजिब मेहनताना मिल जाना चाहिए संस्कृत में धन को द्रव्य कहा गया है, जिसका अर्थ है, 'बहने वाला' जब धन का इस प्रकार वितरण होता रहता है कि समाज में उसका प्रवाह बना रहे तो उससे समाज को लाभ होता है; प्रवाह रुकने पर वह समाज के स्वास्थ्य के लिए हानिकर होता है

मुनाफे का अधिकार व्यक्तियों को होने से हानि— साहसी या उत्पादक अपने मुनाफे के सामने समाज की हानि का विचार नहीं करता अनेक दशाओं में वह ऐसा उत्पादन करता है, जिससे उसका खूब स्वार्थ-सिद्ध हो, भले ही उससे समाज को कितनी ही हानि हो आज दिन हम अनेक स्थानों में भोजन-वस्त्र की कमी होते हुए भी बाजारों की दूकानों को फैशन और शौकीनी की तरह-तरह की आकर्षक वस्तुओं से भरी देखते हैं, वनस्पति तेल के बडे-बडे कारखाने खोले जाते हैं, खाने-पीने की अनेक स्वादिष्ट या जायकेदार और चटपटी मसालेदार चीजों का प्रचार किया जाकर जनता का स्वास्थ्य नष्ट किया जाता है. यही नहीं, हिंसक अस्त्र-शस्त्रों को बडे-बडे पैमाने पर बनाया जाता है, तथा युद्ध-ज्वर फैला कर उन्हें खरीदने के लिए विविध राष्ट्रों को लालायित किया जाता है—इन सब बातों के मूल में उत्पादकों की मुनाफेखोरी की मन वृत्ति ही तो है.

इस दृष्टि से (तथा पूंजी और श्रम का संघर्ष हटाने के लिए) कुछ लोगों का विचार है कि उत्पादन में जो लाभ हो.

उसमें मजदूरो का भी काफी भाग हो. मुनाफे का निर्धारित भाग रक्षित धन मे लिया जाकर जो बचे वह मालिकों और श्रमजीवियो मे आधा-आधा बाट दिया जाए. पर यह योजना भी ठीक नहीं है; मालिको या पूजीपतियो की सख्या मजदूरो से कम होती है, इसलिए इस योजना से प्रत्येक मालिक के हिस्से में एक-एक श्रमजीवी की अपेक्षा अधिक धन आएगा, और आर्थिक विषमता बढ़ेगी. दूसरे, एक ही स्थान में एक उद्योग में दूसरे की अपेक्षा अधिक मुनाफा होने की दशा में उस उद्योग के मजदूरो को दूसरे उद्योग के मजदूरो की अपेक्षा अधिक आय होगी; यह भी ठीक नहीं. इस प्रकार मुनाफे के बंटवारे की योजना भी यथेष्ट हितकर नहीं.

मुनाफे का अधिकार समाज को होना चाहिए— निदान, मुनाफे पर अधिकार न तो एक व्यक्ति का हो, और न कुछ थोड़े से व्यक्तियो का; वह समाज की चीज मानी जाए. वैसे भी मुनाफा बौद्धिक कार्य का फल है, जो समाज-सेवा के लिए होना चाहिए. जैसा कि श्री काका कालेलकर ने कहा है.

'पूँजीपति को स्वत्व का अधिकार सिर्फ उसकी मेहनत के जितना ही होना चाहिए बाकी की पूँजी और मुनाफा वह समाज-सेवा के लिए ही अपने पास रख सकता है......आज जो उसकी निजी सम्पत्ति मानी जाती है, वह सचमुच समाज की मूक सम्मति से उसके पास धरोहर के रूप मे है राष्ट्र-हित के लिए अगर कोई जमीन, कारखाना या पूँजी देनी पड़ती है, तब प्रतिमूल्य के रूप मे वह उसकी बाजारू कीमत नही ले सकता. वह तो अधिक से अधिक अपनी जिन्दगी भर की मेहनत का मूल्य माग सकता है मुनाफा तो उसका कभी था ही नहीं. मुनाफा तो समाज का है. उस पर अगर व्यक्ति का अधिकार माना जाए तो कारखाने के पुराने-नये सब के सब कर्मचारियों का भी उस पर अधिकार है; समाज ही उन सब का प्रतिनिधि है.' ['सर्वोदय,' अगस्त १९४९]

स्वेच्छा-पूर्वक त्याग का विकल्प राष्ट्र-स्वामित्व—क्या पैसे वालों से अपनी सम्पत्ति का मोह छोड़कर उसके ट्रस्टी बन जाने अर्थात् उसका केवल धरोहर के रूप में उपयोग करने की आशा की जा सकती है? आशा तो रखनी ही चाहिए मनुष्य में ऊचा उठने की, त्याग और सेवा-भाव का परिचय देने की असीम सम्भावनाएं हैं; वह नर से नारायण बन सकता है. अच्छा है कि धनी लोग स्वेच्छा से सामाजिक भावना और अपरिग्रह स्वीकार करें अन्यथा वे ऐसी स्थिति के निर्माण के लिए उत्तरदायी होंगे, जब इसके लिए बल का। या कानून का आसरा लिया जाएगा. निदान, धनवानों के सामने दो विकल्प हैं, वे स्वेच्छा से उसे सामाजिक कार्य के लिए लगाए, अर्थात् समाज की ओर से उसके ट्रस्टी होकर रहें; अन्यथा उस सम्पत्ति पर राष्ट्र का अर्थात् सरकार का स्वामित्व होने वाला ठहरा

सर्वोदय अर्थव्यवस्था में मुनाफे का स्थान नहीं—मुनाफे का प्रश्न खासकर बड़े पैमाने के केन्द्रित और बिजली आदि शक्तियों से चलाये जाने वाले यन्त्रोद्योगों में होता है. ये सर्वोदय अर्थव्यवस्था में बहुत ही सीमित होंगे, और जो होंगे भी उनपर समाज का अधिकार होगा उनका सचालन सरकार द्वारा होगा इस अर्थव्यवस्था के अनुसार उत्पादन-काय का आधार स्वावलम्बन और इसकी पद्धति विकेन्द्रीकरण की होगी. इस प्रकार इसमें मुनाफे का स्थान न होगा.

यह कहा जा सकता है कि अगर लोगों को मुनाफा कमाने का अवसर न मिलेगा तो वे उत्पादन-कार्य में उत्साह और स्फूर्ति कैसे प्राप्त करेंगे स्मरण रहे कि मुनाफा कमाने या निजी सम्पत्ति रखने की मनोवृत्ति का मूल कारण यह है कि इस समय समाज में पैसे वालों का आदर है, पर यह सदा रहने वाला

नहीं है. समाज अपना कल्याण चाहता है तो उसे पैसे को उसके कृत्रिम उच्च स्थान से अपदस्थ करना ही होगा. और क्या आज भी समाज मे सेवा, त्याग और श्रम की महिमा—वह सीमित क्षेत्र में भले ही हो—नहीं है? माता पिता अपनी सतान के लिए, भाई अपनी बहिन के लिए, बहिन अपने भाई के लिए, अनेक व्यक्ति अपने मित्रो या रिश्तेदारो के लिए विविध कष्ट सहते हैं, और कितने ही सत प्रकृति वाले तो अपने पराये का भेद हटा कर किसी भी व्यक्ति के लिए त्याग-भाव का परिचय देते है, उनके मूल मे सौदागिरी या मुनाफे की बात नहीं होती; कर्तव्य-पालन या सेवा की भावना ही काम करती है. क्रमशः यह भावना बढ़ेगी. आदमी यह समझेगा कि किसी कार्य की उपयोगिता की कसौटी यही है कि उससे कितना आत्मिक सुख और संतोष मिलता है

आशा है प्रत्येक देश में स्थान-स्थान पर कुछ माई के लाल अपने उदाहरण से ऐसी भावना के प्रचार और विस्तार मे सहायक होगे; क्रमशः अनुकूल वातावरण बन जाएगा, और हमारी कर्तव्य-बुद्धि ही हमे व्यक्तिगत प्राक्रम के लिए यथेष्ट प्रेरक सिद्ध होगी. अस्तु, सर्वोदय अर्थ व्यवस्था मे सामाजिक मूल्यों की फिर से स्थापना होगी, और मुनाफे का महत्व न रहेगा.

चौंतीसवां अध्याय

आर्थिक समानता

आर्थिक समानता के लिए काम करने का मतलब है, पूंजी और मजूरी के झगड़ों को हमेशा के लिए मिटा देना उसका अर्थ यह होता है कि एक ओर से जिन मुट्ठी भर पैसे वालों के हाथ में राष्ट्र की सम्पत्ति का बड़ा भाग इकट्ठा हो गया है, उनकी सम्पत्ति को कम करना और दूसरी ओर से जो करोड़ों लोग अधपेट खाते और नंगे रहते हैं, उनकी सम्पत्ति में वृद्धि करना.

—गांधीजी

मनुष्य को उतना ही रखने का अधिकार है, जितना उसे अपना पेट भरने के लिए जरूरी है. इससे ज्यादा रखने वाला चोर है और दण्ड देने योग्य है

—भागवत

इस खंड के पिछले अध्यायों से यह स्पष्ट है कि यदि लगान, मजदूरी सूद और मुनाफे के बारे में प्रचलित विचार-धारा को त्याग कर यथेष्ट सुधार कर लिये जाएं तो आर्थिक विषमता न रहे. तथापि आर्थिक समानता का प्रश्न इतने महत्व का है कि इस पर अलग विशेष रूप से विचार किये जाने की जरूरत है.

आर्थिक समानता का अर्थ: प्रत्येक को उसकी आवश्यकता के अनुसार—आदमी आर्थिक समानता का

अलग-अलग अर्थ लेते है, इसलिए पहले यह जान लेना चाहिए कि इसका वास्तव में क्या अर्थ है, या समझा जाना चाहिए इस विषय मे गांधीजी ने कहा है—

'आर्थिक समानता की मेरी कल्पना का यह अर्थ नही कि हरेक को शब्दश एक ही रकम दी जाए. उसका सीधा-सादा मतलब यह है कि हरेक स्त्री या पुरुष को उसकी जरूरत की रकम मिलनी ही चाहिए मसलन सर्दियो में मुझे दुशाले की जरूरत पडती है, जबकि मेरे भतीजे के लडके कनुगाधी को, जो मेरे पुत्र के समान है, एक भी गरम कपड़े की जरूरत नहीं पड़ती. मुझे बकरी के दूध, सतरे और दूसरे फलों की जरूरत होती है. कनु का काम मामूली खुराक से चल जाता है. मेरे खाने का खर्च कनु से ज्यादा आता है, लेकिन इसका यह मतलब नही कि हम दोनों में आर्थिक असमानता है. आर्थिक समानता का सच्चा अर्थ है—हरेक को उसकी जरूरत के माफिक दिया जाय मार्क्स की व्याख्या भी यही है. अगर कोई अकेला आदमी एक औरत और चार बच्चों वाले आदमी के बराबर की माग करता है तो इसको आर्थिक समानता का भग कहा जायगा'

इस प्रकार आर्थिक समानता का अर्थ यह है कि हरेक को उसकी जरूरत के अनुसार मिले; न कम, न ज्यादा. इस प्रसंग मे अमीर गरीब, शहरी और ग्रामीण, उच्च वर्ग और निम्न वर्ग आदि के भेद-भाव को लक्ष्य मे रखकर लोगो की आवश्यकताओ मे अन्तर समझना भ्रम-मूलक और अनिष्टकारी है. यह 'उपयोग का लक्ष्य' अध्याय मे स्पष्ट किया जा चुका है.

आर्थिक समानता न होने के कारण—आर्थिक समानता की स्थापना के सम्बन्ध में विचार करने के लिए यह जानना आवश्यक है कि इस समय यह समानता क्यों नहीं है. वर्तमान आर्थिक विषमता का एक मुख्य कारण यह है कि अब उत्पत्ति गृह-

उद्योग और ग्रामोद्योगों के बजाय केन्द्रीभूत पद्धति से कल-कारखानों में होती है जिन पर कुछ इने गिने व्यक्तियों का स्वामित्व होता है. इसी प्रकार भूमि के मालिक भी इसके जोतने वाले हजारों और लाखो किसान न होकर मुट्ठी भर जमींदार जागीरदार आदि हैं फिर, इस समय पैसे की अर्थव्यवस्था है उत्पादन का उद्देश्य जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं, पैसा कमाना है पहले किसी आदमी के पास कुछ अधिक धन होता था तो वह जिन्स के रूप में होता था. अन्न आदि पदार्थ ऐसे हैं, जिनका संग्रह एक सीमित परिमाण में ही हो सकता है अधिक समय का होने पर इनके खराब या नष्ट हो जाने की आशका होती है. इसलिए पहले जब कोई धनी व्यक्ति देखता कि उसके पास रहने वालों को इनकी आवश्यकता है, तो वह सहर्ष उनके लिए ये चीजें दे देता था. पर अब मुद्रा का चलन है बैंको मे एक-एक आदमी का हजारों और लाखो रुपया जमा है, इस धन के पुराना होकर खराब या नष्ट होने की आशका नहीं इसलिए अकाल या दुर्भिक्ष के अवसर पर भी आदमी अपने भूखे-नगे भाइयों की जरूरतों की परवाह न करके बैंको की जमा को सुरक्षित रखने, और बढाने की बात सोचते रहते हैं.

इस से हानि; भुखमरी और नैतिक पतन—इस प्रकार समाज मे कुछ व्यक्ति तो बहुत अधिक धनवान और दूसरे बहुत अधिक दरिद्र हो जाते हैं. निर्धन लोगो को भोजन-वस्त्र आदि का कष्ट होने की सहज ही कल्पना की जा सकती है, पर धनवानो की भी हानि होती है; आर्थिक नहीं, नैतिक. लोकहित की चिन्ता करने वाले गाधीजी यह अनुभव करते थे कि 'धनी लोग वस्तुओं का अतिरिक्त संग्रह भी रखते हैं, जिसकी उन्हें आवश्यकता नहीं होती. फल-स्वरूप उसकी उपेक्षा और बरबादी होती रहती है, जबकि पोषक पदार्थों के अभाव मे लाखों आदमी

भूखे मर जाते हैं.' दक्षिण अफ्रीका में उन्होने यह भी देखा था कि 'लगभग बिना किसी अपवाद के, जिनके पास जितना अधिक सचय है, उनमे उतना ही अधिक नैतिक पतन है.' इस प्रकार आर्थिक विषमता समाप्त करके समानता स्थापित करने में ही जनता का कल्याण है.

आर्थिक समानता की स्थापना के लिए अपरिग्रह की आवश्यकता—ऊपर कहा गया है कि आर्थिक समानता की दृष्टि से प्रत्येक आदमी को उसकी आवश्यकता के अनुसार मिलना चाहिए. पर प्रश्न यह होता है कि किस की जरूरत कितनी है. यह तो स्पष्ट ही है कि मनुष्य की वास्तविक या बुनियादी आवश्यकताओ के विषय में कोई विवाद नहीं होता. एक परिवार मे यदि एक आदमी की खुराक का परिमाण अधिक है, या उसकी आयु या तन्दरुस्ती की दृष्टि से उसे कुछ विशेष ऐसी वस्तुओ के सेवन की आवश्यकता है, जो अपेक्षाकृत अधिक कीमती हैं तो इसमें कोई झगड़ा नहीं होता. पर जब कोई आदमी स्वाद के लिए तरह-तरह के कीमती पदार्थ खाता है, अथवा शौकीनी के लिए बढ़िया कपड़े पहनता है, या परिग्रह की भावना से कई कई जोडी कपडो का सग्रह रखता है, जबकि उसके दूसरे भाई बहिनो की साधारण आवश्यकता भी पूरी न हो—होती, कोई भूखा रहने को, कोई दिगम्बर-भेष रखने को, और कोई अर्द्ध-नग्न रहने को बाध्य हो—तो आपस में ईर्ष्या होने वाली ठहरी. मकान की बात लीजिए; दो आदमियो के पास अपने रहने के साधारण स्वच्छ मकान हो तो उनके आकार प्रकार मे कुछ अन्तर होना नहीं अखरता अखरने वाली बात तो यह होती है कि एक के पास कई-कई मजिलो के विशाल सुन्दर सजे हुए इन्द्र-भवन हो, और दूसरो के पास

घास-फूस की टूटी फूटी झोपड़ी ही हो, अथवा उसका भी अभाव हो।

इसी प्रकार धनवानों के घरों में विविध प्रकार का सामान या सम्पत्ति देखकर यह सहज ही स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने कितनी चीजें ऐसी संग्रह कर रखी हैं, जिनकी उन्हें वास्तव में आवश्यकता नहीं है, परन्तु जिनके लिए उनके मन में वासना या मोह है. निदान, विषमता का मूल। कृत्रिम आवश्यकताएं और परिग्रह की भावना है आर्थिक समानता लाने के लिए अपरिग्रह की नितान्त आवश्यकता है

ट्रस्टीशिप—ऊपर यह कहा गया है कि आर्थिक समानता को व्यवहार में लाने के लिए आदमी को अपनी जरूरत के अनुसार ही सम्पत्ति रखनी चाहिए यों किसी चीज को जरूरत से ज्यादा रखना भी बुरा नहीं, बशर्ते कि पहले गरीबों की जरूरतें पूरी हो जाए अथवा उस चीज का उपयोग सार्वजनिक हित की दृष्टि से, एक ट्रस्टी की हैसियत से किया जाए गांधीजी ने इस सम्बन्ध में कहा है—

'आज के धनवानों को वर्ग-संघर्ष के और स्वेच्छा से धन के ट्रस्टी बन जाने के दो रास्तों में से एक एक को चुन लेना होगा उन्हें अपनी मिलकियत की रक्षा का होगा. उन्हें यह भी हक होगा कि अपने स्वार्थ के लिए नहीं, बल्कि मुल्क के भले के लिए, दूसरों का शोषण न करके वे धन को बढ़ाने में अपनी बुद्धि का उपयोग करें. उनकी सेवा और उसके द्वारा होने वाले समाज के कल्याण को ध्यान में रख कर उन्हें निश्चित कमीशन ही राज्य देगा. उनके बच्चे अगर योग्य हुए तो वे भी उस जायदाद के रक्षक बन सकेंगे'

गांधीजी ने इस विषय पर और प्रकाश डालते हुए कहा है कि 'धनवानो का ठीक व्यवहार न हो तो वे न्यायालय द्वारा अपने अमानतदार के पद से हटा दिये जाएंगे. इसके विपरीत, अगर वे अपना यह कर्तव्य विवेक-पूर्वक और ईमानदारी से पालन करेंगे तो उन्हे अपनी धरोहर-सम्पत्ति से होने वाली शुद्ध आय या मुनाफे में से पांच-छः प्रतिशत भाग को पुरस्कार के रूप मे पाने का अधिकारी बनाया जा सकता है; शेष मुनाफा सार्वजनिक हित मे लग जाएगा.'

लोगों का कर्तव्य—हम यह न सोचें कि आर्थिक समानता की स्थापना राज्य के कानून द्वारा होगी. इसकी तैयारी तो जनता को ही करनी है किसी आदमी को समाज की, अर्थात् दूसरे आदमियो की प्रतीक्षा मे बैठे रहना नहीं चाहिए. हरेक को अपने ऊपर तथा अपने क्षेत्र में जहां तक उसकी पहुॅच हो, इसका प्रयोग करना चाहिए. यह कार्य सबसे पहले उन लोगों का है, जिन्हे आवश्यकता से अधिक मिला हुआ है या मिल रहा है उच्च वर्ग अर्थात् सेठ साहूकारो और जमींदारो आदि को स्वयं अपने हित के लिए अपरिग्रही बनना और ट्रस्टीशिप की भावना को अमल मे लाना चाहिए. नयी व्यवस्था से वे घबराएं नही; संभव है. जो आज कई-कई जोड़ी कपड़े रखते है, उन्हे दो-तीन से ही कम चलाना हो, या रेशमी की जगह सूती से सतोष करना हो; जो अब तरह-तरह के जायकेदार पदार्थों का उपयोग करते है, और जरूरत से ज्यादा खाकर भी कुछ जूठन छोड़ देते हैं, उन्हे साधारण पुष्टिकर भोजन पर निर्वाह करना हो; जो मोटर दौडाते फिरते हैं, उन्हे तांगो पर यात्रा करनी हो. पर ये कोई ऐसी मुसीबतें नही हैं, जो सहन न की जा सकें. उन्हे तथा उनके मित्रो या रिश्तेदारो को विचार करना चाहिए अपने उन भाइयो का जिन्हे भरपेट भोजन

और ऋतु की आवश्यकता के अनुसार वस्त्र नहीं मिलता और जिन्हें दूर-दूर की मंजिलें तय करने के लिए अपनी टांगों का ही भरोसा रखना पड़ता है मानवता के नाते प्रत्येक व्यक्ति को बड़े-बड़े त्याग और बलिदान करने के लिए तैयार रहना चाहिए

दूसरा वर्ग जिस पर आर्थिक समानता लाने का दायित्व है, वह है मध्यम वर्ग समाज में क्रान्तियों का सूत्रपात तथा नेतृत्व यही वर्ग किया करता है इस वर्ग के आदमियों को चाहिए कि पूजीपतियो के हाथ का औजार और निम्नवर्ग के शोषण में सहायक होने से इनकार करें और सामाजिक प्रतिष्ठा या उच्चता की भावना को छोडकर अपने आपको किसान-मजदूर के उत्पादक वर्ग में शामिल करे. इस समय किसानो और मजदूरों में उच्च वर्ग की नकल करने की इच्छा रहती है और वह न कर सकने से उनमें हीनता की भावना होती है मध्यम और शिक्षित वर्ग के सम्पर्क से उनकी यह बात दूर होगी. मध्यम वर्ग के उपयुक्त परिवर्तन का प्रभाव धनवानो पर भी पडेगा; कारण, इस दशा में उनकी शोषण-शक्ति का ह्रास हो जाएगा, उनका जीवन अधिक सयमी, लोकहितकर तथा मानवीय भावना से पूर्ण होगा

इस प्रकार आर्थिक समानता का क्षेत्र उत्तरोत्तर बढ़ता जाएगा और लक्ष्य-प्राप्ति में सरलता होगी सर्वोदय व्यवस्था में समाज-सगठन, और अर्थनीति के अतिरिक्त सरकार भी ऐसी होगी, जिससे इस समानता में सहायता मिले सरकार के सम्बन्ध में आगे विचार किया जाएगा.

विशेष वक्तव्य—यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि आर्थिक समानता तभी विशेष स्थायी तथा यथेष्ट हितकर होगी. जब वह अहिन्सक पद्धति से, दया भाव से की जाएगी. मनुष्य में दया का भाव कुछ नया नहीं है बहुत पुराने समय से इसका

विकास होता आया है, अब हमें यह सोचना कि चाहिए दया समता का विकास करने वाली हो. बहुत आदमी गरीबों को दवा-दारू के लिए कुछ पैसे, खाने के लिए कुछ भोजन और पहनने के लिए कपड़े देकर यह समझते हैं कि हमने उन पर बहुत दया की. परन्तु जब तक ये अपने आपको ऊंचा और उन्हें नीचा मानते है, इनकी दया अधूरी है; दया सार्थक तभी होगी, जब हम अपने मन से अपनी उच्चता की भावना निकाल देंगे और जिन पर हम दया करते है उन्हें अपने बराबर का मानेंगे इस प्रकार हमारी दया व्यवहार मे समता को स्थापित करने वाली और उसे बढ़ाने वाली होनी चाहिए

छठा खंड

अर्थव्यवस्था और राज्य

मै राज्य-शक्ति की वृद्धि की ओर अधिकतम डर के साथ देखता हूँ, क्योंकि मालूम चाहे यह पडता हो कि राज्य शोषण को कम करके हमे लाभ पहुँचा रहा है, पर वह व्यक्ति का, जो सम्पूर्ण प्रगति का आधार है, विनाश करता है और इस प्रकार मनुष्य-समाज को अधिकतम हानि पहुंचाता है. हमे बहुत मे उदाहरण ऐमे मालूम है, जिनमें मनुष्यो ने सरक्षक का सा बर्ताव किया, लेकिन ऐसा कभी भी नही हुआ कि राज्य का जीवन वास्तव मे निर्धनो के लिए हो.

× × ×

जिस समाज का प्रत्येक व्यक्ति यह जानता है कि उसे क्या चाहिएँ और इससे भी बढ कर जहा यह माना जाता है कि बराबरी की मेहनत करके भी दूसरो को जो चीज नही मिलती, वह स्वय भी किसी को नही लेनी चाहिए वह समाज जरूर ही बहुत ऊचे दर्जे की सभ्यता वाला होना चाहिए. ऐसे समाज की रचना सत्य और अहिन्सा पर ही हो सकती है ऐसा समाज अनगिनत गावो का बना होगा. उसका फैलाव एक के ऊपर एक के ढंग पर नहीं, बल्कि लहरो की तरह एक के बाद एक की शक्ल मैं होगा

—गाधीजी

पैंतीसवां अध्याय

राज्य का स्वरूप

हर एक गांव में पंचायत-राज होगा. उसके पास पूरी सत्ता होगी. इसका मतलब यह है कि हर एक गांव को अपने पांव पर खड़ा होना होगा, अपनी जरूरतें खुद पूरी करनी होंगी ताकि वह अपना सारा कारोबार खुद चला सके, यहां तक कि वह सारी दुनिया के खिलाफ अपनी रक्षा आप कर सके.

—गांधीजी

सरकार निमित्त मात्र होती है. उसका काम यह नहीं है कि गांव की हर चीज बाहर से ला दे. सब गांव का सम्बन्ध बना रखने के लिए सरकार है. सरकार का काम हरेक गांव को स्वावलम्बी बनने में मदद देने का है.

— विनोबा

यह बताया जा चुका है कि सर्वोदय नीति के अनुसार अर्थ-व्यवस्था कैसी होनी चाहिए—उपयोग, उत्पादन, विनिमय और वितरण में किन-किन बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए. अब इस बात का विचार किया जाता है कि ऐसी अर्थव्यवस्था से राज्य का सम्बन्ध कैसा और कहां तक रहेगा. सरकार के कार्य क्या-क्या होंगे अर्थात् उसके द्वारा किस प्रकार के कार्य किये जाने आवश्यक हैं. पहले संक्षेप में यह जान लेना उपयोगी होगा कि क्या समाज के लिए वास्तव में किसी सरकार का होना अनिवार्य है? और, यदि उसके बिना समाज का काम न चले तो उसका स्वरूप कैसा हो?

अराजवाद का आदर्श—मनुष्य बहुत समय से किसी न किसी प्रकार के शासन में रहता आया है साधारण आदमी सरकार के इतने अभ्यस्त हो गये हैं कि उन्हे ऐसी समाज-व्यवस्था की कल्पना नहीं होती, जो सरकार-रहित हो तथापि समय-समय पर समाज मे सरकार-रूपी सस्था होने का विरोध होता रहा है क्रमशः ऐसी विचार-धारा उत्पन्न हो गयी कि सरकार एक हानिकारक वस्तु है, इसकी आवश्यकता सिर्फ इसलिए है कि आदमी मे लोभ, मोह, अहकार, काम-क्रोध आदि दुर्भावनाए हैं, और समाज की सुव्यवस्था के लिए इनका नियन्त्रण होना चाहिए. अस्तु, मौजूदा हालत मे समाज को राज्य की आवश्यकता अनिवार्य रूप से है. वह राज्य-रहित तभी बन सकता है, जब आदमी अपने ऊपर यथेष्ट नियंत्रण रखने वाला और अपने सब सामाजिक कर्तव्यो को स्वेच्छा-पूर्वक, बिना किसी कानूनी दबाव के पूरा करने वाला हो राज्य-रहित समाज मे हिन्सा या दबाव को कोई स्थान नहीं है, वह पूर्ण रूप से अहिसक होगा. इस प्रकार समाज के लिए अराजवाद एक आदर्श है, उसकी ओर बढ़ते रहने का, वहां तक पहुँचने का प्रयत्न होते रहना चाहिए

अहिन्सक राज्य—राज्य-रहित होने का आदर्श रखते हुए समाज के लिए व्यवहारिक मार्ग यही है कि वह अहिन्सक राज्य का विकास करे; यो राज्य मे कुछ हिन्सा तो होती ही है ऐसे राज्य की कल्पना नही की जा सकती, जो पूरे तौर से अहिन्सक हो. हा, वह अहिन्सा की ओर अधिकाधिक प्रगति कर सकता है; जब वह पूरा अहिन्सक हो जायगा तो उसके राज्यत्व का लोप हो जाएगा, समाज राज्य-रहित हो जाएगा. अस्तु, यहा राज्य-रहित समाज का नहीं, अहिन्सक राज्य का विचार किया जाता

है—जिसका अधिकार-क्षेत्र कम से कम, और स्वरूप विकेन्द्रित हो. ज्यों-ज्यों मनुष्य संयमी और सेवा-भावी होता जाएगा, सरकार को रखने की आवश्यकता कम होती जाएगी. इस प्रकार सब से अच्छी सरकार वह है, जो शासन-कार्य सब से कम करती है; समाज की आदर्श व्यवस्था वह होगी, जिसमें राज्य की बिलकुल जरूरत न रहेगी.

सरकार का कार्य-क्षेत्र सीमित रहने की आवश्यकता—ऊपर सरकार की शक्ति या कार्यक्षेत्र सीमित रहने की बात कही गयी है. वर्तमान अवस्था में सरकार हमारे जीवन-व्यवहार पर कितना अधिकार जमाये हुए है, यह स्पष्ट ही है. हमारा भोजन-वस्त्र, खान-पान, शिक्षा, स्वास्थ्य, यातायात, लेन-देन, रीति-व्यवहार, क्रय-विक्रय, पारस्परिक सम्बन्ध आदि सभी में सरकार का दखल है. विवाह शादी जैसे सामाजिक कार्य और दान-पुण्य जैसे धार्मिक कार्यों का भी सरकार से घनिष्ठ सम्बन्ध है. यह स्थिति मनुष्य का दम घोटने वाली सी है, व्यक्ति को खुली हवा में सांस लेने नहीं देती. आवश्यकता है सरकार का कार्यक्षेत्र बहुत सीमित रहे; रोजमर्रा के साधारण जीवन में मनुष्य पर कम-से-कम प्रतिबन्ध रहे, और यह प्रतिबन्ध भी खासकर अपने नजदीक के तथा अपने जाने-पहचाने आदमियों की स्थानीय संस्थाओं द्वारा हो.

सरकार का संगठन—सर्वोदय व्यवस्था में शासन सम्बन्धी शक्ति और अधिकारों का मूल स्रोत सर्वसाधारण को माना जाएगा. जनता की स्थानीय अर्थात् ग्राम और नगर संस्थाएं—जिनका वर्तमान रूप पंचायतें म्युनिसपैलटियां है—अपने अपने क्षेत्र के आदमियों की रोजमर्रा की जरूरतें पूरी करेंगी. गणित की भाषा में कहें तो प्रत्येक क्षेत्र लगभग नब्बे-पिच्चानवे प्रतिशत

बातो के लिए स्वावलम्बी होगा गावो और नगरो का एक दूसरे से सम्बन्ध बनाये रखने के लिए ही सरकार की जरूरत रहेगी, और उसका सगठन किया जाएगा गांव-पचायत और नगर-पचायत कुछ आवश्यक निर्धारित अधिकार वाली जिला-पचायतो का निर्माण करेगी, जिला-पचायते प्रादेशिक सरकार को और प्रादेशिक सरकारे ससद को बनाएगी इस प्रकार ग्राम और नगर सस्थाए शासन की प्रारम्भिक इकाइया होगी और उन्हे अपने क्षेत्र मे शासन-प्रबन्ध के सब प्रकार के पर्याप्त अधिकार रहेगे वे अपने से बड़े क्षेत्र के हित का यथेष्ट ध्यान रखेगी इन सस्थाओ से ऊपर की इकाइयो के अधिकार और शासन-विषय क्रमशः कम होगे, और केन्द्र का तो कुछ खास निर्धारित विषयो के अतिरिक्त अन्य बातो मे कोई हस्तक्षेप ही न होगा

निर्वाचन पद्धति कैसी हो ?—आजकल चुनाव किस तरह होते है, उनमे कैसी अनीति, छल-कपट बर्ता जाता है, पैसे की कितनी जरूरत होती है, और पैसे के बल पर किस प्रकार आधुनिक जनतत्र व्यवहार मे धनतत्र बन जाता है इन बातो के ब्यारे मे जाने की आवश्यकता नही सर्वोदय व्यवस्था मे जिला-पचायतो, प्रादेशिक विधान सभाओ और (केन्द्रीय) ससद के लिए प्रत्यक्ष चुनाव-पद्धति काम मे नहीं लायी जायगी; इनके वास्ते चुनाव परोक्ष होगा प्रत्यक्ष चुनाव केवल गावो या नगरो की स्थानीय सस्थाओ तक परिमित रहेगा, जहा आदमी यह जानते है कि जिस व्यक्ति को हम चुनना चाहते है, वह कैसे चरित्र और विचार वाला है, उसमे त्याग, परिश्रम-शीलता, निस्पक्ष विचार और लोकसेवा की भावना कितनी है

गाधीजी का मत था कि ग्राम पचायत के पांच मेम्बर हो, जिनका चुनाव प्रति वर्ष गाव के सब बालिग स्त्री-पुरुषो द्वारा हो,

पंचायत सम्मिलित व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्याय-पालिका हो अर्थात् वह कानून बनाने, प्रबन्ध करने और न्याय करने का कार्य करे गांव जिले के प्रबन्ध करने वालों को चुनें और इस चुनाव में प्रत्येक गांव का एक मत हो जिन के प्रतिनिधि प्रान्तीय प्रतिनिधियों को चुनें और प्रान्तीय प्रतिनिधि राष्ट्रपति का चुनाव करें इस पद्धति से शासन-शक्ति का ग्राम-इकाइयों में विकेन्द्रीकरण हो जाएगा इन ग्रामों में नागरिक स्वेच्छा से सहयोग करेंगे और इसमें वास्तविक स्वतन्त्रता उपजेगी

शासन-संस्थाएं—शासन में खास विचारणीय बात यह है कि जनता का, जनता के नीचे से नीचे दिखायी देने या समझे जाने वाले वर्ग का, हित हमेशा सामने रहे इसके अतिरिक्त हमारा लक्ष्य राष्ट्र की स्वतन्त्रता, सुरक्षा और एकता हो, कोई बात मानवता-विरोधी होने का तो अवसर ही न आए अस्तु सर्वोदय व्यवस्था में हमारी जो शासन-संस्थाएं होंगी, उन्हें आजकल की भाषा में ये नाम दिये जा सकते हैं ( ) ग्राम पंचायतें और नगर पंचायतें, (२) जिला-पंचायतें, (३) प्रादेशिक विधान सभाएं, (४) केन्द्रीय संसद न्याय सम्बन्धी स्थानीय कार्य अधिकांश में पंचायतों द्वारा ही हो जायगा; और जब तक किसी नैतिक विषय की अवहेलना या कानून का दुरुप-योग न हो, पंचायती फैसला अन्तिम होगा. कुछ विशेष संगीन मामलों की अपील हो सकेगी. इनके लिए तथा प्रादेशिक मामलों के लिए राज्य के न्यायालय होंगे इस प्रकार न्याय विकेन्द्रित होने के साथ निष्पक्ष, सरल, सस्ता और जल्दी होगा.

स्मरण रहे कि भावी शासन-संस्थाओं का स्वरूप वर्तमान संस्थाओं से भिन्न प्रकार का होगा उदाहरण के लिए वर्तमान

पचायतो को जो अधिकार प्राप्त हैं वे प्रादेशिक सरकारो द्वारा दिये हुए है और उनपर जिला-मजिस्ट्रेट आदि का बहुत नियन्त्रण है इसी प्रकार वर्त्तमान प्रादेशिक विधान सभाओ के ऊपर केन्द्र की सत्ता है इसके विपरीत, भावी संस्थाओ मे मूल सत्ता स्थानीय सस्थाओ मे रहेगी. पंचायते स्वावलम्बी होगी, वे अपने सब मामलो का प्रबन्ध स्वय करेगी, यहां तक कि रक्षा के लिए भी उनकी यथेष्ट तैयारी रहेगी. रक्षा के विषय में खुलासा आगे लिखा जायगा

सरकारी नौकर; उनकी योग्यता और वेतन— शासन-प्रबन्ध मे सरकारी नौकरो का महत्व स्पष्ट है किसी आदमी को सीधे या एकदम उत्तरदायी पद पर नियुक्त करना ठीक नहीं केन्द्रीय क्षेत्र मे ऐसे ही व्यक्ति नियुक्त किये जाने चाहिए, जिन्होने प्रादेशिक क्षेत्र में योग्यता और लोकसेवा का परिचय दिया हो; इसी प्रकार प्रादेशिक क्षेत्र मे नियुक्त किये जाने वाले व्यक्ति स्थानीय क्षेत्र मे यथेष्ट अनुभव प्राप्त किये हुए सज्जन होने चाहिए. सरकारी कर्मचारियो का परिश्रमशील, ईमानदार, और सच्चरित्र होना अनिवार्य है उन्हे वेतन सार्वजनिक कोष से दिया जायगा—ग्राम-सेवको को पचायती कोष से, प्रादेशिक सरकारो और केन्द्रीय सरकार के कार्यकर्ताओ को,इन सरकारो के कोष से सब को वेतन अधिकांश मे जिन्स के रूप मे होगा, अर्थात् उनके लिए तथा उनके आश्रितो के वास्ते आवश्यक भोजन-वस्त्र और मकान की व्यवस्था की जाएगी. शिक्षा और चिकित्सा सार्वजनिक संस्थाओ से हो ही जाएगी उन्हें अपनी निजी फुटकर आवश्यकताओ के लिए—जो बहुत कम ही होगी—विशेष द्रव्य की आवश्यकता न होगी वे अल्प वेतन में सतुष्ट रहेगे इस प्रकार कोई व्यक्ति खासकर वेतन के लोभ से सरकारी पदों के लिए आकर्षित न होगा हा, उनके सेवा-कार्य के लिए उन्हे

सरकार और जनता में आदर-प्रतिष्ठा स्वयं मिलेगी, पर वे उसके पीछे नहीं पड़ेंगे.

विशेष वक्तव्य—सर्वोदय शासन-व्यवस्था में लोगों के व्यक्तित्व का दमन या हिंसा न होगी, वरन् उसकी उन्नति, विस्तार या प्रसार का यथेष्ट अवसर मिलेगा. व्यक्ति ही तो समाज का केन्द्र-बिन्दु होगा और उसका कल्याण करेगा. गांधीजी ने कहा है—

'जीवन एक मीनार के रूप में नहीं होगा, जहां ऊपर की तंग चोटी को नीचे के चौड़े पाये पर खड़ा होना होता है. वह समुद्र की लहरों की तरह एक के बाद एक, घेरे की शक्ल में होगा और व्यक्ति उसका मध्य बिन्दु होगा. वह व्यक्ति सदैव अपने गांव के लिए मिटने को तैयार होगा. गांव अपने आस-पास के देहात के लिए मिटने को तैयार होगा. इस तरह सारा समाज ऐसे लोगों का बन जाएगा, जो घमंडी बनकर कभी किसी पर हमला नहीं करते बल्कि हमेशा नम्र रहते हैं और अपने में समुद्र की शान का अनुभव करते हैं, जिसके वे एक आवश्यक अंग हैं.'

छत्तीसवाँ अध्याय

राज्य और उपयोग

हरेक काम के लिए अगर हम सरकार पर अवलम्बित रहेंगे, तो वह स्वराज्य होगा या गुलामी ? विशेष मौके पर हम पुलिस की मदद मांगे तो सरकार दे सकती है बाकी हमारी रोज की शान्ति, हमारा अनाज, हमारा कपड़ा, हमारी सफाई, हमारा शिक्षण सारे गाव मे ही करना चाहिए.

—विनोबा

देश की सरकार किसी भी दल की क्यो न हो, उसके हाथों में कम से कम शक्ति होनी चाहिए जनता का जीवन, रहन-सहन, खाना-पीना जितना भी सरकारी कण्ट्रोल (नियन्त्रण) से आजाद हो, उतना ही देश अधिक खुशहाल होगा और फूले-फलेगा

—सुन्दरलाल

पिछले अध्याय मे यह विचार किया गया कि सर्वोदय अर्थ-व्यवस्था की दृष्टि से राज्य का स्वरूप या संगठन कैसा होना चाहिए अब हमे देखना है कि जनता की विविध आर्थिक क्रियाओ मे अथवा अर्थशास्त्र के विविध भागो मे उसका सम्बन्ध कहाँ तक और किस प्रकार रहना चाहिए पहले उपयोग का विषय लें, इसका विचार जनता की दृष्टि से पहले हो चुका है, राज्य से भी उसका घनिष्ट सम्बन्ध है

सरकार ; उपयोक्ता के रूप में—वर्तमान अवस्था में सरकार के सैनिक तथा असैनिक कई विभाग होते हैं, जिनमे

राज्य के आकार या शासन-क्षेत्र के अनुसार कई-कई हजार और कुछ दशाओं में तो लाखों आदमी काम करते हैं। इन विभागों के लिए सरकार को समय-समय पर बहुत से तथा विविध प्रकार के सामान की आवश्यकता होती है। सैनिकों के लिए भोजन-वस्त्र तथा मकान आदि की भी व्यवस्था करनी होती है; इसके अतिरिक्त, वह कम्बल, थैले, बूट आदि वस्तुओं को, तथा सैनिक सामग्री के रूप में अस्त्र-शस्त्र, जहाज, वायुयान मोटर और सैनिक स्टोर की व्यवस्था करती है। सरकार को सैनिकों की भांति पुलिस वालों तथा कुछ अन्य कर्मचारियों को वर्दी आदि की भी जरूरत होती है। इस प्रकार उसे अपने कितने ही विभागों के लिए बहुत सा सामान चाहिए। जिन राज्यों में सरकार रेल का संचालन करती है, वहां उसी एक विभाग के लिए उसे एंजिन आदि बहुत सा सामान जरूरी होता है। स्टेशनरी—कागज, पेन्सिल, फाउन्टेन-पेन, रोशनाई, कलम आदि—का काफी परिमाण में उपयोग होता है। इससे सहज ही अनुमान हो सकता है कि प्रत्येक राज्य में सरकार कितनी बड़ी उपभोक्ता है।

मितव्ययिता की आवश्यकता—एक साधारण व्यक्ति की थोड़ी सी बेपरवाही से सामान की बहुत बरबादी या फजूल-खर्ची हो सकती है। इससे यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि सरकार को उपभोग में कितने विचार की आवश्यकता है। अनेक स्थानों में सरकार अपनी जरूरत को बहुत बढ़ा-चढ़ा कर अन्दाज कर लेती है, और अपने लिए इतनी भूमि तथा अन्य सामान की व्यवस्था करती है कि सर्वसाधारण के हितों की उपेक्षा हो जाती है। उसके विविध विभागों के पास बहुत सी भूमि बेकार पड़ी होती है, जब कि देश में जनता को [illegible] की पैदावार के लिए उसकी कमी का अनुभव होता है।

राष्ट्रपति या गवर्नर आदि की कोठियो के पास खाली मैदान, 'लान' या 'पार्क' आदि से कुछ पैदावार न हो कर, उलटा खर्च होना अनुचित है इसी प्रकार अन्य सामान की बात है पिछले दिनों भारत मे रेल विभाग के सम्बन्ध में जांच होने पर मालूम हुआ था कि कहीं-कही कुछ चीजे इतने परिमाण में सग्रह की हुई थीं, जो पचास सौ साल मे जा कर खर्च होगी यदि सरकार के प्रत्येक विभाग के सामान की जांच की जाय तो उनमे थोड़े बहुत इस तरह के दुरुपयोग के उदाहरण मिल सकते है जरूरत है कि इस विषय मे बहुत सावधान रहा जाय, और समय-समय पर इस बात की कड़ी जांच की जाए कि किसी विभाग में कोई चीज आवश्यकता से अधिक तो नहीं है, और कोई चीज खराब तो नहीं हो रही है.

सरकारी कर्मचारियों के ध्यान देने की बात— वर्तमान अवस्था में सरकारी कर्मचारी जितनी देख-भाल या सार-सभार अपने निजी सामान की रखते हैं उससे बहुत कम सरकारी या सार्वजनिक सामान की करते हैं. साधारण तौर पर काई व्यक्ति किसो मोटर, साइकिल, या टाइप राइटर आदि से जितने समय काम चला सकता है, उसकी अपेक्षा सरकारी अधिकारी उसे बहुत जल्दी ही रद्द कर डालते हैं खासकर स्टेशनरी के सम्बन्ध में होने वाले सरकारी अपव्यय से तो सर्वसाधारण बहुत ही परिचित हैं भारत जैसे अपेक्षाकृत निर्धन देश मे भी सरकारो अधिकारियो को दो लाइन के समाचार के लिए भी पोस्टकार्ड से काम लेना अच्छा नहीं लगता. फिर, उन्हे लिफाफा और चिट्ठी का कागज भी खूब बढ़िया चाहिए आवश्यकता है कि अधिकारी 'माले मुफ्त, दिले बेरहम' की नीति छोड़ कर प्रत्येक वस्तु का अच्छे-से-अच्छा उपयोग करें और मितव्ययिता से काम ले

सरकारी उपयोग-नीति का प्रभाव—सरकार को अपने विविध विभागों के लिए जिन चीजों की जरूरत होती है, उनमें से कुछ तो वह स्वयं बनवाती है, शेष वह खरीदती है उसका निर्माण और क्रय नीति का देश के उद्योग-धंधों पर भारी प्रभाव पड़ता है यदि कोई सरकार अपनी आवश्यकता का अधिक से अधिक सामान अपने ही राज्य में तैयार करवाती तथा खरीदती है, तो वहां के उद्योग धंधों को प्रोत्साहन मिलना स्वाभाविक ही है. इसी प्रकार यदि उसकी रुचि या प्रवृत्ति ग्रामोद्योगों की ओर हो तो वह अपनी क्रय-नीति से इन उद्योगों द्वारा बनी हुई वस्तुओं की खपत बढ़ाती हुई इनकी उन्नति में बहुत योग दे सकती है इस प्रकार, जब कि देश में विकेन्द्रित उत्पादन और ग्रामोद्योग पद्धति की उपयोगिता स्पष्ट है, सरकार का कर्तव्य है कि वह इन्हें ही अपनावे देश में बुनियादी तालीम की आवश्यकता पहले बतायी जा चुकी है, उसकी सफलता के लिए जरूरी है कि उसकी संस्थाओं द्वारा जो सामान बने, उसे सरकार खरीदे और काम में लावे

सरकारी नियंत्रण; मादक वस्तु विचार—यह तो सरकार द्वारा किये जाने वाले उपयोग की बात हुई अब जनता द्वारा होने वाले उपयोग का विषय लें सरकार को उसमें दखल न देना चाहिए. प्रत्येक स्थान पर, स्थानीय पंचायतों के मार्ग-दर्शन में आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन हो कर, उनका प्रायः वहां ही उपयोग होता रहे वर्तमान काल में उत्पादन उचित रूप से अथवा पर्याप्त मात्रा में नहीं होता और सरकार उसके उपयोग में नियंत्रण-नीति काम में लाती है, यह वर्तमान अर्थव्यवस्था की दूषित नीति के कारण है सर्वोदय अर्थव्यवस्था में इसकी जरूरत न होगी

यह कहा जाता है कि सरकार द्वारा शराब आदि मादक पदार्थों के उपयोग का नियंत्रण होना आवश्यक है पर इन

चीजो की तो नशे के लिए उत्पादन और बिक्री बन्द ही होनी चाहिए इसके सम्बन्ध मे विशेष आगे राज्य की अर्थ नीति के प्रसग मे लिखा जायगा. वास्तव मे लोगो की शिक्षा-दीक्षा और सस्कार ही ऐसे होने चाहिए कि वे स्वय मादक तथा अन्य अनावश्यक या हानिकारक पदार्थो से परहेज करे हा, सरकार का भी कोई कार्य जनता में इन चीजो के प्रति आकर्षण पैदा करने वाला न हो, उसे लोगो मे इनके लिए अरुचि बढाने का प्रयत्न करते रहना चाहिए अस्तु, सर्वोदय अर्थव्यवस्था मे अकाल, महंगाई, उत्पादन की कमी आदि न होगी, जिन के नाम पर सरकार इस समय जनता द्वारा किये जाने उपयोग से तरह-तरह के नियंत्रण लगाया करती है.

विशेष वक्तव्य—हमने पहले बताया है कि सर्वोदय अर्थ-शास्त्र के अनुसार हवा, पानी, मिट्टी और प्रकाश भी धन है इसलिए इन्हे दूपित करना या इनका दुरुपयोग करना एक सामाजिक अपराध हैं चाहे इसे कोई व्यक्ति या सस्था करे और चाहे सरकार करे. आज कल सरकारे हिन्सात्मक भावना से प्रेरित हो कर हवा को ज़हरीली करती है, नदियो, झीलो और समुद्रो का पानी खराब करती है, रोगो के कीटाणु फैलाती हैं, फसलो और मकानो को इस लिए नष्ट करती है कि 'शत्रु' उनका उपयोग न कर सके, अणुबम आदि से 'शत्रु' के नगरो को भस्म करती है इससे जो नर-हत्या होती है, वह तो निन्दनीय है ही, सार्वजनिक उपयोग मे आने वाली हवा पानी और मिट्टी का खराब किया जाना भी मानवता के विरुद्ध घोर अपराध है सर्वोदय व्यवस्था मे सरकार ऐसा दुष्कर्म नहीं करेगी

छत्तीसवाँ अध्याय

राज्य और उत्पत्ति

देश के भाग्य-विधाताओं को सोचना चाहिए कि केवल रुचि, व्यसन या माँग का ही ख्याल करके ऐसे (वनस्पति 'घी' जैसे) हानिकर उद्योग चलने दें या जिसमें लोगों का सच्चा हित है, वे ही काम चलने दें कभी यश मिले, कभी न मिले, पर जिस बात में हमें विश्वास है, उस पर डटे रह कर यथा-शक्ति प्रयत्न करना है.

—श्रीकृष्णदास जाजू

जिसे उद्योग-धंधों का नेशनलाइजेशन, राष्ट्रीकरण या 'कौमियाना' कहा जाता है, वह आजकल की हालत में केवल 'सरकारखाना' है अधिकतर देशवासियों का अब तक का तजरबा यही है कि जो धंधे जनता के हाथों से छिनकर सरकार और सरकारी आदमियों के हाथों में पहुंचे, उनमें जनता की दिक्कतें बढ़ी हैं, घटी नहीं।

— सुन्दरलाल

सर्वोदय की दृष्टि से सरकार का उत्पत्ति से सम्बन्ध कम ही होगा. यह उसी सीमा तक रहेगा, जहां तक लोकहित के लिए बहुत ही जरूरी हो अधिकांश उत्पादन स्थानीय संस्थाओं अर्थात् पंचायतों आदि की देखरेख और नियन्त्रण में रहेगा कुछ परिमित क्षेत्र में प्रादेशिक सरकारों का हस्तक्षेप होगा केन्द्रीय सरकार को प्रायः इस प्रकार का अवसर ही नहीं आना है

ग्राम पंचायतें और उत्पादन कार्य—पहले कहा गया है कि देश में खेती संतुलित होनी चाहिए, अर्थात् उसमें जनता की

मूल आवश्यकताओ को प्राथमिकता दी जानी चाहिए. पचायत। का यह कर्तव्य होगा कि वे किसानो को उन खास-खास फसलो को ही पैदा करने की अनुमति या परामर्श दें, जो लोकहित की दृष्टि से आवश्यक हो; वे व्यापारिक या मुनाफे की फसलो पर भारी शुल्क लगा कर प्रतिबन्ध लगाएं. इस प्रकार खेती न तो नफा कमाने की चोज हो, और न भूखा-नगा रखने वाला काम पंचायते भूमि की उन्नति और वितरण की व्यवस्था करें; प्रत्येक किसान को आवश्यक हल, बैल, खाद, बीज, तथा अन्य विविध उपकरण प्राप्त करने की और स्वाभिमान-पूर्वक जीवन बिताने की सुविधाए दे. गाव भर मे 'प्रत्येक व्यक्ति सब के लिए, और सब प्रत्येक के लिए' का आदर्श हो. लोकहितकारी सुनिर्धारित नियमो के अनुसार भूमि पर स्वामित्व अधिकार उसे जोतने वालो का ही हो अनाथो या असमर्थो को छोड़ कर किसी को अपनी भूमि किराये पर देने की अनुमति नहीं होनी चाहिए गांव की पड़नी भूमि, जगल, तालाब आदि गांव की सम्मिलित सम्पत्ति पर पचायत का नियन्त्रण रहे और वह सामूहिक हित की दृष्टि से उसका उपयोग करे प्रादेशिक सरकार द्वारा खेती के अच्छे तरीके, बढिया बीज, और सुधरे हुए औजारो के विषय मे अनुसधान और परीक्षण होते रहे तथा उनका लाभ पंचायतो द्वारा सर्वसाधारण को मिलता रहे

यही बात उद्योग-धधो के सम्बन्ध मे है उनमें भी जनता की मूल आवश्यकताओं को प्राथमिकता दी जानी चाहिए पचायतो का काम होगा कि उद्योग धधो द्वारा ऐसा उत्पादन न होने दे कि जनता को भोजन-वस्त्र आदि की कमी रहे और विलासिता या नशे आदि की चीजे बनायी जाए पचायतो द्वारा इस विषय मे यथेष्ट सतर्कता रहने पर उत्पत्ति लोकहितकारी होगी

पंचायत उत्पादन कार्य में कई प्रकार सहायक होगी. बुनियादी तालीम का प्रचार करके वह लोगों में श्रम की प्रतिष्ठा बढ़ाएगी, स्वास्थ्य-रक्षा का प्रबन्ध कर वह नागरिकों की उत्पादक शक्ति की वृद्धि करेगी, कुदरती खाद की व्यवस्था कर के वह फसलों के लिए बहुमूल्य पोषक पदार्थ प्रदान करेगी नये कुओं और तालाबों को बनवा कर तथा पुरानों की मरम्मत करा कर वह सिंचाई का साधन जुटाएगी इसी प्रकार स्थानीय आवश्यकता के अनुसार वह अन्य उत्पादक कार्यों में भाग लेगी.

उत्पत्ति में सरकारी सहायता—सिंचाई आदि में सरकारी सहायता के उपायों का उल्लेख खेती के अध्याय में किया जा चुका है यह भी पहले कहा जा चुका है कि शिक्षा ऐसी हो जो खेती और उद्योग धंधों की उन्नति में सहायक हो यहां उद्योग धंधों सम्बन्धी अन्य सरकारी सहायता का विचार किया जाता है जहां सम्भव और आवश्यक हो, ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि हाथ-उद्योगों का काम करने वाले व्यक्ति बिजली आदि की शक्ति से काम ले सकें और सहकारिता के सिद्धान्तों से लाभ उठा सकें. कभी-कभी किसी नये उद्योग को प्रारम्भ करने हुए आदमियों को हानि की बहुत आशंका होती है ऐसे उद्योग को, यदि वह सर्वसाधारण की दृष्टि से उपयोगी हो सरकार समुचित सहायता दे. उदाहरण के लिए वह उसके कच्चे माल औज़ारों, तथा उसके तैयार माल को सब प्रकार के शुल्कों से मुक्त रखे, और उसके वास्ते जंगल की पैदावार, लोहा, कोयला आदि अन्य आवश्यक सामान सब से प्रथम दे. इसके अतिरिक्त सरकार ऐसे उद्योग के विकास के लिए उचित शिक्षण द्वारा सुयोग्य कार्यकर्ताओं का वर्ग तैयार करे एवं आवश्यक वैज्ञानिक अनुसंधान कराए

पहले कहा जा चुका है कि सर्वोदय व्यवस्था मे जनता की मूल आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले उद्योग विकेन्द्रित और हाथ-उद्योग पद्धति से होगे सरकार का कर्तव्य होगा कि ऐसे उद्योगो को छांट ले और ऐसी व्यवस्था करे कि उनसे तैयार होने वाला माल विदेशो से तो आए ही नहीं, देश के कारखानो में भी न बने· और, यदि कुछ खास कारणो से कुछ समय तक बनना जरूरी समझा जाए तो उससे हाथ-उद्योग को विशेष धक्का न लगे उदाहरण के लिए कपडे की बात ले कानून द्वारा ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिए कि मिलो को एक खास हद से मोटा (उदाहरण के लिए १५-२० नम्बर से नीचे का) सूत कातने या कपड़ा न बुनने दिया जाए, इसके अतिरिक्त मिल के कपड़े हाथ के कपड़े की कीमत मे समानता लायी जाए.

इसके सम्बन्ध मे श्री किशोरलाल मशूवाला का कथन है कि 'वर्तमान अवस्था मे हाथ-श्रम से जो उत्पादन होगा, वह बहुत कम ही होगा हो सकता है कि जहां मिल मे २०० पौंड सूत काता जाता है, वहां इस पद्धति से १ पौंड या उससे भी कम हो तब यदि हाथ-उत्पादन की महंगाई मिल-उत्पादन पर फैला दी जाय, तो मिल-उत्पादन की कीमत कुछ खास नहीं बढ़ेगी, बहुत हुआ तो एक पौंड पर दो पाई. बुनाई के बारे मे भी यही हो सकता है कीमत मे नगण्य सी बढ़ती होगी, और खरीददार उसे महसूस भी नहीं करेगा इस तरह हाथ-कती और हाथ-बुनी खादी (या मिल के सूत से हाथ-करघे पर बुना हुआ कपड़ा) मिल के ही कपड़े की कीमत पर बेचा जा सकेगा

'ऐसे कई ग्रामोद्योग हमारे यहां है, जिन्हे यांत्रिक उद्योगो से होड़ करनी पडती है—जैसे घानी को तेल-मिल से, तेल और घी को जमाये तेलो से, हाथ-कागज को मिल-कागज से, गुड को शक्कर से, इत्यादि. इन सब उद्योगो में होड़ का वही

एक प्रकार है. यान्त्रिक उद्योगों में जहां उत्पादन बड़े पैमाने पर होता है और मजदूरों की संख्या कम होती है, वहा हाथ-कामों में उत्पादन कम प्रमाण में होता है और मजदूर ज्यादा लगते है यहां खादी के उदाहरण में जिस सिद्धान्तका प्रतिपादन हुआ है, उसका उपयोग इन सब ग्रामोद्योगों के लिए किया जा सकता है यातायात के लिए बैलगाडी जैसे प्राणि-वाहनों के उपयोग का सवाल भी इसी सिद्धांत के अनुसार हल करना होगा, अगरचे उसके अमल का ढग कुछ दूसरा हो सकता है ज्यादा-तर उदाहरणों में कारखाना के माल में थोडी सी महगाई कर देने से हाथ का तैयार माल सस्त भावो पर बेचा जा सकेगा; और उन लाखो मजदूरों को, जो बेकार हो जाते हैं. पेट भरने का साधन जुट जाएगा इसके सिवा, कारखानो के किसी-न-किसी वजह से अचानक बन्द पड जाने की हालत में जीवन और देश-रक्षा का एक प्रबल साधन तैयार रहेगा और यदि किसी क्षेत्र में हमारे तैयार माल के निर्यात-व्यापारको गुंजाइश हो, जैसे कि आज मिल के कपडे में है, तो उसे देश में कमी पैदा किये बिना चलाया जा सकेगा'

सरकार द्वारा उत्पत्ति बहुत सीमित हो—कुछ उत्पादन ऐसा होता है कि उसे व्यक्ति या कम्पनी आदि की अपेक्षा केन्द्रीय सरकार द्वारा किये जाने से सार्वजनिक सुविधा तथा मितव्ययता अधिक होने की आशा की जाती है इस विचार से रेल, डाक, तार का तथा बिजली-शक्ति बड़े पैमाने पर उत्पन्न करने का कार्य बहुत से राज्यों में सरकार द्वारा किया जाता है इनके अतिरिक्त कुछ कार्यों से उनका खर्च भी नहीं निकलता परन्तु वे जनता के लिए बहुत आवश्यक होते हैं जैसे पुल या सडके आदि ऐसे कार्य सरकार स्वय करती है कुछ कार्य ऐसे होते है. जो विशेषतया आर्थिक नहीं होते, जैसे

अस्त्र-शस्त्र का निर्माण. ऐसे कार्य पूर्णतया व्यक्तियो के भरोसे नहीं छोड़े जा सकते इसलिए इनका संचालन या उत्पादन सरकार ही करती है इसमें पूंजी सरकार की ही लगती है. यह पद्धति राष्ट्रीकरण कहलाती है. इसमें केन्द्रीकरण का खतरा है, जिससे हमेशा बचे रहने की जरूरत है फिर, यदि ऐसे उत्पादन मे पूंजी दूसरे देशो से उधार लेकर लगायी जाए तो उन देशों का राजनैतिक दबाव भी पड़ने की आशंका रहती है—यह पहले, 'पूंजी' नाम के अध्याय मे बताया जा चुका है इस प्रकार यह पद्धति बहुत सीमित क्षेत्र मे और स्वदेशी पूंजी के ही बल पर अमल मे लायी जानी चाहिए

अड़तीसवां अध्याय

राज्य और विनिमय-वितरण

आज व्यापार का मन्शा यह बन गया है कि आदमी को बुनियादी जरूरत की चीजें न दे कर उसका ध्यान, पैसे के जोर से, ऐश-आराम की चीजों पर लाया जाए. इन्सानी पहलू से देखने पर पता चलता है कि पैसे के जरिये से आर्थिक चहल-पहल समाज-विरोधी ढर्रे पर आ गयी. यह और इस किस्म की दूसरी बुराइयां हिन्सा और बेइमानी से भरी है. लेन-देन में पैसे के बजाय चीजों की अदला-बदली में ऐसा खतरा बहुत हद तक कम हो जाएगा

—जो. का. कुमारप्पा

सार्वजनिक सेवा के काम (डाक, तार, यातायात के साधन, किसानों के लिए ट्रैक्टरों की या बीज की व्यवस्था, नमक आदि आवश्यक चीजों का उत्पादन-वितरण आदि) का सचालन सरकार करे या सार्वजनिक सघ या कोई गैरसरकारी व्यापारिक संस्था करे—ये काम मुनाफे या बचत की दृष्टि से न किये जाए

—किशोरलाल मशरूवाला

पहले बताया जा चुका है कि वर्तमान अर्थव्यवस्था में विनिमय-व्यापार और वितरण ने बहुत विस्तृत और जटिल रूप धारण कर रखा है. सर्वोदय अर्थव्यवस्था में ये बहुत सीमित ही रहेंगे. तब स्वभावत सरकार का भी इन विषयो से विशेष सम्बन्ध न होगा. अत इस सम्बन्ध के बारे में ज्यादा लिखने की जरूरत नहीं, कुछ खास बातो की ही ओर ध्यान दिलाना है पहले विनिमय का विषय लें

[१] राज्य और विनिमय

मुद्रा—सर्वोदय व्यवस्था मे उत्पादन-कार्य स्वावलम्बन और विकेन्द्रीकरण पद्धति से होगा आदमियो की मुख्य आवश्यकताए उनके ही क्षेत्र मे बनी चीजो से पूरी होगी, दूर-दूर के स्थानो से मगाने और खरीदने की जरूरत न रहेगी व्यापार अधिकतर छोटे-छोटे प्रदेशो तक ही सीमित होगा. एक प्रदेश मे किसी को दूसरे की बनायी चीज लेनी होगी तो उसका सीधा अथवा किसी रोजमर्रा की आवश्यकता की वस्तु के माध्यम से, अदल-बदल हो सकेगा. मजदूरी, वेतन और कर आदि यथासम्भव जिन्स के रूप मे दिये जाएगे खेती और उद्योग धधो के लिए ऋण केवल विशेष परिस्थितियो में, कुछ खास योजनाओ के लिए ही लिया जायगा. इन सब कारणो से नकदी का व्यवहार अपने-आप बहुत कम रह जाएगा तथापि जितने परिमाण में भी वह होगा, उसके लिए उचित व्यवस्था करनी होगी

प्रत्येक राज्य मे मुद्रा-व्यवस्था केन्द्रीय सरकार द्वारा ही की जाएगी ; इससे वह राज्य भर मे एकसी होने से जनता के लिए सुविधाजनक होगी राज्य को यह ध्यान रखना होगा कि मुद्रा पद्धति सम्बन्धी अब तक के अनुभवों से लाभ उठाते हुए ऐसी व्यवस्था करे कि इस समय मुद्रा-स्फीति या तेजी-मदी आदि के रूप मे जो कष्ट और असुविधाएं होती है वे न होने पाएँ एक राज्य की मुद्रा किसी खास दूसरे राज्य की मुद्रा के आश्रित न हो; वह प्रमाणिक हो, और अपने राज्य की आवश्यकतानुसार हो

बैंक—बैंको के बारे में खुलासा पहले लिखा जा चुका है सर्वोदय व्यवस्था मे इनका स्वरूप, कार्य-क्षेत्र और नीति बहुत बदल

जाएगी अन्न-बैंक, वस्तु-विनिमय-बैंक आदि यथेष्ट संख्या में होने से राज्य में मुद्रा-बैंकों की आवश्यकता बहुत कम रहेगी इस समय इनमें जो स्वार्थ-साधन और मुनाफेखोरी हो रही है, वह न रहे और ये सेवा-भाव से काम करने वाले हों--इसलिए राज्य सहकारी बैंकों को छोड़ कर, बड़े-बड़े बैंकों का नियन्त्रण, अथवा राष्ट्रीकरण करेगा राज्य के बैंक स्वावलम्बी होंगे, किसी दूसरे बड़े राज्य के प्रमुख बैंक के अधीन या आश्रित नहीं

यातायात और आमदरफ्त के साधन—सर्वोदय व्यवस्था मे व्यापार का परिमाण कम रहने से उसके लिए रेल जहाज आदि की आवश्यकता कम होगी तथापि आमदरफ्त के साधन के रूप मे इनका महत्व रहेगा ये तथा डाक तार आदि सार्वजनिक उपयोग के साधन केन्द्रीय सरकार के अधिकार मे रहेंगे और वह इनके सम्बन्ध मे लोकहित की दृष्टि रखेगी.

पूंजी के अध्याय में रेलों और सड़कों के विषय में खुलासा लिखा गया है उनका तथा आन्तरिक जल-मार्गों, किनारे के जहाज-मार्गों, डाक, तार, हवाई जहाज आदि सार्वजनिक साधनों की व्यवस्था ऐसी होगी कि असंख्य गांव वालों के हित की उपेक्षा न हो हमारी अर्थव्यवस्था विकेन्द्रित होगी, मनुष्यों तथा पशुओं को पूरा काम देने के लिए देहातों में माल ढोने का मुख्य साधन बैलगाड़ी ही रहेगी और उनके लिए गांव-गांव में पहुंचने वाली सड़कों की उन्नति की ओर यथेष्ट ध्यान दिया जायगा गांवों मे डाक, तार, और टेलीफोन आदि की सुविधाएं इस समय सभी देशों में बहुत कम है, सर्वोदय व्यवस्था मे इन्हें काफी बढ़ाया जायगा इसी प्रकार इस समय रेलों और जहाजों आदि मे यात्रियों के दर्जे, उनकी किराया देने की सामर्थ्य के अनुसार निर्धारित किये जाते है सर्वोदय व्यवस्था मे उनमें

ऐसा भेद-भाव न रखकर सब की आवश्यकताओ और सुविधाओ का विचार किया जाएगा. यातायात और आमदरफ्त के सभी साधनो के दर निर्धारित करने में यह लक्ष्य रखना तो आवश्यक ही है कि विकेन्द्रित उद्योगों को अधिक-से-अधिक प्रोत्साहन मिले.

राज्य का व्यापार सम्बन्धी दृष्टिकोण—पहले बताया जा चुका है कि सर्वोदय व्यवस्था मे व्यापार की आवश्यकता बहुत कम रहेगी और उसके बहुत से भाग पर पचायतो का ही नियत्रण होगा. सरकार का सम्बन्ध एक देश के दूसरे देश से होने वाले व्यापार से ही रहेगा कोई देश उन्हीं वस्तुओ की आयात करेगा, जिनके बिना उसका काम न चले, और साथ ही वे दूसरे देश मे वहा की आवश्यकता से अधिक हो अर्थात् मुनाफे या विलासिता की दृष्टि से आयात नही की जाएगी यही बात निर्यात के सम्बन्ध मे रहेगी इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार बहुत परिमित ही रहेगा. सर्वोदय की दृष्टि से ऐसा होना जरूरी ही है: प्रत्येक देश को अधिक-से-अधिक स्वावलम्बी रहना है वास्तव मे हरेक राज्य को ऐसी आयात-निर्यात बन्द कर देनी चाहिए, जो ऊपर बताये हुए सिद्धान्त के विरुद्ध हो. इस प्रकार अनिवार्य आवश्यकताओ की वस्तुओ को छोड़ कर अन्य विदेशी माल के प्रति बहिष्कार नीति रहनी चाहिए.

विदेशी बहिष्कार की बात कुछ लोगो को बहुत अखरेगी. वे विश्वबन्धुत्व की बात करेगे हमारा भी आदर्श यही है कि ससार के सब देश एक दूसरे के साथ एक विशाल परिवार के सदस्यो की तरह प्रेम और समानता का व्यवहार करे. कोई देश किसी को अपने अधीन न करे इस समय जो राष्ट्र दूसरो को अपने अधीन करने के लिए नाना प्रकार के नीच प्रयत्न कर रहे है, उसका एक प्रमुख कारण यह है कि उन्हे अपने अधीन

देशों में अपना माल खपाने, तथा उनका आर्थिक शोषण कर सकने की आशा है जब उनकी यह आशा न रहेगी, जब उन्हे विश्वास हो जाएगा कि प्रत्येक देश स्वावलम्बी है और विदेशी माल का बहिष्कार करता है तो उन राष्ट्रों को साम्राज्य-विस्तार की लालसा भी कम हो जाएगी. इस प्रकार यदि हम विदेशी वस्तुओं के सस्तेपन के लोभ में न पडें और स्वदेशी वस्तुओं से ही काम चलाने लगें—चाहे वे कुछ महगी ही क्यो न हो—तो हम ससार को युद्ध-संकट से दूर करने में भी बहुत सहायक हो सकते है, और स्वय भी शाति का आनन्द प्राप्त कर सकते हैं सच्चे विश्वबन्धुत्व का आदर्श चरितार्थ करने का यही मार्ग है.

[२] राज्य और वितरण

पहले बताया जा चुका है कि सर्वोदय अर्थव्यवस्था मे वितरण की समस्या आज की सी जटिल न होगी, एक प्रकार से उस समस्या का अन्त ही हो जायगा इस प्रकार राज्य को भी उसके विषय म विशेष कुछ करना न होगा हा, समाज को ऐसी स्थिति में लाने के लिए राज्य बहुत सहायक हो सकता है उसकी सहायता का लक्ष्य आर्थिक विषमता दूर करने का होना चाहिए.

आर्थिक-विषमता-निवारण—इस समय उत्पत्ति के चार साधनों—भूमि, श्रम, पूंजी और साहस—के स्वामियो को उनका प्रतिफल अर्थात् लगान, मजदूरी, सूद और मुनाफा दिया जाता है. सर्वोदय अर्थव्यवस्था में लगान, सूद और मुनाफे को हटा देना है, और श्रमियो को मजदूरी इस प्रकार मिलेगी कि न तो उन्हे अपने जीवन-निर्वाह आदि में कुछ कठिनाई हो, और न उनमें एक-दूसरे से विशेष अन्तर हो अर्थात स्त्री और पुरुष

को, बुद्धिजीवी और शरीर-श्रमी को समान वटे इमानदारी से काम करने पर समान ही वेतन दिया जाएगा.

उपर्युक्त लक्ष्य को ध्यान मे रख कर राज्य को वर्तमान अवस्था में निम्नलिखित उपाय काम मे लाने चाहिए:—

१—जमींदारी और जागीरदारी आदि की प्रथा उठा देनी चाहिए. खेती करने वाले प्रत्येक परिवार को देश की कुल भूमि का ध्यान रखते हुए इतनी भूमि दी जानी चाहिए, जितनी की आय से उनका निर्वाह हो जाए. इस विषय पर विस्तार से पहले लिखा जा चुका है

२—ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिए कि अपनी आवश्यकता से अधिक पूजी को आदमी ट्रस्टी के रूप मे ही रखे, वे उसका उपयोग समाज या राज्य के लिए करे और उसके उत्तरदायित्व-हीन स्वामी न हो जो ऐसा न करते हो, उन पर भारी और उत्तरोत्तर अधिक कर लगाया जाए धनी मनुष्य के मरने पर उसकी जायदाद पर यथेष्ट कर लगाया जाए और उत्तराधिकारियो से विरासत कर लिया जाए

३—विकेन्द्रीकरण पद्धति से चलने वाले उद्योग-धधो की वृद्धि की जाए, जिससे उनके द्वारा ही जनता की प्रमुख आवश्यकताओ की पूर्ति का सामान तैयार हो जाया करे उपयोक्ता समान तैयार करने के लिए नये केन्द्रीभूत उद्योग स्थापित न होने दिये जाए, वरन् जो ऐसे उद्योग इस समय चल रहे हैं उनकी भी मशीन और पुर्जो के घिस जाने पर उन्हे बदलने की अनुमति न दी जाए.

४—अधिकतम सम्पत्ति और आय तथा न्यूनतम सम्पत्ति और आय का अन्तर कम करना और क्रमशः घटाते रहना चाहिए इस विषय मे श्री किशोरलाल मश्रूवाला का कथन है कि

यदि हम सरकारी तथा सार्वजनिक संस्थाओं में काम करने वाले सेवकों के लिए मासिक दो हजार रुपये तथा अधिकतम निजी सम्पत्ति की मर्यादा सभी के लिए दस लाख रुपये तय कर सकें तो पहले कदम के रूप में मैं उसे निभालूंगा न्यूनतम आय रुपये के रूप में उन्होंने इस प्रकार दरसायी है [१] —

२५ वर्ष तक की उम्र वालों के लिए			६० रु०
२५ से ३० वर्ष तक	,,	,,	८० रु०
३० वर्ष से अधिक	,,	,,	१०० रु०

कुछ लोगों का यह मत हो सकता है कि आर्थिक समानता स्थापित करने के लिए श्री मशरूवाला के ये प्रस्ताव काफी तेज नहीं है इन सज्जनों को याद रखना चाहिए कि इन सुझावों को इसी रूप में अमल में लाने का आग्रह नहीं है, ये तो इस विषय का विचार करने में सहायता देने के लिए उपस्थित किये गये है यदि कोई सज्जन, अथवा संस्था या सरकार अधिक जोरदार कदम उठा सके तो और भी अच्छा

जब रोजमर्रा की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उत्पादन विकेन्द्रित पद्धति से अथवा ग्रामोद्योगों से होगा तो श्रमियों को वेतन देने का प्रश्न ही बहुत कम रह जाएगा, कारण, अधिकांश आदमी अपने-अपने घर में, अपने परिवार के व्यक्तियों के साथ स्वतंत्र रूप से श्रम करने वाले होंगे वे स्वयं ही अपने द्वारा उत्पन्न वस्तु के मालिक होंगे, अथवा, जब कि वे सहकारी पद्धति से उत्पादन करेंगे तो वहां भी सब काम करने वाले बराबरी के होंगे, मालिक (पूंजीपति) और मजदूर का भेद न होगा; मजदूरी का प्रश्न न उठेगा मजदूरी का सवाल केवल उन्हीं उद्योग धंधों में उपस्थित होगा, जिन्हें लोकहित की

१ 'सर्वोदय', अप्रैल १९५१

दृष्टि से केन्द्रित रूप में ही करवाना आवश्यक होगा. इनका निरीक्षण और नियंत्रण सरकार द्वारा किया जाना चाहिए अथवा इनका राष्ट्रीकरण होना चाहिए. प्रत्येक सरकार को मजदूरी सम्बन्धी बातो मे जीवन-वेतन और समानता के आदर्श को अपने सामने रखना चाहिए.

इन उपायो को अमल में लाने से आधुनिक सरकारे अपने अपने राज्य मे आर्थिक विपमता को क्रमशः घटा कर उसे बहुत-कुछ हटा सकती है और सर्वोदय अर्थव्यवस्था के लिए क्षेत्र तैयार कर सकती है, जिसमे, जैसा पहले कहा गया है, वितरण की जटिल समस्या का अन्त ही हो जायगा.

विशेष वक्तव्य—वर्तमान आर्थिक विषमता का एक मुख्य कारण यह है कि इस समय प्रत्येक राज्य का व्यय बहुत बढ़ा हुआ है. प्रत्येक राज्य को पुलिस और खासकर सेनाए रखने तथा सैनिक सामग्री तैयार कराने के लिए बहुत रुपया चाहिए. इस लिए वह ऐसे ही उत्पादन को प्रोत्साहन देता है, जिससे उसे आसानी से तथा बड़े परिमाण मे आय हो. इस प्रकार ग्रामोद्योगो की अपेक्षा यंत्रोद्योगो की उत्तरोत्तर उन्नति और विस्तार किया जाता है, जिसका फल आर्थिक विषमता बढ़ाना होता है. इसी प्रकार राज्य पुलिस और सेना के पदाधिकारियो को बहुत ऊंचा वेतन देता है, उसमे और अन्य श्रमियो को मिलने वाले वेतन में बहुत अन्तर रहता है. इस तरह की सब बाते आर्थिक समानता में भयकर बाधाएं है. इनके निवारण के लिए राज्य की रक्षा-नीति मे आमूल परिवर्तन होने की आवश्यकता है. सर्वोदय व्यवस्था मे यह किस प्रकार होता है, इसका विचार अगले अध्याय में किया जाएगा.

उनतालीसवां अध्याय

राज्य और शान्ति तथा रक्षा

अहिंसक राज्य में अपराध तो होंगे, किन्तु किसी को अपराधी न माना जायगा, क्योंकि मनुष्य सभी अपराधों को, हत्या को भी, एक प्रकार का रोग समझ कर व्यवहार करेंगे.

—गांधीजी

उस देश में न तो राजा था, न अस्त्र-शस्त्र थे, और न उन्हें व्यवहार में लाने वाली पुलिस या सेना थी. स्वयं प्रजा या जनता अपना कर्तव्य जानने के कारण एक-दूसरे की रक्षा करती थी.

—महाभारत

किसी भी प्रकार की अर्थव्यवस्था हो, उसके सुसंचालन के लिए राज्य के अन्दर जनता की शान्ति तथा विदेशी आक्रमणों से उसकी रक्षा करना आवश्यक है. इस अध्याय में हमें यह विचार करना है कि सर्वोदय व्यवस्था में यह कार्य किस प्रकार किया जाएगा.

सर्वोदय व्यवस्था में अपराधों की कमी—यह तो स्पष्ट ही है कि सर्वोदय अर्थव्यवस्था होने पर राज्य में अपराध बहुत कम होंगे. मिसाल के तौर पर चोरी, मार पीट या झगड़ा की बात लें. पहले तो बुनियादी तालीम से हरेक आदमी अपनी आजीविका स्वयं प्राप्त करने योग्य होगा तथा उसकी नैतिक भावना इतनी ऊंची होगी कि वह दूसरे के द्रव्य के लिए ललचाएगा नहीं. फिर विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था में ऐसी आर्थिक

विषमता न होगी, जैसी इस समय है; और उसमे समाज की सभाल और सुरक्षा के लिए विशेष बल-प्रयोग की आवश्यकता न होगी. सादे घरो में सामान ऐसा मामूली रहता है कि चोरो के लिए विशेष आकर्षण और सुविधा नही होती. सोने चादी के जेवर और सिक्के आसानी से चुरा कर ले जाये जा सकते हैं, पर यदि घरो मे अन्न और सूत आदि भरा हो तो चोर कहा तक ले जा सकते है! इस प्रकार साधारण घरो की रखवाली के लिए पुलिस की विशेष आवश्यकता नहीं होती, जब कि धनवानो और मालदारो के घरो या बड़े-बड़े केन्द्रित कारखानो की चौकसी के लिए उसकी बहुत ही व्यवस्था करनी होती है अस्तु, व्यावहारिक दृष्टि से यही मान ले कि कुछ अपराध हमेशा होगे तो इसमे तो कोई सन्देह ही नहीं कि सर्वोदय अर्थव्यवस्था में बहुत ही कम होगे.

अपराधियों के सुधार की व्यवस्था—यदि अपराध होते हैं, चाहे वे कितने ही कम हो, तो उनका नियन्त्रण और निवारण करना राज्य का कर्तव्य ही है सर्वोदय राज्य मे अपराध करने वालों को एक प्रकार का रोगी समझा जायगा तथा उनके इलाज या सुधार का प्रबन्ध किया जायगा इस प्रकार मृत्यु-दड उठ ही जाएगा, और जेलो तथा हवालातो आदि की जगह सुधार-गृह होगे. राज्य मे पुलिस रखनी तो होगी जो अपराधियो को गिरफ्तार करेगी, पर उन्हे दड दिलाने या उनसे बदला लेने के लिए नहीं, वरन् उन्हे अच्छा नागरिक बनाने मे मदद देने के लिए. इस प्रकार वह अपने आपको जनता का सेवक समझेगी. उसके पास हथियार रहेगे. पर वह जनता की शेर चीता, सुअर रीछ आदि जगली और हिसक जानवरो से तथा हिसक मनोवृत्ति वाले पागल आदि से रक्षा करने के लिए इसी प्रकार नयी व्यवस्था मे झगड़े या मुकदमेबाजी कम होगी,

तथापि न्यायालयो की व्यवस्था रखनी पडेगी जिसके सम्बन्ध मे खुलासा आगे लिखा जायगा

निदान, प्रत्येक प्रादेशिक सरकार के नियत्रण मे हरेक गाव तथा नगर मे आवश्यकतानुसार पुलिस रहेगी और खास-खास स्थानो मे न्यायालय और सुधारगृह होगे, जिनमे सहृदय मनोवैज्ञानिक अपने-अपने क्षेत्र के लोकसेवो सज्जनो के सहयोगसे अपराधी कहे जाने वालो को सुयोग्य नागरिक बनाने का सेवा-कार्य करेंगे

न्याय-कार्य—सर्वोदय व्यवस्था मे, जब लोगो को खाने-पीने की कमी न होगी, तथा आरम्भ से ही समुचित शिक्षा मिलेगी, और आदमी श्रम की प्रतिष्ठा करने वाले होगे तो मुकदमेबाजी का आश्चर्यजनक रूप से घट जाना स्वाभाविक ही है फिर, जो झगडे होगे, उनमे से अधिकाश का निपटारा स्थानीय पचायते ही न्याय-पूर्वक और बिना किसी खर्च के कर देगी झूठ सच्चे गवाहो और चालाक वकीलो की जरूरत न रहेगी. पहले कहा जा चुका है कि वकील अपनी आजीविका के लिए वादी-प्रतिवादी से ली जाने वाली फीस पर निर्भर न रह कर शरीर-श्रम पर अवलम्बित रहेगे और जनता को न्याय दिलाने की सेवा मुफ्त मे करेगे

यह कोरी कल्पना नही है. चीन ने इस समय जो व्यवस्था की है, उससे भी उपर्युक्त व्यवस्था की व्यवहारिकता स्पष्ट हो जाती है 'किसी जमाने मे केवल शघाई शहर मे बारह सौ वकील रहा करते थे लेकिन आज वहा एक भी वकील नहीं है इन सब को दूसरे महकमो मे ले लिया गया है और सिर्फ पाच बहुत काबिल वकीलो को सरकार ने खुद नौकर रख लिया है, जिनसे पेचीदा मामलो मे सलाह ली जाती है इस तरह न सिर्फ यह कि चीन से मुकदमेबाजी की बीमारी दूर हो गयी है, बल्कि अब मुकदमो

के फैसले भी बहुत जल्द हो जाते हैं और इन्साफ सस्ता हो गया है. चीनी सरकार मुजरिमो (अपराधियो) का सुधार ट्रेनिंग देकर भी करती है और सजा देने के मुकाबले में उनको सदाचार की शिक्षा भी देती है.''

रक्षा व्यवस्था—पहले कहा जा चुका है, सर्वोदय व्यवस्था मे हरेक गाव और नगर स्वावलम्बी होगा. इसका अर्थ यह है कि अपनी मूल आवश्यकताओ की पूर्ति करने के अतिरिक्त वह इस योग्य होगा कि बाहरी आक्रमण से अपनी रक्षा भी स्वय कर ले. इस कार्य के लिए आदमियो को सत्याग्रह करने और अपने प्राण न्यौछावर करने की शिक्षा मिली हुई होगी. ये सत्याग्रही या अहिन्सक सैनिक शान्ति के समय सामूहिक सफाई, शिक्षा, उत्पादन आदि का रचनात्मक कार्य करेंगे ये ऐसा वातावरण बनाएंगे कि एक गाव या नगर का दूसरे गाव या नगर से, एक प्रदेश का दूसरे प्रदेश से, तथा एक देश का दूसरे देश से प्रेम और मित्रता हो; एक-दूसरे का सहयोग और सहायता करे, सब सेवा-भाव रखें

युद्ध का अवसर उपस्थित होने पर इस सेना के सिपाही अपना बलिदान करने के लिए तैयार होंगे. युद्ध की ज्वाला को शान्त करने के लिए ये कोई कसर न रखेंगे. इनकी शक्ति इनकी संख्या पर निर्भर न रह कर इनमे से प्रत्येक के आत्मिक बल के अनुसार अपना जौहर दिखाएगी ऐसे एक सत्याग्रही के न्यौछावर होने पर न-जाने कितने साथियो को बलिदान होने के लिए उत्साह और प्रेरणा मिलेगी, तथा विपक्षियो का हृदय-परिवर्तन होकर उन्हे एकदम मित्र नहीं तो तटस्थ बनने के लिए बाध्य होना पड़ेगा

सर्वोदय व्यवस्था में राज्य की नीति अन्तर्राष्ट्रीय विषयो में अहिन्सा, शोषण-हीनता, सहानुभूति और शान्ति की होगी.

---

* 'नया हिन्द' चीन नम्बर, दिसम्बर १९५१.

राज्य स्वयं स्वतंत्र रहते हुए दूसरों की स्वतन्त्रता का आदर और रक्षा करेगा, और इसके लिए दूसरों के प्राण लेने की अपेक्षा अपने नागरिकों की आहुति देना पसन्द करेगा इस आदर्श को प्राप्त करने लिए नागरिकों में अहिन्सा-पूर्वक प्रतिरोध की भावना उत्तरोत्तर जागृत करने का प्रयत्न किया जायगा शान्ति-सेनाओं का संगठन किया जायगा. अस्तु, देश-रक्षा का कार्य केन्द्रीय सरकार के नियंत्रण में रहेगा और वह स्थायी सशस्त्र सेना की जगह प्रादेशिक शान्ति सेनाओं का संगठन करेगी.

इस प्रसंग में यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि इस अणुबम के युग में बड़े-बड़े शहरों की घनी बस्तियों और केन्द्रित उद्योगों वाले कल-कारखानों वाले देश को जल्दी ही तहस-नहस किया जा सकता है, परन्तु यदि जनता गावों में बिखरी हुई हो और उद्योग धंधे विकेन्द्रित हो तो उन्हे सहज ही नष्ट नहीं किया जा सकता. गांधीजी ने सत्य ही कहा था – 'फौजी, हवाई और जहाजी ताकतों से सुसज्जित शहरी भारत की अपेक्षा सुसंगठित देहात वाले भारत को विदेशी आक्रमण का खतरा कम रहेगा.' इससे देश-रक्षा के लिए उद्योग-धंधों के विकेन्द्रीकरण और बस्तियों के बिखरे हुए होने की उपयोगिता स्पष्ट है.

मूल मंत्र — अहिन्सा, सत्याग्रह और सहयोग— सर्वोदय में यह अच्छी तरह समझ लिया जाता है कि युद्ध का उपाय हिन्सा नहीं है; दूसरों की मार-काट करके हमें शान्ति नहीं मिल सकती, तथा शान्ति अविभाज्य है आधुनिक संसार में प्रत्येक देश का दूसरों से इतना घनिष्ट सम्बन्ध है कि कुछ भागों में अशान्ति रहने पर शेष को शान्ति का सुख नहीं मिल सकता. अस्तु, विश्व शान्ति की तैयारी होनी चाहिए और इसका आधार अहिन्सा ही हो सकती है. अहिन्सा का अर्थ है, आर्थिक क्षेत्र में

औद्योगिकविकेन्द्रीकरण, राजनैतिक क्षेत्र में विकेन्द्रित शासन, सामाजिक क्षेत्र में समानता अर्थात् ऊंच-नीच के भेद-भाव का निवारण, और शिक्षा के क्षेत्र मे शारीरिक और बौद्धिक समतोल. इन बातो का स्पष्टीकरण यथा-स्थान किया जा चुका है. अस्तु, सभी क्षेत्रों मे अहिन्सा का प्रयोग करने पर स्थायी शान्ति की स्थापना में सफलता मिल सकती है

अहिन्सक समाज की रचना के लिए सत्याग्रह और असहयोग अनिवार्य हैं. आक्रमणकारियो के विरुद्ध किसी प्रकार का दुर्भाव न रखते हुए, और उन्हे कोई कष्ट न पहुंचाते हुए उनके आक्रमण का डट कर विरोध होना चाहिए और किसी भी भय या प्रलोभन के कारण उनसे सहयोग नहीं करना चाहिए गांधीजी के अनुसार इस विषय के कुछ नियम ये हैं—

'जिन पर हमला किया जाय, उन्हे हमला करने वाले को किसी भी तरह की मदद नहीं करना है. उनका फर्ज है कि उससे पूरी तरह असहयोग करें.

'हमला करने वाले के आगे न तो हम घुटने टेकेंगे और न उसके किसी हुक्म की पाबन्दी करेंगे.

'हम उससे किसी रिआयत या इनाम की उम्मीद नही करेंगे और न उससे किसी तरह की कोई रिशवत लेंगे. लेकिन हम उसके लिए दिल मे कोई बुरा ख्याल नहीं लाएगें और न उसकी बुराई चाहेंगे

'अगर वह हमारे खेतो पर कब्जा करना चाहता है तो हम उन्हें छोड़ने से इनकार करेंगे, चाहे उसका मुकाबला करने मे हमें जान ही क्यों न देनी पड़े.

'अगर उसे कोई बीमारी हो या वह प्यास से परेशान हो और हमारी मदद चाहता हो तो भी हम इनकार नही करेंगे.'

हम देखते हैं कि युद्ध में घातक अस्त्रो से लड़ने वाले सहस्रो व्यक्तियो की आहुति देने वाली सेना को भी अपनी विजय का भरोसा नहीं होता और यदि वह अन्त में जीतती भी है, तो वह जीत उसके लिए काफी महगी पडती है; विपक्षी के लिए अथवा मानव समाज के लिए तो वह अनिष्टकारी होती ही है इसके विरूद्ध, यदि अहिन्सा की भावना से सत्याग्रह और असहयोग द्वारा आक्रमणकारी का विरोध हो तो इसमें चाहे कुछ व्यक्तियो को प्राण भी गवाने पडे, दोनो पक्ष का कल्याण है; हानि किसी को भी नहीं इसलिए देश-रक्षा के अमोघ या अचूक उपाय ये हैं—अहिन्सा, सत्याग्रह, और असहयोग मानव समाज के नव-निर्माण के लिए इन्हे साहस और धैर्य-पूर्वक अपनाया जाना चाहिए.

विशेष वक्तव्य—आदमी आदमी से डरे, और शस्त्रास्त्रो की तैयारी हो, घूसे और मुक्के की जगह तीर और तलवार, फिर बदूक और तोपें, और अब हवाई जहाजो से बम-वर्षा तथा समुद्र में विध्वसक नौकाए, यही नहीं, अणु (एटम) बम और हाइड्रोजन-बम आदि के द्वारा की जाने वाली प्रलयकारी विनाश-लीला ! ये बातें हमारी मानवता और सभ्यता के लिए चुनौती हैं वर्तमान राजनैतिक मस्तिष्क दिन रात अधिकाधिक घातक कार्य की तैयारियो मे परेशान रहता है जनता के पास भोजन-वस्त्र जैसी मूल आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन यथेष्ट न होते हुए भी असख्य धन-राशी विध्वस-कार्यों में स्वाहा की जाती है कुछ चतुर राजनीतिज्ञ तो असन्तुष्ट जनता' के मन से उसके कष्टों तथा अभाव-अभियोगो की बात निकालने का रामबाण नुस्खा यही समझते हैं कि उसका ध्यान कल्पित युद्ध-सकट की ओर आकर्षित कर दिया जाए, जिससे वह भावी लडाई

की तैयारी में जुट कर अपने सब वर्तमान दुखों को इस तरह भूल जाए, जिस तरह शराब पीकर आदमी अपनी तत्कालीन अवस्था का ज्ञान खो बैठता है, और, थोड़ी सी देर के लिए ही सही, अपनी निर्धनता और हीनता को भूल जाता है.

यह नुस्खा कुछ कारगर नहीं है, और अन्त में बहुत महगा या हानिकर पड़ता है; आर्थिक दृष्टि से ही नहीं--वह तो फिर भी नगण्य है—मानवता की दृष्टि से भी इस लिए मानव समाज के नव-निर्माण तथा विश्व-कल्याण के विचार से इसे छोड़ दिया जाना आवश्यक है. इसकी जगह अहिन्सा, सत्याग्रह और असहयोग के मानवोचित उपायों का उपयोग किया जाना चाहिए.

चालीसवां अध्याय

राज्य और अर्थनीति

सच्चा अर्थशास्त्र सरकार के आय-व्यय मे नही समाया रहता, बल्कि इस बात की जाच करने में रहता है कि इस आय और व्यय से देश की प्रजा का कैसा और कितना हित होता है

—मगनभाई देसाई

पचायतों का प्रभुत्व—पहले बताया जा चुका है कि सर्वोदय व्यवस्था में शासन की निचली इकाइयो का कार्य अधिक से अधिक होगा इस प्रकार ग्राम-पंचायतो का काम अपने-अपने क्षेत्र मे शिक्षा, स्वास्थ्य, सफाई, खेती ग्रामोद्योग और न्याय ही नहीं, रक्षा आदि भी होगा. ये जनता की मूल आवश्यकताओ की पूर्ति की व्यवस्था करेगी. ये गाव की सडक, कुए, तालाव, वाचनालय, पुस्तकालय, विद्यालय, चिकित्सालय, सग्रहालय, वस्तु-भडार आदि का आयोजन करेंगी इन्हे जनता के सास्कृतिक और नैतिक उत्थान की ओर भी ध्यान देना होगा, जिससे गाव वाले एक दूसरे के साथ समुचित सहयोग की भावना रखते हुए ग्रामोन्नति मे भाग ले सकें. इसी प्रकार नगर-पचायते अपने पास पडोस की ग्राम्य या नागरिक जनता के हित को कोई बाधा न पहुँचाते हुए, तथा उसका पूरक होते हुए अपने-अपने क्षेत्र के आदमियो की अधिक से अधिक आवश्यकताओ की पूर्ति का प्रयत्न करेगी

पचायतो के इस विशाल कार्य-क्षेत्र को लक्ष्य मे रख कर ही सरकारी आय-व्यय का प्रबन्ध करना होगा. सर्वोदय-योजना-

समिति का मत है कि 'शासन की प्रारम्भिक इकाइयो का स्वशासन वास्तविक और प्रभावशाली बनाने के लिए ऐसी व्यवस्था करनी पड़ेगी कि प्रादेशिक इकाइयो मे सार्वजनिक आय का अधिकतर संग्रह और व्यय वे ही करे. हमारा लक्ष्य ऐसी अर्थव्यवस्था को विकसित करना होना चाहिए, जिसमे सार्वजनिक आय का ५० प्रतिशत संग्रह और व्यय ग्राम-पचायतें ही करे. शेष पचास प्रतिशत उनसे ऊपर के संगठनो के के लिए छोड़ देना चाहिए'*

प्रादेशिक सरकारों की आय: मालगुजारी—प्रादेशिक सरकारे अपने-अपने क्षेत्र की ग्राम और नगर पचायतो का आपसी सम्पर्क और सहयोग बढाती हुई उन्हे भूमि तथा विकेन्द्रित उद्योगो सम्बन्धी आवश्यक सहायता देगी ये ऐसी शिक्षा तथा अनुसधान आदि की व्यवस्था करेगी, जिससे गांवो और नगरो के निवासियो की प्रमुख आवश्यकताओ की पूर्ति तथा आत्मोन्नति की सुविधा होगी ये यातायात के लिए सड़को का, और सिंचाई के लिए—जहॉ आवश्यक और उपयोगी हो—नहरो, नल-कूपो और बांधो का निर्माण करेंगी

प्रादेशिक सरकारो की आय का मुख्य साधन मालगुजारी होगी, जो पचायतो द्वारा वसूल की जाएगी इसमे वर्तमान काल के दोष न रहेगे, आवश्यक सुधार कर दिये जाएगे. यह तो पहले ही कह दिया गया है कि सर्वोदय व्यवस्था में किसानो से लगान‡ न लिया जायगा, और कहीं बे-मुनाफे की खेती न होगी; बीच के समय मे, यदि कहीं बे-मुनाफे की खेती हो, तो उसकी मालगुजारी न ली जानी चाहिए. जिस खेती से किसान की

* 'सर्वोदय योजना' से

‡ लगान और मालगुजारी का भेद पहले बताया जा चुका है

और उसके परिवार के लोगो की मजदूरी आदि लागत-खर्च निकल आने पर मुनाफा रहे, उस पर ही मालगुजारी ली जाए मालगुजारी की दर निर्धारित करने में देश-काल या लोकहित का, और उसे वसूल करने में किसानो की सुविधाओं का यथेष्ट ध्यान रखा जाए जो वस्तु मानव जीवन के लिए जितनी अधिक आवश्यक हो, उतनी ही उसकी पैदावार पर मालगुजारी की दर कम होगी

मालगुजारी जिन्स के रूप में होनी चाहिए—वर्तमान अवस्था मे सरकारी मालगुजारी प्राय नकदी में निर्धारित रहती है इससे किसानो को अपनी फसल की पैदावार वेचने की जल्दी करनी पडती है, और इस जल्दी से उसे वहुधा वहुत घाटा सहना होता है कुछ दशाओ में तो किसान को अपनी पैदावार का इतना हिस्सा वेच देना होता है कि उसके पास अगली फसल तैयार होने तक गुजारा करने के लिए भी काफी नहीं वचता, और उसे स्वय अपने वास्ते वाजार से खरीद करनी पडती है इस पर फिर उसे घाटा रहता है अनेक वार तो अन्न आदि दूर-दूर की मडियो में ले जा कर वेचा जाता है, पीछे जब गाव वालो को इसकी जरूरत होती है तो वे उन मडियो से खरीद कर गाव मे लाते हैं इसमे यातयात का खर्च और परेशानी कितनी होती है, यह स्पष्ट ही है इन दोषो को दूर करने के लिए, मालगुजारी नकदी के वजाय, जिन्स मे ही ली जानी उचित है इसका आशय यह नहीं है कि सरकार खेती की प्रत्येक पैदावार का हिस्सा ले असल में प्रत्येक प्रादेशिक सरकार पंचायतो के परामर्श से हरेक क्षेत्र की कुछ खास-खास पैदावारों की सूची वनाले, इन पैदावारो में से ही वह, अपनी तथा किसानो की सुविधा का ध्यान रखते हुए, मालगुजारी वसूल करे. मालगुजारी को जिन्स के रूप में लेने की कठिनाई

विविध सहकारी सस्थाए तथा प्रत्येक गांव मे एक अनाज-बैंक संगठित होने से सहज ही हल हो जाएगी.

श्रम के रूप में चुकाने की व्यवस्था—मालगुजारी श्रम के रूप मे भी चुकाये जाने की व्यवस्था होनी चाहिए जो किसान किसी कारण से अन्न मे मालगुजारी न चुकाना चाहे, वे उसके बजाय आवश्यक श्रम करके चुका सके—इस दृष्टि से ग्राम-पचायते आवश्यक व्यवस्था करे. श्रम की आवश्यकता सभी कामो मे होती है, इसलिए उसका उपयोग अनेक प्रकार से हो सकता है, और उसके द्वारा ग्रामीण जनता के हित के विविध कार्य किये जाकर उसकी भोजन, वस्त्र, मकान, शिक्षा, चिकित्सा और यातायात आदि की आवश्यकताओ की पूर्ति की जा सकती है मालगुजारी को श्रम के रूप मे चुकाने से यह लाभ है कि इससे प्रत्येक नागरिक सरकारी अर्थ-वृद्धि मे अपना कर्तव्य पालन सहज ही कर सकता है

केन्द्रीय सरकार का सीमित अधिकार—सर्वोदय अर्थ-व्यवस्था का मूल तत्व विकेन्द्रीकरण तथा लोकहित है; इससे यह स्वय सिद्ध है कि केन्द्रीय सरकार का अन्य विषयो की भांति सार्वजनिक आय-व्यय पर सीमित ही अधिकार होगा. रेल, बिजली, डाक, तार, हवाई यातायात, मुद्रा और बैंक आदि सार्वजनिक उपयोग के कार्यों मे मुनाफे की दृष्टि नहीं होगी. घुड़दौड़, मादक पदार्थ, लाटरी आदि बन्द होने से इनसे आय न होगी. अर्थव्यवस्था विकेन्द्रित और सेवा-भावी होने के कारण लोगो को बड़ी-बडी आमदनी न होने से और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार बहुत ही कम होने से आय-कर, आयात-निर्यात कर, सम्पत्ति कर, बिक्री कर आदि से होने वाली सरकारी आय मामूली ही होगी. उसकी आय का एक मुख्य साधन सार्वजनिक

स्वामित्व वाले केन्द्रीभूत उद्योग होगे हाँ, आवश्यकतानुसार उसे प्रादेशिक सरकारो से सहायता मिलती रहेगी

सरकारी अर्थनीति का लक्ष्य; आय-व्यय की वृद्धि नहीं, जनता का कल्याण—वास्तव में सरकारी अर्थनीति का लक्ष्य केवल अधिक से अधिक आय प्राप्त करना और अधिक से अधिक खर्च करना नहीं होना चाहिए. देखना यह होगा कि आय जिन साधनो से प्राप्त होती है वे लोकहित की दृष्टि से कहा तक उचित है, और सरकारी व्यय जिन कामो में होता है, उनसे जनता का कहा तक कल्याण होता है इस कसोटी पर यदि आय और व्यय दोनो ही ठीक नहीं उतरते तब तो सरकारी अर्थनीति दूषित होने में सन्देह ही नहीं है, पर यदि व्यय हितकर भी है तो भी इस बात की उपेक्षा नहीं की जा सकती कि आय किस प्रकार हुई है उदाहरण के तौर पर यदि सरकार शिक्षा के कार्य मे भी पैसा लगाना चाहे तो इसके लिए उसका शराबखोरी को प्रोत्साहन दे कर आय प्राप्त करना उचित नहीं ठहराया जा सकता मद्य-निषेध या शराब-बन्दी की नीति को स्थगित करना या उसमे ढील देने का समर्थन इसलिए नहीं किया जाना चाहिए कि सरकार को शिक्षा-प्रचार के लिए पैसा चाहिए इसी प्रकार सरकार का केन्द्रित यन्त्रोद्योग को केवल इस आधार पर प्रोत्साहन देना अनुचित है कि उनसे सरकार को सहज ही बडे परिमाण में आय प्राप्त हो जाती है, और उसके विविध लोकहितकारी विभागों का खर्च चल सकता है पहले बताया जा चुका है कि केन्द्रित यन्त्रोद्योगों में जनता में बेकारी फैलाने, आर्थिक असमानता बढाने आदि के अनेक दोष हैं, और कुछ खास अपवादो को छोड कर इनकी वृद्धि अनिष्टकारी ही है. इस लिए सरकार को

इन्हे यथा-सम्भव नियन्त्रित और सीमित ही रखना चाहिए

सरकार को बराबर यह देखते रहना है कि श्रम करने के अभिलाषी प्रत्येक व्यक्ति को काम मिले और सर्वसाधारण को जीवन-निर्वाह के यथेष्ट साधन सुलभ हो यदि किसी व्यक्ति या संस्था को इससे अधिक आय होती है तो यह कुछ विशेष सुविधाजनक परिस्थिति के कारण है, जिसका अधिकाश लाभ सरकार द्वारा जनता को मिलना चाहिए. वास्तव मे परिस्थिति-वश जो आय-वृद्धि होती है, उसका श्रेय समाज को है और उसका अधिकाश लाभ भी किसी व्यक्ति या सस्था को न मिल कर सर्वसाधारण को ही मिलना चाहिए अस्तु, सर्वोदय अर्थव्यवस्था मे सरकार इस बात का यथेष्ट ध्यान रखेगी, कारण, उसकी अर्थ-नीति का मुख्य उद्देश्य यह नही होगा कि अपनी आय वढ़ाए या आय बढ़ाने के लिए ऐसी पद्धति को प्रोत्साहन दे, जिससे कुछ थोडे से व्यक्तियो को ही लाभ हो; उसका लक्ष्य तो सर्वसाधारण जनता का कल्याण होगा

आय का रूप—नकदी, माल और मजदूरी— अन्यत्र कहा गया है कि मालगुजारी जिन्स तथा मजदूरी के रूप मे ली जानी चाहिए इसी प्रकार अन्य सरकारी करो के सम्बन्ध में लोगो को यह अधिकार रहना चाहिए कि वे चाहे तो अपने करों को इसी रूप मे दे सकें; किसी पर यह प्रतिबन्ध न हो कि वह अपना कर नकदी मे ही चुकाए इससे जनता को पैसे की अर्थव्यवस्था से मुक्ति पाने का मार्ग प्रशस्त होगा, जिसकी आवश्यकता और उपयोगिता पहले बतायी जा चुकी है. जब लोगो को सरकारी कर जिन्स या श्रम के रूप में चुकाने की आजादी रहेगी तो स्वभावत: उन्हे लोकोपयोगी वस्तुएं बनाने तथा अपने श्रम को हितकारी कार्यों मे

लगाने की प्रेरणा होगी और राज्य में जनता की स्थिति अधिक सुखमय होगी

सर्वोदय व्यवस्था में खर्च बहुत कम होगा—आजकल सरकारें अधिकाधिक खर्च करती जाती हैं और ऐसा करने मे गर्व मानती हैं साधारण तौर पर सरकार द्वारा खर्च अधिक होने का अर्थ यह लिया जाता है कि सरकार जनता की सुख-सुविधा और उन्नति की व्यवस्था अधिक करती है परन्तु जानने वाले अच्छी तरह जानते है कि सरकार द्वारा किये जाने वाले विविध कार्यों का विशेष लाभ फी सैकडा कुछ थोडे से ही व्यक्तियो को मिलता है यदि सरकार उच्च शिक्षा की व्यवस्था करती है तो उसमें सरकार का बहुत सा रुपया खर्च होने पर भी साधारण हैसियत के नागरिको की ऐसी सामर्थ्य नही होती कि वे उसकी फीस आदि का भार उठा सके राजधानियो मे बडे बडे ऊंचे दर्जे के अस्पताल होते हैं, पर मामूली नागरिको की उनमे पहुँच नहीं हो पाती यहां तक कि हमारी सडको की मद में इतना रुपया खर्च होने पर भी देश मे जो सीमेंट या तारकोल की सडकें बनती हैं, वे थोडे से नागरिको के काम आती है, हमारी जनसख्या का अधिकाश भाग तो गावो मे रहता है और गाव वालो के लिए मामूली कच्ची सडको की भी बहुत कमी रहती है निदान इस समय सरकारी खर्च का परिमाण खूब अधिक होता है, उसमे सब नागरिको का भाग लेना होता है, पर उससे लाभ थोडे से ही व्यक्तियो को मिलता हैं

सर्वोदय अर्थव्यवस्था में यह दोष नहीं रहेगा; उसमे सब के, समाज के साधारण से साधारण नागरिको के, हित का ध्यान रखा जायगा सरकार को स्कूल, अस्पताल और सडकें आदि बनवाने में तथा इनके सचालन में खर्च बहुत कम पड़ने की

बात पहले कही गयी है. इसके अतिरिक्त शासन बहुत सरल हो जाने से भी खर्च बहुत घट जायगा इस समय पैसे की प्रतिष्ठा होने से सरकारी पदाधिकारी अधिक-से-अधिक वेतन और भत्ते आदि पाना चाहते हैं, और अनेक बार ऊंचे वेतन वाले भी भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी आदि के शिकार बनते पाये जाते हैं. धन के बजाय श्रम की प्रतिष्ठा होने से, लोगो मे सेवा-भाव की वृद्धि होगी; साधारण वेतन से ही काम करने के लिए अच्छे योग्य व्यक्ति यथेष्ट सख्या मे मिलेंगे. राज्य की नीति अहिन्सा रहने पर, पुलिस और सेना का रूप बदलने के साथ इनका खर्च भी घट जायगा शान्ति-काल मे इनके द्वारा रचनात्मक काम होने से राज्य को इस मद से जो लाभ होगा, वह रहा अलग. निदान इनके खर्च का भार बहुत कम रहेगा.

विशेष वक्तव्य—इस तरह सर्वोदय व्यवस्था मे, इस समय की अपेक्षा, खर्च बहुत कम होगा. विशेष बात यह होगी, कि सरकार का खर्च करने का ढंग ऐसा होगा कि उससे थोड़े से लोगों की आरामतलबी या विलासिता, और शेष अधिकाश जनता की मूल-भूत आवश्यकताओ के भी पदार्थों की कमी न होकर सब के हित का यथेष्ट ध्यान रखा जायगा. ऊंचे कहे जाने वाले लोगो को विलासिता रोग से मुक्त रखने की व्यवस्था होगी, और सब की प्रमुख आवश्यकताओ की पूर्ति के अतिरिक्त उनके सांस्कृतिक विकास का भी प्रबन्ध रहेगा.

सातवां खंड

उपसंहार

कुदरत अपने काम में पूरा समय लेती है जल्दबाजी करने वाला आदमी न तो तरक्की कर सकता है, और न वैज्ञानिक बन सकता है हमें जिन्दगी मे धीरज और समतोल रखने की जरूरत है. सायन्स के सही इस्तेमाल और सच्ची तरक्की का रास्ता यही है कि हम गाव के छोटे-छोटे उद्योग धधो के जरिये ही हर रोज की जरूरत पूरी करें.

× × ×

क्या इन्सान मे इतनी अकल आएगी कि दूरन्देशी के साथ सही रास्ते को देख ले ? गाधीजी ने जो रास्ता बताया, वह ऐसा नही है, जिस पर सिर्फ कुछ बडे-बडे आदमी ही चल सके यह इतना सीधा-सादा है कि हम में से छोटे से छोटा इस पर अमल कर सकता है. इस रास्ते की मुराद यही है कि हम अपना निजी जीवन उस प्रकार के मुताबिक बिताए जो हमारे अन्दर की अपनी सब से ऊची पुकार है यह जरूर है कि इसके लिए आजकल की मौज-मस्ती के बजाय खुद पर काबू रख कर और आत्म-सयम से चलना होगा. हमें काम का एक ऐसा ढर्रा और चीजों का एक ऐसा तर्ज बना लेना है, जिसका आधार सामाजिक, नैतिक और रूहानी बातो पर हो. बस, यही वह रास्ता है, जिसके जरिये सब के लिए राम-राज्य कायम हो सकेगा, यही वह रास्ता है, जिसके जरिये हर इन्सान को सच्ची खुशहाली और शान्ति नसीब हो सकती है

—जो. का. कुमारप्पा.

इकतालीसवां अध्याय

सर्वोदय अर्थशास्त्र की विशेषताएँ

जिस चीज को हम चाहते है, उसकी सही-सही तस्वीर हमारे सामने होनी चाहिए, तभी हम उससे मिलती-जुलती कोई चीज पाने की उम्मीद रख सकते है.
—गांधीजी

जिस समाज मे शोषण चल रहा है और शोषण-प्रधान व्यवस्था चल रही है—ऐसे समाज में हमें शोषण रहित व्यवस्था लानी है इसलिए हमे पुरानी समाज-रचना को तोडना होगा आज हमें तोडना और जोडना साथ-साथ करना होगा
—धीरेन्द्र मजूमदार

पिछले अध्यायो मे सर्वोदय अर्थशास्त्र की परू-रेखा बता कर अब हम पाठको का ध्यान उसकी खास-खास बातो की ओर दिलाना चाहते हैं.

इस अर्थशास्त्र से सब का हित—वर्तमान अर्थशास्त्र का लक्ष्य राष्ट्र की आर्थिक उन्नति करना माना जाता है, उसमें भी वह कुछ व्यक्तियों या वर्गों को ही अपने सुख के साधन जुटाने और दूसरो का शोषण करने की अनुमति देता है इस प्रकार उसका क्षेत्र बहुत सीमित होता है, वह मानव समाज के टुकडे-टुकडे करता है और एक हिस्से को दूसरे का प्रतिद्वन्द्वी बनाता है इसके विपरीत, सर्वोदय अर्थशास्त्र समस्त ससार का हित सोचता है उसमें रग-भेद, जाति-भेद या राष्ट्र-भेद नहीं होता उसका लक्ष्य विश्वबन्धुत्व होता

है. इसका अर्थ यह नहीं कि वह मनुष्य को दूर-दूर की बातो में फंसा कर उसे अपने स्थानीय कर्तव्य से विमुख करता है. उसका तो आदेश है कि हमे अपने नजदीक के आदमी के साथ अधिक से अधिक सहयोग बढाना है. उसकी आवश्यकता का विचार करके उत्पादन करना है, और हमें अपने उपयोग की वस्तुओ के लिए दूर-दूर न भटक कर उन्हे अपने गांव या नगर से ही लेना है, जिससे हमारे स्थानीय उत्पादको और कारीगरो को आजीविका और विकास के साधन मिले. हा, हमे अपने व्यवहार में कृत्रिम सामाजिक भेद-भाव न रख कर सब के हित का प्रयत्न करना है और उसी मे अपना हित मानना है. यह सर्वोदय अर्थशास्त्र की प्रमुख विशेषता है और इसके नाम के 'सर्वोदय' शब्द को सार्थक करती है.

भौतिक पदार्थों की अपेक्षा मनुष्य का महत्व अधिक— वर्तमान अर्थशास्त्र भौतिक उन्नति के साधन जुटाने में लगा है. यह भुला दिया जाता है कि वे साधन अन्ततः मनुष्य के लिए हैं, मनुष्य उनके लिए नहीं. इस प्रकार श्रमजीवियों से अधिक उत्पादन कराने के हेतु ऐसे उपाय काम मे लाया जाना अनुचित है जिनसे उनकी शारीरिक, मानसिक तथा नैतिक उन्नति में बाधा हो, अथवा उन्हे थोड़े-बहुत समय में बेकार होकर दूसरे के आश्रित होने या राज्य पर भार बनने की नौबत आए. हमारा लक्ष्य अच्छे नीतिमान मनुष्य तैयार करना है, उनके वास्ते जहा तक भौतिक साधनों की आवश्यकता हो, उसकी व्यवस्था होना ठीक ही है, पर ऐसा न होना चाहिए कि मनुष्यो की बलि देकर भौतिक उन्नति का आयोजन हो. जब मनुष्य अच्छे नीतिमान और सदाचारी तथा सेवाभावी होंगे तो वे भौतिक साधनो का उपयोग एक दूसरे के हित के लिए करेंगे, अन्यथा वे उन साधनो से समाज का अहित करने की ठानेंगे. जैसा कि आज के युग

में एटम बम और हिंसक शस्त्रास्त्रो के सम्बन्ध में हो रहा है इसलिए सर्वोदय अर्थशास्त्र भौतिक पदार्थों की अपेक्षा अच्छे मनुष्यों के तैयार किये जाने पर जोर देता है

उत्पादन को नहीं, उपयोग को प्राथमिकता—वर्तमान अर्थशास्त्र में उत्पादन को केन्द्र विन्दु माना जाता है लोगों को सर्व-प्रथम किन वस्तुओ की आवश्यकता है, इस पर ध्यान नहीं दिया जाता अनेक प्रदेशो में जूट, कपास और गन्ने आदि की व्यापारिक फसलें पैदा की जाती हैं, और फैशन या शृंगार की विविध वस्तुएं बनायी जाती हैं. देश में ऐसे उत्पादन का परिमाण वढ़ाकर उसके लिए बाजार ढूंढना तथा झूठे-सच्चे विज्ञापन देकर लोगो को आकर्षित करना वर्तमान अर्थनीति में वडी कुशलता समझी जाती है. इसी का परिणाम यह है कि औद्योगिक दृष्टि से उन्नत कहे जाने वाले देशों के स्वार्थ एक-दूसरे से टकराते हैं और युद्धों तथा महायुद्धों को निमन्त्रित करते हैं ससार पर हर घड़ी सकट छाया रहता है शाँति की जगह युद्ध ही इस समय का सत्य बना हुआ है. इसलिए सर्वोदय अर्थशास्त्र में उपयोग को प्राथमिकता देकर उसकी दृष्टि से उत्पादन करने का विचार किया जाता है. अनावश्यक या अहितकर उत्पादन को रोक कर उसमें लगने वाले समय और शक्ति को जनता का सांस्कृतिक विकास करने वाले उत्पादन में लगाने का सत्परामर्श दिया जाता है.

औद्योगिक विकेन्द्रीकरण तथा स्वावलम्बन—वर्तमान अर्थव्यवस्था में बड़े-बड़े यन्त्र या मशीनो से कुछ खास-खास केन्द्रो में उत्पादन-कार्य होता है. वे सत्ता या शक्ति को मुट्ठी भर व्यक्तियों में केन्द्रित करके हजारों और लाखो आदमियों को

उनके अधीन शोषित और पीड़ित रहने को बाध्य करती हैं, जिससे हिंसा और बल-प्रयोग द्वारा समाज की सब व्यवस्था दूषित होती है और लोकतंत्र और मानवता का भयकर ह्रास होता है. सर्वोदय अर्थशास्त्र औद्योगिक केन्द्रीकरण के इन दोपो को जानता है, अतः वह विकेन्द्रीकरण का मार्ग दर्शाता है, और जनता को छोटे-छोटे क्षेत्रो मे स्वावलम्बी जीवन बिताने का आदेश करता है

पैसा साध्य नहीं, साधन मात्र—आधुनिक अर्थव्यवस्था में पैसा आदमी के जीवन में साध्य बन वैठा है. आदमी दिन-रात इसके सग्रह की चिन्ता मे है. अपने पड़ोसियो को आर्थिक संकट मे पड़ा देख कर भी हम उनके लिए विशेष क्रियात्मक सहानुभूति नहीं दिखाते हमे यह फिक्र रहती है कि हमारी बैंक की उस जमा मे कुछ कमी न आ जाए, जिसे उत्तरोत्तर बढ़ाते रहना हमने अपना मुख्य कर्तव्य समझ रखा है. साधारण श्रेणी के आदमी भी पैसे के चक्र मे बुरी तरह फसे है गवालिया अपना दूध, और माली अपने यहा के फल, अपने बाल-बच्चो को न देकर उन्हे वेचकर उनके दाम उठाते हैं. किसान अपने लिए घटिया अन्न रख कर बढ़िया अन्न मंडी मे ले जाकर बेच देता है. सर्वोदय अर्थशास्त्र ऐसे व्यवहार को दूषित ठहराता है वह केवल अतिरिक्त पैदावार को बेचने की अनुमति देता है. वह पैसे को साधन के रूप मे देखता है, उसे जीवन का साध्य नहीं बनने देता. वह पैसे को मानवता की सेवा मे उपस्थित रहने का, और स्वामी नहीं दास बने रहने का आदेश करता है. इस प्रकार वर्तमान काल में जो बहुत से आदमी केवल विनिमय या खरीद-बेच मे लगे हुए हैं, उन्हे उससे मुक्त कर उत्पादन-कार्य मे लगा कर सर्वसाधारण के वास्ते उपयोग की सामग्री सुलभ करने का यह अर्थशास्त्र सुखदायी विधान है.

प्रतिष्ठा पैसे की नहीं, श्रम की—आधुनिक अर्थ व्यवस्था में 'सर्वेगुणा' काचनमाश्रयन्ते' की कहावत चरितार्थ होती है पैसे वालो को समाज मे, सभा-सोसायटी में, राज्य में, हर जगह खूब आदर-मान मिलता है, भले ही उन्होने बडे-बड़े कारखाने खोल कर हजारो-लाखो आदमियो को वेकार और भूखा नगा रहने पर वाध्य किया हो, या फैशन और विलासिता का सामान बनाकर, और उसके विज्ञापन से लोगो को फुसला कर, देश में जनता की मूलभूत आवश्यकताओ की पूर्ति में वाधा उपस्थित की हो. सर्वोदय अर्थशास्त्र के अनुसार प्रतिष्ठा पैसे की नहीं, श्रम की होनी चाहिए अपनी मेहनत से अपना भरण-पोषण करने, और देश को आवश्यक पदार्थ देने वाले किसान और मजदूर को उस पैसे वाले से अधिक इज्जत-आवरू मिलनी चाहिए, जो अपनी चतुराई और चालाकी से दूसरों का शोषण करता है, या खाली-बैठे अपने वापदादा को कमाई पर मौज उड़ाता है. इस अर्थशास्त्र में मुफ्तखोरो, आलसियो, अनुत्पादको को बहुत हेय दृष्टि से देखा जाता है. इसके विपरीत श्रमियो, उत्पादकों, अपने पसीने की कमाई खाने वालों के लिए यह सब प्रकार आदर प्रतिष्ठा प्रदान करता है

बुद्धि का उपयोग लोक-सेवा के लिए—आजकल बुद्धिजीवियों ने अपनी बुद्धि का कैसा दुरुपयोग कर रखा है ! ये श्रमजीवियो की अपेक्षा कितनी आरामतलबी का जीवन बिताते हैं ! अनेक न्यायाधीश, प्रोफेसर, विधान-सभाओं के सदस्य, और राजकर्मचारी आदि प्रायः साल में छ. महीने, और दिन मे दो-चार घंटे ही काम करते हैं. इस समय भी उन्हे गर्मी में बिजली के पखे और खस की टट्टियो की जरूरत होती है सर्दी मे उनके

कमरे को गर्म करने की व्यवस्था रहनी चाहिए. तिस पर भी उनका वेतन साधारण श्रमी की अपेक्षा १५-२० गुना और कुछ दशाओं में इस से भी अधिक होता है. इसके विपरीत, श्रमियो के सप्ताह में छः या साढ़े पांच दिन और दिन मे छः घंटे काम करने का नियम बनाना भी बडा अनुग्रह समझा जाता है. सर्वोदय अर्थशास्त्र को यह असमानता मान्य नहीं. उसकी सूचना है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने भरण-पोषण के लिए शरीर-श्रम करे; बुद्धि का उपयोग दूसरो का शोषण करने या उनके श्रम से अनुचित लाभ उठाने मे न किया जाकर लोकसेवा या ज्ञान-प्रचार के लिए ही किया जाय, जिसका कोई पारिश्रमिक या मुआवजा न हो. इस अर्थशास्त्र का सिद्धान्त यह है कि शरीर के निर्वाह तथा भौतिक सुख के साधनो की प्राप्ति के लिए शरीर-श्रम का ही उपयोग हो, बुद्धि जैसी देन को इसमे न लगाया जाए

विनिमय की मर्यादा—वर्तमान अर्थ-व्यवस्था में उत्पादन का केन्द्रीकरण होने से खास-खास स्थानो में बहुत-सा सामान तैयार होता है, वहां से क्रमशः छोटे केन्द्रो में होता हुआ, कई-कई व्यापारियों या दलालो के द्वारा गावो और नगरो के उपभोक्ताओ के पास पहुँचता है. इसके लिए माल गाड़ियो, मोटर-ट्रको आदि वाहको की कितनी व्यवस्था करनी होती है, जगह-जगह माल उतारने-चढ़ाने की कितनी झंझट होती है, माल कितना खराब होता है, व्यापारियो और दलालो के खर्च और मुनाफे का उपभोक्ताओ पर कितना भार पड़ता है—यह सहज ही अनुमान हो सकता है. सर्वोदय अर्थशास्त्र के अनुसार माल का उत्पादन विकेन्द्रित रूप से स्थान-स्थान पर उपभोक्ताओ के पास ही होगा, विनिमय का यह विकराल रूप न रहने पाएगा, इसके अस्सी-नब्बे प्रतिशत की कोई आवश्यकता नहीं

रहेगी. मुनाफाखोरी का प्रसग स्वतः बहुत कम रह जायगा, और उपभोक्ता को विनिमय के दुश्चक्र से बहुत राहत मिल जाएगी. अस्तु, सर्वोदय अर्थशास्त्र लोगों को ऐसे पदार्थों को उपयोग करने के लिए कहता है, जो उनके गांव या नगर में बनते हैं या बनाये जा सकते हैं, और जिनका अदल-बदल वहां का वहां ही आसानी से हो सकता है, जिनके लिए दूर-दूर के स्थानों में विनिमय नहीं करना पडता, विदेशों से तो प्रायः बिल्कुल ही नहीं.

वितरण की समस्या का अन्त—वर्तमान अर्थशास्त्र में वितरण की समस्या ने बहुत जटिलता ग्रहण कर रखी है उत्पादन के साधनों के मालिकों में से जमीन वाले को लगान किस हिसाब से दिया जाए, पूजी वाला कितना सूद पाने का अधिकारी है, श्रमियों को वेतन देने में क्या आदर्श रहे, और व्यवस्थापक या साहसी को मुनाफा कहा तक मिले—ये प्रश्न बहुत विवाद-ग्रस्त है सर्वोदय अर्थशास्त्र के अनुसार समस्या बिल्कुल सरल हो गयी है. जमीन उसी को और उतनी ही मिले, जो जितनी स्वयं जोते-बोये. इस जमीन को वह समाज की सम्पत्ति के रूप में काम में लाए, जब वह इसे काम में न ला सके तो वह इसका अधिकारी न रहें. इस जमीन पर किसी प्रकार का लगान न रहेगा और मालगुजारी उचित ही ली जाएगी, उसमे किसानों को जीवन-वेतन मिलने का ध्यान रखा जाएगा. पूजी वाले को सूद लेने का अधिकार न होगा. पूजी इस प्रकार विभाजित होगी कि प्रायः न किसी को दूसरे से लेने को जरूरत रहेगी, और न किसी के पास वह फालतू पड़ी होगी. यदि किसी के पास कुछ अतिरिक्त पूंजी होगी भी तो वह समाज की मानी जाएगी और उसका उपयोग इसी दृष्टि से किया जाएगा. व्यवस्थापक

या साहसी को अपने श्रम का पारिश्रामिक मात्र लेने का अधिकार होगा. मुनाफा निजी लाभ की चीज न होगा; वह समाज-हित के लिए काम में लाया जाएगा. अब रहा, श्रमी .उत्पादन विकेन्द्रित रूप मे होने तथा प्रत्येक व्यक्ति के लिए शरीर-श्रम करना आवश्यक होने से प्रायः प्रत्येक परिवार स्वावलम्बी होगा. जिन व्यक्तियो को दूसरो के यहा अथवा सरकारी काम करने की आवश्यकता होगी, उन्हे उनके परिवार के भरण-पोषण आदि के लिए न्यूनतम वेतन अवश्य ही दिया जाएगा इस प्रकार किसी व्यक्ति को अपनी मूलभूत आवण्यकताओ की पूर्ति से वचित होने का अवसर नहीं आएगा; सब आनन्द-पूर्वक अपना विकास करते हुए दूसरो की उन्नति मे सहायक होगे मुनाफेखोरी या शोषण का प्रसग न रहेगा.

विकेन्द्रित और लोकतंत्री राजसत्ता—ऐसे आर्थिक संगठन में सम्पत्ति कुछ थोड़े से व्यक्तियो के पास जमा न हो कर विकेन्द्रित होगी, सब लोग अच्छी तरह गुजर-बसर करने वाले होगे, कोई बड़े-बड़े मालदार, जागीरदार, पूजीपति आदि न होगे, जिनके महलो और राजभवनो की चौकसी के लिए, जिनके धन की चोरो और डाकुओ से रक्षा करने के लिए, हथियारबन्द सिपाही या पुलिस आदि की आवश्यकता होती है. जनता अपने अधिकांश कार्य-व्यवहार मे स्वावलम्बी होगी, उत्पादन, वितरण, शिक्षा, स्वास्थ्य, न्याय, रक्षा आदि सब कार्य स्थानीय पचायतो के द्वारा सम्पन्न होने से केन्द्रीय सरकार का कार्य-क्षेत्र स्वभावतः सीमित होगा. इस प्रकार राजसत्ता विकेन्द्रित होगी. शासन-क्षेत्र की हर इकाई मे प्रायः वहां के ही आदमी प्रबन्ध आदि में सहयोग देंगे. उनका अपने यहां की जनता से घनिष्ठ सम्पर्क रहेगा, वे वास्तव में जनता के ही

आदमी होंगे- और हुकूमत करने या धौंस जमाने की भावना न रखकर लोकसेवा के भाव से काम करेंगे. उनमें रिश्वतखोरी या दमन की प्रवृत्ति न होगी, वरन् वे आवश्यकतानुसार जनता की प्रत्येक बात में सहायता करना अपना कर्तव्य समझेंगे इस प्रकार हर जगह आदमी वास्तविक लोकतंत्र का अनुभव करेंगे.

राज्यों में व्यापारिक संघर्ष का अभाव—सर्वोदय अर्थ-व्यवस्था मे प्रत्येक राज्य अपनी प्रमुख आवश्यकताओ की पूर्ति में स्वावलम्बी होगा, किसी देश को अपनी निर्यात का माल दूसरों पर लादने की उत्सुकता न होगी, और क्योंकि वह अपनी प्रमुख आवश्यकताओ के सम्बन्ध मे स्वावलम्बी होगा, दूसरे देशो को वहा अपना माल भेजने और खपाने की गुजाइश न होगी. इस प्रकार न तो हमे दूसरे बाजारों को हथियाने के लिए किसी से संघर्ष लेना होगा और न दूसरो को हमारे यहा आकर व्यापारिक दाव-पेंच करने और प्रतिद्वन्दिता और संघर्ष का परिचय देने का अवसर रहेगा.

विश्व-शान्ति का मार्ग प्रशस्त—हम स्वाधीनता की कद्र करने वाले होंगे और किसी पर आक्रमण करने की हमारे मन में भावना ही न होगी. इसलिए बडी-बडी सेनाएं और हिन्सक सामग्री की भी हमे जरूरत न होगी. हमारे प्रेम और भाईचारे की नीति के कारण संसार के सब देशो की सहानुभूति हमारे साथ होगी, तथापि किसी राज्य के आकस्मिक आक्रमण के लिए हम दूसरो पर निर्भर न रह कर अपनी तैयारी रखेंगे. हा, वह तैयारी दूसरो को मारने की न होकर स्वयं मर-मिटने की होगी हमारे अहिन्सक सैनिक, सत्याग्रह और असहयोग के बल पर, अपने आकस्मिक शत्रुओ के हृदयो पर विजय प्राप्त

करेंगे और उनको अपना मित्र बना लेंगे. अस्तु, आक्रमण हो, या आत्म-रक्षा—किसी भी दृष्टि से हमें हिन्सक बल की आवश्यकता न होगी. स्वयं अहिन्सक नीति के लिए अपनी तैयारी दिखाकर हम दूसरो के लिए भी इस विषय का अच्छा उदाहरण उपस्थित कर सकेंगे. इस तरह विश्व-शान्ति और निरस्त्रीकरण का मार्ग प्रशस्त होगा. मनुष्य जाति युद्ध और विनाश की चिन्ता से मुक्त रहती हुई अपनी शक्ति और समय का उपयोग अपने विकास और उत्थान के लिए कर सकेगी.

ऊपर सर्वोदय अर्थशास्त्र की कुछ प्रमुख विशेषताओं का ही उल्लेख किया गया है, विचारशील पाठक अन्य विशेषताओं का विचार स्वयं कर लें. इन बातों को अमल में लाने के लिए हमें क्या करना चाहिए, इसका विचार अगले अध्याय में किया जाएगा.

बियालीसवां अध्याय

हमारा कर्तव्य

अगर कोई आदमी अपने स्वप्नों की दिशा मे विश्वास के साथ आगे बढता रहे और ऐसा जीवन व्यतीत करने की कोशिश करता रहे, जैसा कि उसने सोच रखा है, तो उसे वह सफलता मिलेगी, जिसकी मामूली समय मे आशा नही की जा सकती.

—थोरो

आपने जन स्वास्थ्य, यातायात (सडक), सहकारिता आदि पर ध्यान दिया है. एक छोटे से गाव मे काम करते हुए आप सम्पूर्ण देश की ही नही, बल्कि समस्त मानवता की सेवा कर रहे है इस तरह आपका काम सिर्फ एक गाव तक सीमित नही रहेगा वरन इन्ही प्रयत्नों से सम्पूर्ण विश्व मे शान्ति लायी जा सकती है.

—जे. का कुमारप्पा

सर्वोदय अर्थव्यवस्था के लिए हमे क्या करना चाहिए, इसका विचार करने से पहले हम यह जान ले कि हमें क्या नहीं करना चाहिए.

सरकार के भरोसे न रहें—इस प्रसग में एक मुख्य बात यह है कि हमें यह न सोचना चाहिए कि सरकार इसे चलाएगी, या इसके सम्बन्ध में कानून बनाएगी, तब यह व्यवस्था चलेगी. सरकारो से, खासकर जनतत्री सरकारो से, किसी विशेष क्रान्तिकारी कदम की आशा नहीं की जानी चाहिए. वे तो जनता का रुख देख कर चलती हैं; जब कोई बात अधिकाश जनसमाज

व्यवहार में लाने का इच्छुक होता है, या किसी बात को जनता के बड़े भाग का समर्थन मिलने की आशा होती है, तभी वे कोई बात हाथ में लेती है. कानून से उस बात को बल मिलता है और वह जनता मे अधिक सुविधा-पूर्वक तथा तेजी से चल निकलने योग्य हो जाती है. पर इसमे पहले प्राय समाज को आगे बढ़ना होता है, तभी सरकारी सहायता कुछ काम आ सकती है. जनता की तैयारी बिना, सरकारी व्यवस्था की प्रायः दुर्दशा ही होती है निदान, इस दिशा में पहले सरकार द्वारा कदम उठाये जाने की प्रतीक्षा करना वेकार है.

दूसरे आदमियों की प्रतीक्षा में भी न रहना चाहिए—इस प्रकार यह सोचना भी ठीक नहीं कि जब हमारे देश के अथवा दूसरे देशो के आदमी इस प्रकार का व्यवहार करने लगेगे तो हम भी ऐसा करना आरम्भ कर देंगे. अगर ससार में सब आदमी यही सोचा करें तो समाज में किसी प्रकार की प्रगति होने का अवसर ही न आए. जो भी सामाजिक व्यवस्था बनी है, और जो भी सुधार हुआ है, वह पहले किसी एक ही व्यक्ति के ध्यान में आया था, पीछे जाकर धीरे-धीरे उसका प्रचार हुआ अनेक दशाओ मे ऐसा भी हुआ कि जिस महानुभाव ने पहले पहल किसी नयी बात का विचार और प्रचार किया, उसे पागल और शेखचिल्ली तक कहा गया, पर पीछे जाकर आदमी उस महापुरुष की महत्ता मानने लगे अस्तु, किसी व्यक्ति को किसी शुभ विचार को कार्य-रूप मे परिणत करने के लिए दूसरो के सहयोग की प्रतीक्षा मे न वैठ रहना चाहिए.

व्यक्ति आगे बढ़े; श्रद्धा, धैर्य और दृढ़ता की आवश्यकता—इस प्रकार जिन व्यक्तियो को सर्वोदय अर्थव्यवस्था हितकर प्रतीत हो, वे किसी साथी का राह न देख कर, इस

ओर चल पड़ें उन्हें अकेले ही रास्ता तय करना पड़े तो भी श्रद्धापूर्वक बढ़े चलें. वे विघ्न-बाधाओं से, अथवा निन्दा या उपहास आदि के कारण विचलित न हों; आशावादी रहते हुए, अपनी धुन में लगे रहें. यह निश्चय है कि उनकी बात क्रमशः अनेक आदमियों का ध्यान आकर्षित करेगी और उनके द्वारा अपनायी जाएगी समय पाकर वह मानव समाज के अधिकाधिक भाग की अपनी चीज़ हो जाएगी. यह बात कब होगी, इसमें कितने वर्ष या दशाब्दियां लगेंगी, इसकी चिन्ता करने की जरूरत नहीं. हमें तो अपने समय में अपना कर्तव्य पालन करना है, आज के दिन हम आज का कर्तव्य पूरा करें

विचारवानों के लिए सर्वोदय व्यवस्था अब निरी कल्पना की वस्तु नहीं रही रस्किन और टाल्सटाय से प्रेरणा पाकर गांधीजी ने इस विषय का खूब मनन किया वह अपने जीवन भर इसे कार्यरूप में परिणत करते रहे इस समय आचार्य विनोबा तथा अन्य सज्जन अपने-अपने क्षेत्र में इसका प्रयोग कर रहे हैं इस प्रकार के कुछ प्रयोगों का उल्लेख हमने पहले किया है, और जिज्ञासु पाठक देश में होने वाले अन्य प्रयोगों की जानकारी स्वयं प्राप्त कर सकते हैं इस प्रकार सर्वोदय भावना को अमल में लाने वालों को ऐसे मार्ग पर यात्रा करनी है, जिस पर कुछ महानुभाव पहले चल चुके हैं, और कुछ इस समय चल रहे हैं. इनके पथ-प्रदर्शन से हम सहज ही लाभ उठा सकते हैं

कुछ व्यावहारिक बातें—पिछले अध्यायों में उपयोग, उत्पादन, विनिमय, वितरण और राजस्व सम्बन्धी विविध बातें बतायी गयी हैं. सम्भव है कि किसी पाठक का उन सभी बातों से सीधा सम्बन्ध न आए, तो भी ध्यान-पूर्वक विचार करने से प्रत्येक व्यक्ति को काफी बातें ऐसी मिलेंगी, जिनके सम्बन्ध में

उसे अपना कर्तव्य निश्चित करना और पालन करना है. उदाहरण के लिए हरेक आदमी को अपने भरण-पोषण आदि के लिए विविध वस्तुओं का उपयोग करना होता है. हमे सोचना चाहिए कि सर्वोदय की दृष्टि से हमारा यह व्यवहार कहां तक ठीक है, और किन-किन बातों में क्या-क्या सुधार किया जाना आवश्यक है. हमारी आवश्यकताओं में कौन-कौनसी ऐसी है, जिसकी पूर्ति होना, वैयक्तिक तथा सामाजिक दृष्टि से उचित है; और कौनसी आवश्यकताएं ऐसी हैं, जो हमने दूसरों की देखादेखी, फैशन या शौकीनी के कारण, अथवा अज्ञान-वश बढ़ा रखी हैं जो आवश्यकताएं अहितकर तथा अनावश्यक है, उन पर कड़ा नियंत्रण होना चाहिए. फिर, विविध वस्तुओ का हम जो उपयोग करते हैं, उसकी विधि कहां तक उचित है, अर्थात् किन-किन दशाओं में हम सदुपयोग न कर, दुरुपयोग करते हैं. इसका निश्चय कर लेने पर भविष्य मे हमारे द्वारा दुरुपयोग न हो, ऐसा अभ्यास डालना चाहिए. आज दिन लोगो में प्रायः रहन-सहन 'ऊंचा' करने की बड़ी सनक है, जो वास्तव मे उसे जटिल बनाना है; हमें उसके बजाय अपना जीवन-स्तर ऊंचा करने की ओर ध्यान देना चाहिए. उपयोग सम्बन्धी इन तथा ऐसी अन्य बातो पर ब्योरेवार पहले लिखा जा चुका है गम्भीरता-पूर्वक पढ़ने वाले को उसमे काफी विचार-सामग्री मिलेगी, जिससे वह अपना कर्तव्य-निर्धारित करने मे अच्छी सहायता ले सकेगा.

यह तो उपयोग सम्बन्धी बात हुई. इसी तरह उत्पादन, विनिमय, वितरण, तथा अर्थव्यवस्था और राज्य इन खडों मे स्थान स्थान पर साधको को सहायक सामग्री मिल सकती है; यहाँ उदाहरणो की संख्या बढ़ाना जरूरी नहीं

विचार-धारा के प्रचार की आवश्यकता— रचनात्मक कार्य का प्रभाव उपदेश या व्याख्यान आदि की अपेक्षा हमेशा ही अधिक पड़ता है, और वह अधिक स्थायी भी होता है, तथापि उसकी अपनी सीमाएं हैं. एक जगह होने वाले रचनात्मक कार्य को बहुधा पास के भी अनेक आदमी नहीं जान पाते, फिर दूर रहने वालों की तो बात ही और है इसलिए किसी भी अच्छी विचारधारा के प्रचार की बहुत आवश्यकता हुआ करती है यदि प्रचारक ऐसे व्यक्ति हो, जिन्होने रचनात्मक कार्य किया है और वे प्रचार-कार्य मे कुशल भी हो तो उनका असर अच्छा पड़ना स्वाभाविक ही है. यदि रचनात्मक कार्य नहीं किया है तो उस विचारधारा में यथेष्ट विश्वास और श्रद्धा तो होनी ही चाहिए, और इस बात का परिचय उनके जीवन-व्यवहार से मिलना चाहिए. ये प्रचारक जगह-जगह घूम-फिर कर सर्वोदय का सदेश पहुँचाए और ऐसी निष्ठा, त्याग और लगन से प्रचार करें, जैसे किसी धर्म के प्रचारक किया करते हैं. उन्हें यात्रा करने मे तथा अपरिचित स्थानो में ठहरने आदि में चाहे जिन बाधाओ का सामना करना पडे, और जो भी कष्ट सहने हो, वे अपने कर्तव्य-कार्य से जरा भी विमुख न हो अशिक्षित जनता मे प्रचार इन्हीं के द्वारा हो सकता है, और होना चाहिए प्रिय पाठक! क्या आप इस दिशा में अपना कर्तव्य पालन करेंगे ? आप अध्यापक हो, या विद्यार्थी, लेखक, सम्पादक, कृषक, व्यापारी, वैद्य या डाक्टर—अपने-अपने क्षेत्र में आपको यथेष्ट कार्य करना है, यह निश्चय कीजिए.

विशेष वक्तव्य—सम्भव है कि कुछ पाठक यह सोचने लगें कि 'सर्वोदय अर्थात् सब की भलाई का काम तो बहुत बड़ा है इसका सम्बन्ध तो समस्त मानव समाज से, ससार भर के नर

देशो की जनता से है, हम तो अपने गांव या नगर मे रहते हैं, वहां के भी सब आदमियो से हमें काम नहीं पडता; अपने जिले, प्रान्त और देश के तो उत्तरोत्तर कम व्यक्तियो से हमारा सम्बन्ध है, और देश से बाहर के आदमियो से हमारा सम्पर्क प्रायः नहीं के बराबर है. हम ससार भर के हित के कार्य कैसे कर सकते हैं, जब हमारा सम्बन्ध ही अपेक्षाकृत बहुत थोड़े लोगो से है !'

यह शका इतनी गूढ़ नहीं है; जितनी प्रतीत होती है. हमारी शक्ति या साधन कम हैं, इसकी चिन्ता मे हम न पड़े, यह कोई निराशा की बात न हो हमारा दीपक भले ही छोटा सा हो, उसमें इतनी क्षमता तो है ही कि हम उससे अपने पड़ोसी का दीया जला सके यह क्रम चलने पर समाज मे प्रकाश बढ़ता जाएगा. विश्व का अन्धकार दूर करने में न-मालूम कितने दीयो को भाग लेना है. उनके विशाल समूह मे एक दीया हमारा भी हो; प्रकाश के महान यज्ञ मे एक विनम्र आहुति हमारी भी हो— इतना ही हमारे संतोष के लिए काफी है. अपनी शक्ति भर कर्तव्य पालन करना ही हमारी आकांक्षा हो.

सहायक साहित्य

सर्वोदय यात्रा	विनोबा
जड मूल से क्रान्ति	किशोरलाल घ मश्रूवाला
गाधी और साम्यवाद	” ” ”
अ. भा. चरखा सघ का इतिहास	श्रीकृष्णदास जाजू
गाधी अर्थ विचार	जो का कुमारप्पा (अनु०—सुरेश रामभाई)
ग्राम-आन्दोलन की आवश्यकता	”
‘इकानामी आफ पर्मेनेन्स’ (अग्रेजी), दो भाग	”
‘स्वराज्य फार दि मासेज’ (अग्रेजी)	”
तरक्की किसे कहा जाय ?	”
मानव अर्थशास्त्र (गुजराती)	नरहरि परीख
यत्रनी मर्यादा (”)	”
समग्र ग्राम सेवा की ओर	धीरेन्द्र मजूमदार
स्वराज्य की असली लडाई	”
नयी तालीम	”
आजादी का खतरा	”
नव भारत	रामकृष्ण शर्मा
बापू का रामराज्य	”

शान्ति या विनाश	रामकृष्ण शर्मा
गांधी साहित्य; धर्म-नीति	सस्ता साहित्य मंडल, नयी दिल्ली
सर्वोदय योजना	" "
हमारे जमाने की गुलामी	टाल्स्टाय (अनु०—वैजनाथ महोदय)
विविध प्रश्न	प्रेमनारायण माथुर
गांधी मार्ग	जी. भ. कृपलानी
सर्वोदय की दिशा में	जवाहरलाल जैन
विजय पथ	रस्किन (अनु०—रामनारायण विजयवर्गीय)
म. गांधी का समाजवाद	पट्टाभि सीतारामैया
सर्वोदय तत्व चिन्तन	गोपीनाथ धावन
गांधीवाद की रूप-रेखा	रामनाथ सुमन
ग्राम सजीवन	भारतन कुमारप्पा
'केपिटलिज्म, सोश्यलिज्म और विलेजिज्म' (अंग्रेजी)	"
गांधी योजना	श्रीमन्नारायण अग्रवाल
'सिलेक्शन्श फ्राम गांधी' (अंग्रेजी)	एन. के. बोस
'इकानामिक्स एंड ऐक्थिस' (अंग्रेजी)	जे. ए. आर. मेरियट
विश्व-संघ की ओर	सुन्दरलाल और भगवानदास केला

हरिजनसेवक, सर्वोदय, लोकसेवक, लोकवाणी, नया हिन्द, जीवन-साहित्य आदि पत्र-पत्रिकाएँ